उच्चतर माध्यमिक पाठ्यक्रम

वेदाध्ययन-३४५

पुस्तक-१

विद्याधनं सर्वधनप्रधानम्

राष्ट्रीय मुक्त विद्यालयी शिक्षा संस्थान

(शिक्षा मंत्रालय, भारत सरकार के अधीन एक स्वायत्त संस्थान)

ए-२४-२५, संस्थागत क्षेत्र, विभाग-६२, नोएडा-२०१३०९ (उत्तरप्रदेश)

वेबसाइट - www.nios.ac.in, टोल फ्री नंबर-१८००१८०९३९३

© राष्ट्रीय-मुक्त-विद्यालयी-शिक्षा-संस्थान National Institute of Open Schooling

प्रथम संस्करण २०२१ First Edition 2021 (Copies)

ISBN (Book 1)

ISBN (Book 2)

सचिव, राष्ट्रीय मुक्त विद्यालयी शिक्षा संस्थान, ए-२४-२५, संस्थागत क्षेत्र, विभाग - ६२, नोएडा - २०१ ३०९ (उत्तर प्रदेश) द्वारा प्रकाशित। ..... द्वारा मुद्रित।

उच्चतर माध्यमिक
वेदाध्ययन (३४५)

सलाहकार समिति

प्रो. सरोज शर्मा
अध्यक्ष
राष्ट्रीय मुक्त विद्यालयी शिक्षा संस्थान
नोएडा, उत्तरप्रदेश-२०१३०९

डॉ. राजीव कुमार सिंह
निदेशक (शैक्षिक)
राष्ट्रीय मुक्त विद्यालयी शिक्षा संस्थान
नोएडा, उत्तरप्रदेश-२०१३०९

पाठ्यक्रम निर्माण समिति

समिति अध्यक्ष
डॉ. के. इ. देवनाथन्
कुलपति
श्रीवेङ्कटेश्वर वैदिक विश्वविद्यालय
चन्द्रगिरिपरिमार्ग, अलिपिरि
तिरुपति-५१७ ५०२ (आन्ध्रप्रदेश)

डॉ. सन्तोष कुमार शुक्ला
आचार्य, संस्कृत एवं प्राच्य विद्या संस्थान
जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय
नई दिल्ली

डॉ. रामनाथ झा
आचार्य, संस्कृत एवं प्राच्य विद्या संस्थान
जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय
नई दिल्ली

समिति उपाध्यक्ष
डॉ. दिलीप पण्डा
सहायक प्राध्यापक (संस्कृत विभाग)
हिरालाल मजुमदार मेमोरियल कालेज
दक्षिणेश्वर, कलकता-७०००३५
(पश्चिम बंगाल)

आचार्य फूलचन्द
वैदिक गुरुकुल, पतञ्जलि योगपीठ
हरिद्वार (उत्तराखण्ड)

आचार्य प्रद्युम्न
वैदिकगुरुकुल
पतञ्जलि योगपीठ
हरिद्वार (उत्तराखण्ड)

श्री सन्तु कुमार पान
सहायक प्राध्यापक (संस्कृत विभाग)
विजयनारायण महाविद्यालय
पत्रालय-इटाचुना
मण्डल-हुगली-७१२१४७ (प. बंगाल)

स्वामी वेदतत्त्वानन्द
प्राचार्य
रामकृष्ण मठ विवेकानन्द वेद विद्यालय
बेलुड-मठ
मण्डल-हावडा-७११२०२ (प. बंगाल)

डॉ. राम नारायण मीणा
सहायक निदेशक (शैक्षिक)
राष्ट्रीय मुक्त विद्यालयी शिक्षा संस्थान
नोएडा, उत्तरप्रदेश-२०१३०९

संपादक मण्डल

डॉ. दिलीप पण्डा
सहायक प्राध्यापक (संस्कृत विभाग)
हिरालाल मजुमदार मेमोरियल कालेज
दक्षिणेश्वर
कलकता-७०००३५ (पश्चिम बंगाल)

स्वामी वेदतत्त्वानन्द
प्राचार्य
रामकृष्ण मठ विवेकानन्द वेद विद्यालय
बेलुर मठ
मण्डल-हावडा-७११२०२ (पश्चिम बंगाल)

पाठ लेखक

(पाठ १, ३, ५, ७, ८, ९, २५)
श्री राहुल गाजी
अनुसन्धाता (संस्कृत विभाग)
जादवपुर विश्वविद्यालय
कलकता-७०००३२ (पश्चिम बंगाल)

(पाठ २, ४, ६, १०-१४, १७)
श्री विष्णु पाद पाल
अनुसन्धाता (संस्कृताध्ययनविभाग)
रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द विश्वविद्यालय
मण्डल-हावडा-७११२०२ (पश्चिम बंगाल)

(पाठ १५, १६, १८, २०, २३, २६)
स्वामी वेदतत्त्वानन्द
प्राचार्य
बेलुड मठ
मण्डल-हावडा-७११२०२ (पश्चिम बंगाल)

(पाठ १९, २४)
श्री सन्तु कुमार पान
सहायक प्राध्यापक (संस्कृत विभाग)
विजयनारायण-महाविद्यालय
पत्रालय-इटाचुना
मण्डल-हुगली-७१२१४७ (पश्चिम बंगाल)

(पाठ २१, २२)
डॉ. दिलीप पण्डा
सहायक प्राध्यापक (संस्कृत विभाग)
हिरालाल मजुमदार मेमोरियल कालेज
दक्षिणेश्वर
कलकता-७०००३५ (पश्चिम बंगाल)

अनुवादक मंडल

डॉ. विजेन्द्र सिंह
सहायक प्रोफेसर (संस्कृत)
संस्कृत एवं प्राच्य विद्या संस्थान
जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय
नई दिल्ली

श्री नरेन्द्र विश्नोई
अनुसन्धाता
संस्कृत एवं प्राच्य विद्या संस्थान
जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय
नई दिल्ली

डॉ. राम नारायण मीणा
सहायक निदेशक (शैक्षिक)
राष्ट्रीय मुक्त विद्यालयी शिक्षा संस्थान
नोएडा, उत्तर प्रदेश-२०१३०९

श्री पुनीत त्रिपाठी
वरिष्ठ कार्यकारी अधिकारी
राष्ट्रीय मुक्त विद्यालयी शिक्षा संस्थान
नोएडा, उत्तर प्रदेश-२०१३०९

पाठ्यक्रम-समन्वयक

डॉ. राम नारायण मीणा
सहायक निदेशक (शैक्षिक)
राष्ट्रीय मुक्त विद्यालयी शिक्षा संस्थान
नोएडा, उत्तर प्रदेश-२०१३०९

रेखा चित्रांकन, मुखपृष्ठ चित्रण तथा संगणकीय विन्यास

मुखपृष्ठ चित्रण
स्वामी हररूपानन्द
रामकृष्ण मिशन
बेलुड मठ
मण्डल-हावडा-७११२०२ (प. बंगाल)

संगणकीय विन्यास
श्री कृष्णा ग्राफिक्स
दिल्ली

आपसे दो बातें...

अध्यक्षीय सन्देश

प्रिय विद्यार्थी,

'भारतीय ज्ञान परम्परा' पाठ्यक्रम के अध्ययन के लिए आपका हार्दिक स्वागत है।

भारत अति प्राचीन और अति विशाल है। भारत का वैदिक वाङ्मय भी उतना ही प्राचीन, प्रशसनीय और महान है। सृष्टिकर्ता भगवान् ही भारतीयों के सम्पूर्ण विद्याओं के प्रेरक है, ऐसा सिद्धान्त शास्त्रों में प्राप्त होता है। भारत के अच्छे विद्वान, सामान्य जनमानस तथा अन्य ज्ञानी लोगों का प्राचीन काल में आदान-प्रदान का माध्यम सस्कृत भाषा ही थी ऐसा सभी को ज्ञात है। इतने लम्बे काल में भारत के इतिहास में जो शास्त्र लिखे गए, जो चिन्तन उत्पन्न हुए, जो भाव प्रकट हुए वे सभी संस्कृत भाषा के भण्डार में निबद्ध हैं। इस भण्डार का आकार कितना, भाव कितने गभीर, मूल्य कितना अधिक इसका निर्धारण करने में कोई भी समर्थ नहीं है। प्राचीन काल में भारतीय क्या क्या पढ़ते थे, वो एक श्लोक के माध्यम से प्रकट होता है -

अङ्गानि वेदाश्चत्वारो मीमांसा न्यायविस्तरः।
पुराणं धर्मशास्त्रं च विद्या ह्येताश्चतुर्दश॥ (वायुपुराणम् ६१.७८)

इस श्लोक में चौदह प्रकार की विद्याएँ बताई गयी है। चार वेद (और चार उपवेद) छः वेदाङ्, मीमांसा (पूर्वोत्तरमीमांस) न्याय (आन्वीक्षिकी) पुराण (अठाहर मुख्य पुराण और उपपुराण) धर्मशास्त्र (स्मृति) ये चौदह विद्या कहलाते हैं। अनेक काव्य और बहुत शास्त्र हैं इन सभी विद्याओं का प्रवाह जल के समान ज्ञान प्रदान करने वाला प्रगति करने वाला और वृद्धि करने वाला लम्बे समय से चल रहा है। समाज के कल्याण के लिए भारत के विद्या दान परम्परा में गुरुकुलो में आध्यात्मिक, मनोवैज्ञानिक, आयुर्वेद, राजनीति, दण्डनीति, काव्य, काव्यशास्त्र और अन्य बहुत से शास्त्र पढ़ते-पढ़ाते थे।

विद्या के शिक्षण के लिए ब्रह्मचारी परिवार को छोड़कर गुरुकुल में ब्रह्मचर्याश्रम को धारण कर जीवन बिताते थे और इन विद्याओं में पारंगत होते थे। इन विद्याओं में आज भी कुछ पारंगत लोग है। प्राकृतिक परिवर्तन के कारण, विदेशी आक्रमण के कारण, स्वदेश में हो रही ऊठा-पटक इत्यादि अनेक कारणों से पहले जैसा अध्ययन-अध्यापन की परम्परा अब छूटती जा रही है। इन पाठ्यक्रमों की परीक्षा प्रमाणपत्र इत्यादि आधुनिक शिक्षण पद्धति के द्वारा कुछ राज्यों में होता है, परन्तु बहुत से राज्यों में नहीं होता है। अतः इन प्राचीन शास्त्रों के अध्ययन, परीक्षण, और प्रमाणीकरण का होना आवश्यक है। इसे ध्यान में रखकर यह पाठ्यक्रम राष्ट्रीय मुक्त विद्यालयी शिक्षा संस्थान के द्वारा प्रारम्भ किया गया है। लोगों के कल्याण के लिए जितना ज्ञान आवश्यक है वैसा ज्ञान इन शास्त्रों में निहित किया गया और मनुष्य के सामने प्रकट हो, ऐसा लक्ष्य है। जिसके द्वारा सभी यहाँ पर सुखी हो, सभी निरोगी हो, सभी कल्याण दृष्टि से कल्याणकारी हों। किसी को कोई दुख प्राप्त नहीं हो, कोई किसी को दुःख नहीं दे, इस प्रकार अत्यन्त उदार उद्देश्य को ध्यान में रखकर 'भारतीय ज्ञान परम्परा' इस नाम से इस पाठ्यक्रम की रचना की गई है। विज्ञान शरीरारोग्य का चिन्तन करता है, कला विषय मनोविज्ञान को तथा मनोविज्ञान आध्यात्मिक विज्ञान का पोषण करता है। विज्ञान साधनस्वरूप और सुखोपभोग साध्य है। अतः निःसन्देह रूप से कहा जा सकता है कि कला विषय शाखा विज्ञान से भी श्रेष्ठ है। लोग कला को छोड़कर विज्ञान से सुख नहीं प्राप्त कर सकते हैं परन्तु विज्ञान को छोड़कर कला से सुख को अवश्य प्राप्त कर सकते हैं।

यह वेदाध्ययन का पाठ्यक्रम छात्रानुकूल, ज्ञानवर्धक, लक्ष्यसाधक और पुरुषार्थ साधक है ऐसा मेरा मानना है।

इस पाठ्यक्रम के निर्माण में जिन हिताभिलाषी, विद्वांन, उपदेष्टा, पाठलेखक, त्रुटिसंशोधक और मुद्रणकर्ता ने साक्षात् या परोक्षरूप से सहायता की, उनको संस्थान पक्ष से हार्दिक कृतज्ञता ज्ञपित करते हैं। रामकृष्ण मिशन-विवेकानन्द विश्वविद्यालय के कुलपति श्रीमान् स्वामी आत्मप्रियानन्द जी का विशेषरूप से धन्यवाद जिनकी आनुकूलता और प्रेरणा के बिना इस कार्य की परिसमाप्ति दुष्कर थी।

इस पाठ्यक्रम के अध्येताओं का विद्या से कल्याण हो, सफल हो, विद्वांन हो, सज्जन हो, देशभक्त हो, समाज सेवक हो ऐसी हमारी हार्दिक इच्छा है।

अध्यक्ष

राष्ट्रीय मुक्त विद्यालयी शिक्षा संस्थान

आपसे दो बातें...

निदेशकीय वाक्

प्रिय पाठक,

'भारतीय ज्ञान परम्परा' पाठ्यक्रम को पढ़ने की इच्छा से उत्साहित भारतीय ज्ञान परम्परा के अनुरागी और उपासकों का हार्दिक स्वागत करते है। अत्यधिक हर्ष का विषय है, की गुरुकुलों में पढ़ाये जाने वाला पाठ्यक्रम हमारे राष्ट्रीय मुक्त विद्यालयी शिक्षा संस्थान के पाठ्यक्रम में भी सम्मिलित किया गया है। आशा है की लम्बे समय से हमारी संस्कृति से जो दूरी थी वह अब समाप्त हो जाएगी। हिन्दु जैन बौद्धों के धर्मिक, आध्यात्मिक और काव्यादि वाङ्मय प्रायः संस्कृत में लिखा हुआ है। मनुष्यों के प्रिय विषयों की भूमिका के माध्यम से प्रस्तुत प्रवेश योग्यता के द्वारा और मन को प्रसन्न करने के लिए माध्यमिक स्तर और उच्चतर माध्यमिक स्तर में कुछ विषय पाठ के माध्यम से सम्मिलित किये गए हैं। जैसे आंग्ल, हिंदी, आदि भाषा ज्ञान के बिना उस भाषा के लिखे गए उच्च माध्यमिक स्तरीय ग्रन्थ पढ़ने में और समझ में सक्षम नहीं हो सकते हैं, वैसे ही यहाँ पर प्रारम्भिक संस्कृत को नहीं जानते तो इस पाठ्यक्रम को जानने में समर्थ नहीं हो सकते हैं। अतः प्रारम्भिक संस्कृत तथा हिन्दी भाषा के जानकार छात्र यहाँ इस पाठ्यक्रम के अध्ययन के अधिकारी है, ऐसा जानना चाहिए।

गुरुकुलों में अध्ययन करने वाले छात्र आठवीं कक्षा तक जितना अपनी परंपरा से अध्ययन करें। नौवीं, दशवीं कक्षा और ग्यारहवीं तथा बारहवीं कक्षा तक भारतीय ज्ञान परम्परा के इस पाठ्यक्रम का निष्ठा से नियमित अध्ययन करें। इस पाठ्यक्रम से विद्यार्थी उच्च शिक्षा के लिए योग्य होंगे।

संस्कृत के विभिन्न शास्त्रों में किया गया कठिन परिश्रम विद्वान्, प्राध्यापक, शिक्षक और शिक्षाविद् इस पाठ्यक्रम का प्रारूप रचना में, विषय निर्धारण के लिए विषय परिमाण निर्धारण में विषय प्रकट करने का भाषा स्तर निर्णय में और विषय पाठ लिखने में संलग्न हैं। अतः इस पाठ्यक्रम का स्तर उन्नत होना है।

वेदाध्ययन की यह स्वाध्याय सामग्री आपके लिए पर्याप्त सुबोध रुचिकर आनन्दरस को देने वाली, सौभाग्य देने वाली धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष, उपयोगी रहेगी ऐसी हम आशा करते हैं। इस पाठ्यक्रम का प्रधान लक्ष्य है की भारतीय ज्ञान परम्परा का शैक्षणिक क्षेत्रों में विशिष्ट और योग्य स्थान स्वीकृत होना चाहिए। वह लक्ष्य इस पाठ्यक्रम के माध्यम से पूर्ण होगा, ऐसा हमारा दृढ विश्वास है। पाठक अध्ययनकाल में यदि मानते है की इस अध्ययन सामग्री में पाठ के सार में जहाँ संशोधन, परिवर्तन और परिवर्धन संस्कार चाहते हैं, उन सभी के प्रस्तावों का हम स्वागत करते हैं। इस पाठ्यक्रम को फिर भी और अधिक प्रभावी, उपयोगी और सरल बनाने में आपके साथ हम हमेशा तत्पर है।

सभी अध्येताओं के अध्ययन में सफलता और जीवन में सफलता के लिए और कृतकृत्य के लिए हमारे आशीर्वचन-

किं बाहुना विस्तरेण। अस्माकं गौरववाणीं जगति विरलाम् सर्वविद्याया लक्ष्यभूताम् एव उद्धरामि॥

सर्वेऽत्र सुखिनः सन्तु सर्वे सन्तु निरामयाः।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद् दुःखभाग् भवेत्॥

दुर्जनः सज्जनो भूयात् सज्जनः शान्तिमाप्नुयात्।
शान्तो मुच्येत बन्धेभ्यो मुक्तश्चान्यान् विमोचयेत्॥

स्वस्त्यस्तु विश्वस्य खलः प्रसीदतां ध्यायन्तु भूतानि शिवं मिथो धिया।
मनश्च भद्रं भजतादधोक्षजे आवेश्यतां नो मतिरप्य हैतुकी॥

निदेशक

राष्ट्रीय मुक्त विद्यालयी शिक्षा संस्थान

आपसे दो बातें...

समन्वयक वचन

प्रिय जिज्ञासुओं

ॐ सह नाववतु। सह नौ भुनक्तु सह वीर्य करवावहै। तेजस्विनावधीतमस्तु मा विद्विषावहै॥ ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः॥

परम्परा को आधार मानकर यह प्रार्थना कि हमारा अध्ययन विघ्नों से रहित हो। अज्ञान का नाश करने वाला तेजस्वि हो। द्वेष भावना का नाश हो। विद्यालाभ के द्वारा सभी कष्टों की शान्ति हो।

भारतीय ज्ञान परम्परा इस पाठ्यक्रम के अङ्गभूत यह पाठ्यक्रम उच्चतर माध्यमिक कक्षा के लिए निर्धारित किया गया है। इस पाठ्यक्रम की अध्ययन सामग्री आपके समक्ष प्रस्तुत करते हुए मैं परम हर्ष का अनुभव कर रहा हूँ। जो सरल संस्कृत तथा हिन्दी भाषा को जानता है, वह इस अध्ययन में समर्थ है।

वेदाध्ययन का अध्ययन स्तर के अनुसार होता है। इस लिए स्तरों के प्रत्येक पर्व का आरोहण क्रम के अनुसार ही होना चाहिए। अतः पाणिनीय अष्टाध्यायी का विद्वानों ने भिन्न क्रमानुसार व्याख्या किया है। यहाँ भी उसी प्रक्रिया का क्रम है। उसी क्रम को स्वीकार कर यह अध्ययन सामग्री सोपान, पर्व आदि के क्रम में निर्मित है। एक भाग माध्यमिक और अन्य भाग उच्चतर माध्यमिक कक्षा में है। इससे पाणिनीय तंत्र में प्रवेश के लिए छात्र की योग्यता बढ़ती है।

उच्चतर माध्यमिक कक्षा में दिया हुआ वेदाध्ययन विषय भी अत्यन्त उपकारक है। यह सामग्री वेदाध्ययन के श्रद्धा सहित अध्ययन में प्रवेश के लिए और मन को शांति देने वाली है। इस ग्रन्थ के आकार पर नहीं जाना चाहिए और न इससे भय होना चाहिए अपितु गम्भीर रूप से अध्ययन करना चाहिए।

सम्पूर्ण पाठ्य पुस्तक दो भागों में विभक्त है। इसके अध्ययन से छात्र वेदाध्ययन के मूलभूत ज्ञान को प्राप्त करेंगे।

पाठक पाठों को अच्छी तरह से पढ़कर पाठ में आये प्रश्नों के उत्तरों पर स्वयं विचार कर अन्त में दिए हुए प्रश्नों के उत्तरों को देखें, और उन उत्तरों को अपने उत्तरों से मिलाएं। प्रत्येक पत्र में दिए हुए रिक्त स्थान पर टिप्पणी करना चाहिए। पाठ के अन्त में दिये प्रश्नों के उत्तरों का निर्माण करके परीक्षा के लिए तैयार हो जाएँ। अध्ययन काल में किसी भी कठिनता का अनुभव करते हैं, तो अध्ययन केन्द्र में किसी भी समय जाकर के समस्या के समाधान के लिए आचार्य के समीप जाएँ। या राष्ट्रीय मुक्त विद्यालयी शिक्षा संस्थान के साथ ई-पत्रद्वारा सम्पर्क करें। वेबसाइट पर भी संपर्क व्यवस्था है। वेबसाइट www.nios.ac.in इस प्रकार से है।

ये पाठ्य विषय आपके ज्ञान को बढ़ाए, परीक्षा में सफलता को प्राप्त करवाए, रुचि बढाए, मनोरथ पूर्ण करे, ऐसी कामना करते हैं।

अज्ञानान्धकारस्य नाशाय ज्ञानज्योतिषः दर्शनाय च इयं में हार्दिकी प्रार्थना.
ॐ असतो मा सद् गमय। तमसो मा ज्योतिर्गमय। मृत्योर्मामृतं गमय॥ ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः॥

भवत्कल्याणकामी

पाठ्यक्रम समन्वयक
राष्ट्रीय मुक्त विद्यालयी शिक्षा संस्थान

अपने पाठ कैसे पढ़ें !

बधाई! आपने स्व-शिक्षण की चुनौती स्वीकार की है। एनआईओएस हर कदम पर आपके साथ है और विशेषज्ञों के दल के साथ मिलकर आपको ध्यान में रखते हुए ''वेदाध्ययन'' की यह सामग्री तैयार की गई है। इसमें अपनाया गया प्रारूप स्वतंत्र शिक्षण के अनुकूल है। यदि आप इसमें दिए अनुदेशों का पालन करेंगे तो आप इस सामग्री से अधिकाधिक लाभ ले सकेंगे। इस सामग्री में प्रयुक्त प्रासंगिक आइकॉन आपका मार्गदर्शन करेंगे। इन आइकॉन को आपकी सुविधा के लिए नीचे स्पष्ट किया गया है।

शीर्षक : आपको अंदर की पाठ्य सामग्री का स्पष्ट संकेत देगा।

परिचय : यह आपको पूर्ववर्ती पाठ से जोड़ते हुए पाठ का परिचय कराएगा।

उद्देश्य : ये ऐसे कथन हैं, जिनसे आपको पता चलेगा कि आप इस पाठ से क्या सीखने जा रहे हैं। उद्देश्य आपको यह जांचने में भी सहायता करेंगे कि आपने इस पाठ को पढ़ने के बाद क्या सीखा है। इन्हें अवश्य पढ़ें।

नोट्स : प्रत्येक पृष्ठ पर किनारे के हाशियों में खाली स्थान है, जिसमें आप महत्वपूर्ण बिंदु लिख सकते हैं या नोट्स बना सकते हैं।

पाठगत प्रश्न : प्रत्येक खंड के बाद स्वयं जांच हेतु बहुत छोटे उत्तरों वाले प्रश्न हैं, जिनके उत्तर पाठ के अंत में दिए गए हैं। इनसे आपको अपनी प्रगति जांचने में सहायता मिलेगी। इन्हें अवश्य हल करें। इनको सफलतापूर्वक पूरा करने पर आप जान सकेंगे कि आपको आगे बढ़ना चाहिए या इसी पाठ को दोबारा पढ़ना चाहिए।

आपने क्या सीखा : यह पाठ के मुख्य बिंदुओं का सारांश है। इससे आपको संक्षिप्त में दोहराने में सहायता मिलेगी। इसमें आप अपने बिंदु भी जोड़ सकते हैं।

पाठांत प्रश्न : यह लंबे व छोटे उत्तरों वाले प्रश्न हैं जो आपको पूरे विषय की स्पष्ट समझ प्राप्त करने के लिए अभ्यास करने का अवसर प्रदान करते हैं।

पाठगत प्रश्नों के उत्तर : इससे आपको यह जानने में मदद मिलेगी कि आपने प्रश्नों के उत्तर ठीक दिए हैं या नहीं।

पुस्तक-१

वैदिक साहित्य का इतिहास

1. वैदिक वाङ्मय की विलक्षणता और वेद प्रमाण विचार
2. ऋक्संहिता साहित्य
3. यजुर्वेद और सामवेद संहिता साहित्य
4. अथर्ववेद संहिता साहित्य
5. ब्राह्मण साहित्य
6. आरण्यक और उपनिषद्
7. वेदाङ्ग साहित्य

वैदिक स्वर प्रक्रिया

8. साधारण स्वर-१
9. साधारण स्वर-२
10. धातु स्वर और प्रातिपदिक स्वर
11. फिट् स्वर
12. प्रत्यय स्वर
13. समास स्वर
14. तिङन्त स्वर

पुस्तक-2

वैदिक सूक्तों का अध्ययन

15. अग्निसूक्त
16. इन्द्रसूक्त
17. हिरण्यगर्भ सूक्त
18. पुरुषसूक्त
19. देवीसूक्त और श्रद्धासूक्त
20. विष्णुसूक्त और मित्रावरुणसूक्त
21. अक्षसूक्त
22. पर्जन्यसूक्त और मनुमत्स्य कथा
23. शिवसङ्कल्पसूक्त और प्रजापतिसूक्त
24. रुद्र अध्याय
25. पृथ्वी सूक्त
26. सरमा पणि संवाद सूक्त

विषय सूची

पुस्तक-१

वैदिक साहित्य का इतिहास

1. वैदिक वाङ्मय की विलक्षणता और वेद प्रमाण विचार 1
2. ऋक्संहिता साहित्य 17
3. यजुर्वेद और सामवेद संहिता साहित्य 35
4. अथर्ववेद संहिता साहित्य 51
5. ब्राह्मण साहित्य 61
6. आरण्यक और उपनिषद् 72
7. वेदाङ्ग साहित्य 89

वैदिक स्वर प्रक्रिया

8. साधारण स्वर-१ 114
9. साधारण स्वर-२ 130
10. धातु स्वर और प्रातिपदिक स्वर 148
11. फिट् स्वर 164
12. प्रत्यय स्वर 181
13. समास स्वर 199
14. तिङन्त स्वर 216

1

वैदिक वाङ्मय की विलक्षणता और वेद प्रमाण विचार

हमारा वैदिक वाङ्मय विलक्षण है। लौकिक काव्य की अपेक्षा वैदिक काव्य विद्वानों के मन को अधिक हर्षित करता है। वैदिक काव्य के विषय में विद्वानों के मन में कोई भी संदेह नहीं है। वैदिक ऋषियों ने मनोगत भावों को प्रकट किया था। वस्तुत: तो वेद अपौरुषेय है, ऐसा आस्तिकों का मत है। ऋषियों ने केवल मन्त्रों को देखा, वे उसके कर्ता नहीं हैं। वेद में काव्य तो अपने आप ही है। किन्तु ऋषियों के मुख से ही उनका सर्व प्रथम प्रकाश होने के कारण उसे ऋषियों का काव्य कहा जाता है। वैदिक मन्त्रों में अनेक रस प्रकट होते है। उपमा आदि अलङ्कारों की उत्पति वैदिक काल में ही हुई। वैदिक वाङ्मय में अलङ्कारों का उपयोग व्यर्थ नहीं है। क्योंकि इन अलङ्कारों के द्वारा एक सूक्ष्म अर्थ प्रकाशित नहीं होता था। कवियों में श्रेष्ठ कवि होता है, वैदिक ऋषि। वैदिक मन्त्रों में प्रकृति का वर्णन भी सुंदर प्राप्त होता है। इन विषयों को हम इस पाठ में पढ़ेंगे और यहाँ हम वेद के प्रमाण विषय पर भी चर्चा करेंगे।

उद्देश्य

इस पाठ को पढ़कर आप सक्षम होंगे :

- वैदिक वाङ्मय की विलक्षणता को जान पाने में;
- वेदों में रस का विधान समझ पाने में;
- वैदिक ऋषियों के काव्य के विषय में जान पाने में;
- वेद में अलंकारों का उपयोग समझ पाने में;
- वेद में सौन्दर्य का वर्णन को जान पाने में;
- वेद के प्रमाण के विषय में जान पाने में।

टिप्पणियाँ

1.1 भूमिका

लौकिक काव्यों के द्वारा वैदिक वाङ्मय की विलक्षणता विद्यमान है। और यह विलक्षणता ही वेद के पद्यों और गद्यों में प्रकाशित है। यद्यपि लौकिक काव्य अनेक हैं, फिर भी विद्वानों को वैदिक वाङ्मय में ही अधिक आनन्द प्राप्त होता है। सम्पूर्ण काव्यों में वैदिक काव्य ही प्रथम है, ऐसा विद्वानों का मत है। लौकिक काव्यों का स्थान तो वैदिक काव्य के पश्चात् ही विद्यमान है। वेद में मिथिला आदि नगरियों का वर्णन अत्यधिक सुंदर है। जैसे वहां पर वृत्रासुर का विकराल रूप का वर्णन प्राप्त होता है, वैसा ही देवासुर सङ्ग्राम का भी वर्णन प्राप्त होता है। इन घटनाओं का वर्णन पाठकों के मन में आनन्द को उत्पन्न करता है।

वैदिक ऋषियों ने मनोगत भावों कों अच्छी प्रकार से प्रकट किया। मनोगत भावों को सुन्दर रूप से प्रकट करने के लिए अलङ्कारों की आवश्यकता होती है। ऋषियों ने भी स्थान-स्थान पर मनोगत भावनाओं कों प्रकट करने के लिए अलङ्कारों का प्रयोग किया। वैदिक मन्त्रों में भी अनेक अलङ्कार प्राप्त होते हैं। काव्य संसार में कविता जितनी प्राचीन है, उपमालङ्कार भी उतना ही प्राचीन है। कवि जहां कही पर भी अलङ्कारों का प्रयोग नहीं करता है। प्रसङ्ग के अनुसार ही उन अलङ्कारों का प्रयोग किया जाता है। और उस प्रयोग के द्वारा वह बहुत ही कठिन विषय को भी थोड़े ही पदों में अत्यधिक सरलता से प्रकट करता है। वैदिक वाङ्मय में भी अर्थ को दर्शाने के लिए अलङ्कारों का प्रयोग किया जाता है। जैसे चन्द्रमा गहरे अन्धकार से आच्छादित रात्रि को आलोकित करता है, वैसे ही अलङ्कारों के द्वारा वैदिक वाङ्मय के कठिन विषय को समझाने के लिए होता है। वहाँ पर अनुप्रास, उपमा, उत्प्रेक्षा, दृष्टान्त, अर्थान्तरन्यास, इत्यादि अलङ्कार स्थान-स्थान में प्राप्त होते हैं।

वैदिक वाङ्मय में अलङ्कारों के प्रयोग से रस का ही प्रतिपादन किया जाता है। सम्पूर्ण सन्दर्भ में ये अलङ्कार काव्य शोभा को निरंतर बढ़ाते हैं। कवि अपने अनुभव को श्रोता के हृदय तक सरलता से पहुचाने के लिए उसके अनुरूप ही अलङ्कार आदि युक्त वाक्य का प्रयोग करता है। हम इस प्रकार काव्ययुग की कल्पना भी नहीं कर सकते जहाँ उपमा आदि अलङ्कारों का प्रयोग नहीं किया।

वैदिक सूक्तों में अनेक देवताओ ने यज्ञ के प्रति समागम के लिए पार्थिव सुख के सम्पादन के लिए और आध्यात्मिक भाव के अन्वेषण के लिए अनेक छन्दों में प्रार्थना की। प्रार्थना के समय कवि ने उनकी पवित्र भावानाओं का और भव्य रूपों का अच्छी प्रकार से वर्णन किया है और व्यङ्ग्य अर्थ को बताने वाले वाक्य वहाँ विद्यमान हैं। वैदिक ऋषि उच्च विचारों को सोचने में समर्थ थे। कला रहित जीवन उनको अच्छा नहीं लगता था। वे कलाओ में कुशल जीवन को देखना चाहते थे। उनके मत में वही जीवन होता है, जिसमें कला रहती है। वेद भी जीवन कलायुक्त हो, ऐसा भाव प्रकट करता है। वेद वेदाङ्गो में कहीं पर उषा विषयक मन्त्रों में सौन्दर्य भावों को अधिक रूप से दिखाता है। और कहीं पर इन्द्र विषयक मन्त्रों में तेजस्विता की अधिकता

परिलक्षित होती है। जैसे अग्नि के रूपवर्णन प्रसङ्ग में स्वभावोक्ति अलंकार का प्रयोग करते हैं, वैसे ही वरुण स्तुति में हृदय में आये कोमल भावों के और माधुर्य गुण का प्रकाश है। ''उतत्व: पश्यन् न ददर्श वाचं, जायेव पत्ये उषती सुवासा, द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया'' इस प्रकार अनेक वाक्य वेदों में है। इन वाक्यों का अभिप्राय साहित्य शास्त्रों में अनभिज्ञ व्यक्ति जान नहीं सकता है। इसी प्रकार जो जन साहित्य शास्त्र को नहीं जानता वह व्यञ्जना के द्वारा प्रतिपादित वैदिक अर्थो को नहीं जान सकता। इसी प्रकार वैदिक मन्त्रों में काव्य के अत्यधिक गुण देखे जाते हैं, जिनका ज्ञान वैदिक मन्त्रों के अर्थ समझाने के लिए अत्यन्त आवश्यक है। तन्मयता से उत्कृष्ट वैशिष्ट्य वेदों में प्राप्त है। वेदों में ही भावना के सहज और सरल रूप की अभिव्यक्ति है।

पाठगत प्रश्न 1.1

1. उपमा काव्य संसार में कितनी प्राचीन है?
2. मनोगत भावों को प्रकट करने के लिए क्या आवश्यक होते हैं?
3. कुछ अलङ्कारों के नाम लिखिए।
4. कला रहित जीवन किनको अच्छा नहीं लगता?
5. साहित्य शास्त्रों में अनभिज्ञ व्यक्ति क्या नहीं जान सकता?

1.2 रस विधान

ऋग्वेद के मन्त्रों में अनेक रस है। अत: वे मन्त्र हमारे मन को प्रधान रूप से आकर्षित करते है। वैदिक ऋषियों के मनोगत भावों के सरल निदर्शन इन मन्त्रों में प्राप्त होती है। ऋक् मन्त्रों में इन्द्र स्तुति में वीररस का अच्छी प्रकार से वर्णन किया। दाशरात्र सूक्त में महर्षि वसिष्ठ राजा दिवोदास के तथा उसके प्रतिपक्ष के मध्य में जो सङ्घर्ष हुआ उसका सुंदर रूप से वर्णन करते हैं।

गृत्समद ऋषि ने अनेक स्तुति में वीररस को आश्रित करके इन्द्र का वर्णन किया। जैसे –

'यस्मान्न ऋते विजयन्ते जनासोऽयं युध्यमाना अवसे हवन्ते।
यो विश्वस्य प्रतिमानं बभूव यो अच्युतच्युत् स जनास इन्द्रः॥

(ऋग्वेद में २/१२/९)

इस मन्त्र का यह अर्थ है – इन्द्र के बिना कोई भी मानवों को विजय प्राप्त नहीं करा सकता। योद्धा आत्म रक्षा के लिए उसका ही आह्वान करते हैं। सभी देवों में यह इन्द्र सर्व श्रेष्ठ है। किन्तु जो इन्द्र पद की प्राप्ति के लिए कठोर साधना करते हैं, वह उनका सङ्कल्प भङ्ग करता है। इन्द्र हि शौर्य के और शक्ति के प्रतीक हैं। यहाँ पर इन्द्र के महान वर्णन वीररस में लिखा हुआ है।

इसी प्रकार सभी स्थित भावनाओं की अभिव्यक्ति कवि के द्वारा उचित प्रकार से और प्रशंसनीय रूप से की गई है। कवि की लेखनी अत्यधिक बलशालिनी होती है। इस कारण उसका प्रत्येक पद अनेक अर्थो को प्रकाशित करता है। इसी कारण ही इन श्लोकों से काव्य सौन्दर्य, ओज छटा, रीति उन्नत रूप से पूर्णोपमा इत्यादी पाठकों के चित को अपनी और आकर्षित करती है। ऋषि के सभी प्रयास यहाँ पर वीररस को ही पोषित करते हैं।

सौन्दर्य ही काव्य का 'रस' ऐसा विद्वान भी स्वीकार करते हैं। कवि उस रस को ही साधकर काव्य की रचना करते हैं। वह रस श्रृंगार, करुणा, आदि भेद से नौ प्रकार का है। नौ रसो में भी श्रृंगार नाम का रस रसराज है, ऐसा सभी साहित्य शास्त्रज्ञ बताते हैं। जैसे श्रृंगार रस हमारे मन को प्रसन्न कर सकता है, वैसे अन्य रस प्रभावित नहीं कर सकते। इसलिए वह रसों में श्रेष्ठतम है। वह श्रृंगार रस संभोग श्रृंगार और विप्रलम्भ श्रृंगार भेद से दो प्रकार का है। इनके मध्य में विप्रलम्भ श्रृंगार अत्यधिक मधुर है। वहाँ मन काव्य के प्रतिपादित विषयों में अनायास से ही रमण करने लगता है। उससे उत्तम और मधुरतम कोई भी रस प्राप्त नहीं होता है।

ऋग्वेद के अनेक सूक्तों में श्रृंगार रस का उल्लेख प्राप्त होता है। वहाँ एक सूक्त में पुरूरवा-उर्वशी विवाह प्रसङ्ग में विरह पीड़ित नायक के कथन में विप्रलम्भ श्रृंगार रस का सङ्केत प्राप्त होता है –

'इषुर्न श्रिय इषुधेरसना गोषाः शतसा न रंहिः।
अवीरे क्रतौ विदविधुवन्नोरा न मायुं चितयन्तः धुनयः॥'

श्रृंगार रस के आभास का सङ्केत भी यमयमी सूक्त में (१०/१०) उपलब्ध होता है। जहाँ यमी अपने भाई यम के समीप जाकर के सङ्गम के लिए प्रार्थना करती है। परंतु यम उसके प्रलोभन से आकृष्ट नहीं हुआ।

पाठगत प्रश्न 1.2

1. दाशरात्र सूक्त में किसके द्वारा राजा दिवोदास के तथा उनके प्रतिपक्षि के सङ्घर्ष का सुंदर वर्णन किया गया है?
2. किस ऋषि ने अनेक स्तुति में वीररस का आश्रय लेकर के इन्द्र का वर्णन किया?
3. किसके बिना कोई भी मनुष्य विजय को प्राप्त नहीं कर सकता?
4. शौर्य के और शक्ति के प्रतीक कौन हैं?
5. कवि किसको साधकर काव्य को लिखते हैं?
6. नौ रसों में किस रस को रसराज के रूप में सभी साहित्य शास्त्रज्ञ बताते हैं?

7. शृंगार रस के दो भेद कौन से हैं?

8. शृंगार रस के दो भेदों के मध्य कौन सा शृंगार अत्यधिक मधुर है?

9. शृंगार रस के आभास का सङ्केत कहाँ पर उपलब्ध होता है?

1.3 अलंकारों का विधान

ऋग्वेद के मन्त्रों में अलङ्कारों का प्राचुर्य दिखाई देता है। ये अलङ्कार अपने आप उत्पन्न हुए है। वैदिक अलङ्कारों में जो सुन्दरता, जो कुशलता और जो रचना दिखाई देती है, वह अन्यत्र नहीं प्राप्त होती है। वैदिक ऋषि कवियों में श्रेष्ठ कवि हैं। वह प्रेम का परम उपासक महान भावुक और सौन्दर्य प्रियों में शिरोमणि है। इसलिए जगत का सभी ज्ञान उसका है। अलङ्कार सौन्दर्य को प्रकट करने का भी साधन है। ये अलङ्कार कवि कथन को प्रभावशाली करने में, विषयों को रमणीय बनाने में, और हृदयगत भावों को प्रकाशित करने में सभी रूप से समर्थ हैं। रूपक तो वेद का एक प्रशंसनीय और प्रसिद्ध अलङ्कार है। वेदों की शैली ही रूपकमयी है। सुन्दर उपमानों की यहाँ पर सुन्दर रूप से आलोचना की है। अन्य अलङ्कारों में भी अतिशयोक्ति अलङ्कार का, व्यतिरेक अलङ्कार का और समासोक्ति अलङ्कार का प्रयोग यहाँ दिखाई देता है। वहाँ पर उपमा अलङ्कार का उदाहरण जैसे –

'अभ्रातेव पुंस एति प्रतीची गर्त्ता रुगिव सनये धनानाम्।
जायेव पत्य उशती सुवासा उषा हस्रेवः निरिणीते अप्सा॥' इति॥

इस मन्त्र का यह अर्थ है – कभी उषा भाई रहित बहिन के समान अपने दायभाग को प्राप्त करने के लिए पितृ स्थानीय सूर्य के समीप आती है। कभी पति को प्रसन्न करने के लिए सुंदर वस्त्रों को धारण करती है। कभी काम में आसक्ता कामिनी के सामान पति के सामने अपने सौन्दर्य को प्रकट करती है।

वैदिक कवि ने समीप रहने वाले पशु जीवन का भी उपमान रूप में प्रयोग किया। शाम के समय में अपने स्थान में वापस आती हुई गायों को देखते हुए उनको अत्यधिक प्रसन्नता होती है।

इन्द्र स्तुति में (१/३२) अङ्गि रस हिरण्यस्तूप ऋषि की यह उक्ति है, जब त्वष्टा द्वारा निर्मित स्वर युक्त वज्र से इन्द्र ने पर्वत आश्रित वृत्रासुर को मारा तब रम्भाति हुई गाय बछड़े के समीप जाती है, उसी प्रकार जल समुद्र की तरफ गया –

'अहन्नहिपवते शिश्रियाणां त्वष्टास्मै वज्रं स्वयं ततक्ष।
वाश्रा इव धेनवः स्यन्दमाना अञ्जः समुद्रमवदग्मुरापः॥' इति॥

– ऋग्वेद १/३२/२

सामान्य रूप से यह अर्थ बहुत पदो से वर्णन किया जाता है, परन्तु उपमा अंलङ्कार के प्रयोग से वह अर्थ थोड़े पदो से ही प्रकाशित होता है। जैसे 'वाश्रा धेनवः' इस पद के द्वारा ऋषि ने

टिप्पणियाँ

वृष्टि के साथ शब्द करती हुई धेनु के साथ समानता प्रकट की है। यहाँ पर वह वेदपाठकों के सामने झञ्झावत के साथ वृष्टि, समुद्र के प्रति जल का वेग प्रवाह, उस वर्षा का अत्यधिक सुंदर और सरल शब्दों में वर्णन किया है।

हृदय वृत्ती का अच्छे रूप से प्रकट करने के लिए वरुण सूक्तों का अनुशीलन करना विशेष रूप से सहायक होता है। ऋग्वेद के एक सूक्त में (ऋग्वेद ७/८६) अपने आराध्यदेव वरुण के प्रति महर्षि वसिष्ठ की विनम्रता प्रकट की। वहाँ ऋषि आत्मा से पूंछते हैं - कब मैं वरुण की मैत्री को प्राप्त करुंगा। क्रोध से रहित होकर कब वरुण मेरी दी हुई हवि को ग्रहण करेंगे। कब मैं प्रसन्न मन होकर उसके प्रसाद को प्राप्त करूंगा।

'उतस्वया तन्वा संवदे तत्कदान्वन्तर्वरुणे भुवानि।
किं मे हव्यमहृणानो जुषेव कदा मृडीकं सुमना अभिख्यम्॥' इति॥

(ऋग्वेद ७/८६/२)

यहाँ महर्षि वशिष्ठ वरुण देव से प्रार्थना करते हैं - हे देव! मेरे किये हुए द्रोह को छोड़ दो। उन द्रोहों को और विरोध को दूर कर दो, जो मैंने अपने शरीर से किये। जैसे पशुओं का अपहरण करने वाला चोर अथवा रस्सी से बंधे हुए बछड़े को लोग मुक्त करते हैं, वैसे ही मेरे अपराध से बंधे हुए वसिष्ठ को तुम छोड़ दो।

'अव द्रुग्धानि पित्र्या सृज्या नोऽव या वयं चकृमा तनूभिः।
अव राजन् पशुतृपं न वायुं सृजा वत्सं न दाम्नो वसिष्ठम्॥' इति॥

- (ऋग्वेद ७/८६/५)

इस सूक्त में आत्म समर्पण, नम्रता, दीनता, अपराध स्वीकृति, इत्यादि विशाल भावना देखते हैं। यह सूक्त उन वैष्णव भक्तों की वाणी को स्मरण कराते है, जहाँ वे हजार अपराधों को करके भी भगवान के साक्षात् करना चाहते हैं।

सूर्योदय का दृश्य भी अत्यधिक मनोहर है। इसका वर्णन बहुत से अलङ्कारों को आश्रित करके किया। प्रभात वर्णन प्रसङ्ग में वह कहता है, की कोई मनुष्य कुछ भी चर्म को लेकर जल के अंदर रखते हैं, वैसे ही सूर्योदय होने पर उसकी किरण अन्धकार को छुपा देती है -

'दविध्यतो रश्मयः सूर्यस्य चर्मेवावाधुस्तमो अप्स्वन्तः।' (ऋग्वेद ४/१३/४)

रूपकों की भी बहुलता ऋग्वेद के मन्त्रों में उपलब्ध है। सूर्य आकाश की सुनहरी मणि है -**''दिवो रुक्म उरुचक्षा उदेति'' इति (ऋग्वेद ७/६३/४)**। सूर्य जलता हुआ पत्थर का टुकड़ा है, जो आकाश में रखा हुआ है - **''मध्ये दिवो निहितः पृश्नरश्मा'' इति (ऋग्वेद ५/४७/३)**। अग्नि अपने प्रभा से आकाश को स्पृश करती है - **''धृतप्रतीको बृहता दिवि स्पृशा" इति (ऋग्वेद ५/१/१)**। यह स्पष्ट ही है, की ये मन्त्र अतिशयोक्ति मूलक है। ऋग्वेद में अतिशयोक्ति के अनेक

उदाहरण हैं। वहाँ सायणाचार्य के अनुसार यज्ञ की, पतञ्जलि के अनुसार शब्द की, अथवा राजशेखर के अनुसार काव्य की स्तुति कि गई है। वैसे ही –

'चत्वारि शृङ्गास्त्रयोऽस्य पादा द्वे शीर्षे सप्त हस्तासौ अस्य।
त्रिधा बद्धो वृषभो रोरवीति महोदेवो मर्त्याम् आविवेश॥ इति॥

(ऋग्वेद ४/५८/३)

और भी उदाहरण हैं –

'द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परिषस्वजाते।
तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्यनश्नन्नन्यो अभचाकशीति॥' इति॥

इस मन्त्र का यह अर्थ है – अच्छे पक्षधर वाले, साथ रहने वाले, समान ख्याति वाले दो पक्षी एक ही वृक्ष के ऊपर स्थित हैं। उन दो विहगों में एक अच्छे स्वाद वाले फलों को खाता है, और दूसरा तो बिना खाते हुए देखता रहता है। यहाँ दो पक्षियों से जीवात्मा और परमात्मा की उपमा की गई है। यहाँ पर अतिशयोक्ति अंलङ्कार है। दोनों पक्षियों का स्वभाव समान नहीं है। उस व्यतिरेक अंलङ्कार का भी गूढ़ सङ्केत यहाँ प्राप्त होता है। व्यतिरेक का अन्य उदाहारण भी ऋतु चक्र के वर्णन में प्राप्त होता है, जैसे – 'द्वादशारं नहि तज्जराय वर्वत्ति चक्रं परिधामृतस्य' इति। (ऋग्वेद १/१६४/११)।

उपनिषदों में भी अनेक अलङ्कारों के दृष्टान्त प्राप्त होते है। कठोपनिषद् में रथ के रूप में शरीर है, (१/३/३)। ऋग्वेद में ऋतु वर्णन पर अनेक मन्त्र प्राप्त होते हैं। पर्जन्य सूक्त में (५/८३) वर्षा काल का अत्यधिक सुंदर वर्णन है। मण्डूक सूक्त में भी (७/१०३) वर्षा काल का एक रमणीय दृश्य का वर्णन है। वहाँ एक मेंढक के शब्द को सुनकर दूसरा भी ध्वनि करता है। जैसे गुरु वेदपाठ करता है, और शिष्य उसका अनुसरण करते है, वैसे ही यह मेंढक ध्वनि है –

'यदेषामन्यो अन्यस्य वाचं शाक्तस्येव वदति शिक्षमाणः।
सर्वं तदेषां समृधेव पर्व यत् सुवाचो वदतनाध्यप्सु॥ इति॥'

इस प्रकार से अलङ्कारों की किरण आलोचकों की दृष्टि को अनायास ही आकर्षित करती है।

पाठगत प्रश्न 1.3

1. वेदों में प्रशंसनीय अलङ्कार कौन सा है?
2. वेदों की शैली कैसी है?
3. ऋतु वर्णन परक मन्त्र कहाँ प्राप्त होते हैं?
4. व्यतिरेक का सुंदर उदाहरण कहाँ प्राप्त होता है?

1.4 सौन्दर्य की कल्पना

उषादेवी के विषय में जो सूक्त प्राप्त होते हैं, उनकी पर्यालोचना से ज्ञात होता है, की जो ये सूक्त है, काव्य दृष्टि से भी अत्यंत सरल और भव्य भाव से पूर्ण है। प्रभात काल में सूर्य की किरणों से आलोकित पूर्व आकाश किस सहृदय के हृदय को आनन्दित नहीं करता है। वैदिक ऋषि उस सौन्दर्य को प्रेम से ही देखते हैं। उस दिव्य रूप को देखकर वह मोहित होता है।

किसी भी पदार्थ का स्वाभाविक रूप से जो वर्णन होता है, वही वर्णन कला को उत्कृष्ट रूप को प्रकाशित करता है। जो रस्किन महोदय ने कहा की वैदिक ऋषि सम्यक् रूप से प्रकृति का वर्णन करते हैं। प्रकृति वर्णन में उषादेवी के सौन्दर्य कथन करने में और उसके निरीक्षण करने में सहृदय के पट पर और अधिक कल्पनाशक्ति को विशेष रूप से प्रकाशित करता है। इससे ज्ञात होता है की शैशव अवस्था से ही प्रकृति माता की गोद में ही ऋषियों का लालन और पालन हुआ। अत उषाकाल के वर्णन में प्रकृति वैसे विराजमान होती है, जैसे मणिमाला में स्वर्णसूत्र विराजमान है। उषा केवल बाहरी सौन्दर्य को ही प्रकाशित नहीं करती अपितु वह कवि के आन्तरिक सौन्दर्य को भी निरंतर प्रकाशित करती रहती है। यहाँ उषादेवी के कोमल भावों का, कठोर भावों का, और शीत स्पर्श का वैसे ही मनोहर वर्णन किया जिससे पाठकों के मन में निरंतर उल्लास बना रहे।

वैदिक ऋषि की प्रतिभा उषादेवी के चरित्र चित्रण में सभी रूप से कुशल ही है। कवि ने यहाँ पर उषादेवी का जो चरित्र चित्रण किया वह सहृदयों के हृदय में उल्लास को उत्पन्न करता है। इसी कारण ही कवि कहता है कि – ''हे प्रकाश देने वाली उषा ! तुम कमनीय कन्या की तरह अत्यन्त आकर्षणमयी होकर इच्छित फल देने के लिए सूर्य के समीप जाती हो, किन्तु वहाँ जाकर सूर्य के सामने स्मित आनंद देने वाली तरुणी के समान अपने वक्ष-स्थल प्रदेश को खोल देती हो। तेरे इस प्रकार के रूप को कौन भूल सकता है। अथवा खुले हुए वक्ष स्थल को देखकर कौन मनुष्य प्रेरणा को प्राप्त नहीं करता है।'' वैसे ही –

'कन्येव तन्वा शाशदानां एषिदेवि देवमियक्षमाणम्।
संस्मयमाना युवतिः पुरस्तादाविर्वक्षांसि कृणुसे विभाती॥' इति॥

– (ऋग्वेद १/१२३/१०)

यहाँ कवि में मानवीकरण की भावना अत्यन्त बलवान है। यहाँ उषादेवी का कुमारी रूप की कल्पना की है। और वह भावना सुंदर शरीर की तरह उसके सुन्दर स्वरूप को प्रकट करती है। युवति कन्या की कल्पना उसका सूर्य के समीप में जाना इत्यादि भावना यहाँ कवि की व्यापक दृष्टि का बोध कराती है।

कवि ने उषादेवी के विषय में अन्य भी कल्पना की है। उषा अपने प्रकाश से संसार को वैसे ही पवित्र करती है, जैसे कोई भी योद्धा अपने शस्त्रों का घर्षण से उनका संस्कार करते हैं। वैसे ही –

''अपेजते शूरो अस्तेव शत्रून् बाधते तमो अजिरा न बोलहा।' इति॥

– (ऋग्वेद ६/६४/३)

उषा अपने प्रकाश को वैसे ही विस्तृत करती है, जैसे गोपालक गोचर भूमि में अपनी गायों को फैलाता है। अथवा जैसे कोई भी नदी अपने जल को फैलाती है –

''पशून्न चित्रा सुभगा प्रथाना सिन्धुर्नक्षोद उर्विया व्यश्वैत।''

– (ऋग्वेद १/९२/१२)

उषा का प्रतिदिन निकलने से उसके अमरत्व का भी यहाँ वर्णन किया है –

''उषः प्रतीची भुवनानि विश्वोर्ध्वा तिष्ठस्य मृतस्य केतुः।''

– (ऋग्वेद ३/६/३)

कवि की दृष्टि में उषादेवी का जाना आना पहिये के समान है। जिस प्रकार से पहिया हमेशा ही ऊपर नीचे होता रहता है, वैसे ही उषादेवी भी नित्य उत्पन्न होती रहती है –

''सामानामर्थं चरणीयमाना चक्रमिव नव्यस्यावर्वृत्स्व।''

– (ऋग्वेद ३/६/३)

पाठगत प्रश्न 1.4

1. उषा वर्णन में प्रकृति कैसे शोभित होती है?
2. उषादेवी अपने प्रकाश को कैसे फैलाती है?
3. उषादेवी सूर्य के सामने जाकर के क्या करती है?

1.5 प्रकृति का चित्रण

प्रकृति का वर्णन दो प्रकार से हो सकता है –

1.5.1 अनावृत वर्णन

प्रकृति में स्वयं के आलम्बन से वर्णन को अनावृत्त वर्णन कहते हैं। यहाँ प्रकृति का प्राकृतिक माधुर्य कवि के हृदय को आकृष्ट करता है, वैसे अनिर्वचनीय आनन्द से कवि के मन को संतुष्ट करता है।

1.5.2 अलङ्कृत वर्णन

अलङ्कृत वर्णन में प्रकृति का तथा उसके व्यापारों का मानवीकरण होता है। वहाँ प्रकृति चेतन प्राणि के समान अनेक कार्यो को पूर्ण करती है। वह कभी स्मित मुख वाली कुमारी के समान दर्शकों के हृदय को आकृष्ट करती है। कभी भयानक जंतु के समान हमारे हृदय में भय और क्षोभ को उत्पन्न करता है।

उषा देवी के वर्णन में वैदिक कवि की दो प्रकार की भावना प्रकाशित होती है। पूर्व की दिशा में प्रभात उषा के स्वरूप को देखकर वैदिक कवि के हृदय आनन्द से पूर्ण होकर कहता है –

''उषो देव्यमर्त्या विभाहि चन्द्ररथा सूनृता ईरयन्ती।
आत्था वहन्तु सुयमासो अश्वाः हिरण्यवर्णा पृथववाजसो ये।'' इति॥

– (ऋग्वेद ३/६१/२)

इस मन्त्र का यह अर्थ है की – हे प्रकाश से पूर्ण उषादेवी ! तुम सुवर्ण रथ में आरूढ हो। तुम ने अमृत प्राप्त किया। इसलिए तुम दिव्य हो। तेरे उदय काल में पक्षी सुनने में मधुर ध्वनि करते है। स्वर्ण वर्ण सुशिक्षित और सुदर्शन घोड़े सम्पूर्ण पृथ्वी बल से तुम को ले जाते हैं।

अलङ्कृत वर्णन अवसर में उषा के मनोहर रूप का और व्यापार का हृदयग्राहि वर्णन प्राप्त होता है –

जायेव पत्या उशती सुवासा उषा हस्रेव निरिणीते अप्सः। (ऋग्वेद १/१२४/७)

यहाँ कवि नारी के कोमल हृदय का स्पर्श करता है। नारी जीवन प्रेम पूर्ण होता है। प्रेम से प्रकृति में भी प्राणप्रद शक्ति का सञ्चार होता है। प्रेम से प्रकृति जीवित होती है, और श्वास में बढ़ते हैं। जीवन का मूलभूत लक्ष्य ही नारी प्रेम है। केवल नारी नहीं अपितु नर और नारी दोनों ही वहाँ पर अपेक्षित है। वैदिक कवि ने उषा के रूप वर्णन से मानव जीवन के प्रेमरूप प्रधान तत्त्व का ही वर्णन किया है। वह चाहते हैं की जीवन प्रेम से पवित्र हो। उसके मत में वह प्रेम नहीं है, की जो अनाचार दोष से दूषित हो अथवा स्वार्थ विशेष साधक हो। उससे वह पवित्र प्रेमपूर्ण जीवन में ही अत्यधिक श्रद्धा को प्रकट करते है।

पाठगत प्रश्न 1.5

1. जीवन का प्रधान लक्ष्य क्या है ?
2. क्या प्रकृति से प्राणप्रद शक्ति का संचार होता है?
3. घोड़े किस बल से उषादेवी को ले जाते है?
4. अलङ्कृत वर्णन में किनका मानवीकरण होता है?
5. कवि ने कहाँ पर श्रद्धा को प्रकट किया?

1.6 वेदों की प्रमाणिकता

लक्षण और प्रमाण के बिना किसी भी वस्तु की सिद्धि नहीं होती है। वैसे ही कहते है - लक्षण और प्रमाण से वस्तु की सिद्धि होती है। वेद के लक्षण विषय में इससे पूर्व हमने आलोचना कि है। इस परिच्छेद में हमारा आलोचना का विषय वेदप्रामाण्य है। वहाँ आदि में यह प्रश्न निकलता है की किस प्रकार का वाक्य प्रमाणिक है। वहाँ उत्तर है की जिस वाक्य के अर्थ विषय में सन्देह का अवकाश नहीं है, जिस वाक्य के अर्थ पूर्व अज्ञात अथवा समझा नहीं होता है, जिस वाक्य के अर्थ विषय में कोई भी बाधा नहीं है, अर्थात् जिस वाक्य के अर्थ किसी भी अनुभव से खण्डित नहीं होता है, उस प्रकार का वाक्य ही प्रमाणिक है। उससे ही कहा - 'असन्दिग्ध -अनधिगत-अबाधित अर्थ बोधक वाक्य प्रमाण' है।

जब वेद वाक्यों में सन्देह, ज्ञात अर्थ का बोध, बाधा इत्यादि दोष नहीं रहते तब वाक्य को प्रमाण रूप से मानते है। प्राचीन काल से आरम्भ करके चार्वाक आदि ऋषि तक वेद विरोधी सम्प्रदाय ने वेद की प्रमाणिकता का खण्डन करने के लिए अनेक युक्तियाँ सामने रखी। वेद के प्रमाण को नित्य अपौरुषेय इत्यादि गूढ तत्त्व महर्षि जैमिनि ने उनके पूर्वमीमांसा ग्रन्थ में प्रस्तुत किया। वह चार्वाक आदि के मत को पूर्वपक्ष मत रूप से स्थापित करके उनके मतों का खण्डन करते हैं। महर्षि जैमिनि ने वेद विरोधी वाक्यों के खण्डन के लिए जो युक्ती सम्मुख रखी, और उसके विवरण को भी कैसे वह उन वेद विरोधी युक्तियों का खण्डन करते हैं। इस विषय पर इस पाठ में आलोचना की जायेगी।

कुछ प्रत्यक्ष, अनुमान, शब्द और आगम प्रमाण से वेद के अस्तित्व का प्रतिपादन करते है। विद्वान पुरुषो के उपदेश ही शब्द प्रमाण है - 'आप्तोपदेशः शब्दः' इति। यह शब्द प्रमाण वेद के अस्तित्व को बताने में समर्थ नहीं है। क्योंकि यह प्रमाण जैसे वेद में प्रयुक्त दिखाई देता है, वैसे ही वेद से बाहर स्मृति शास्त्र में भी। इसलिए यह शब्द प्रमाण वेद के अपने नहीं है। यहाँ दोष है। मुण्डक-उपनिषद में ऋग्वेद-यजुर्वेद-सामवेद और अथर्ववेद का उल्लेख है। छान्दोग्य उपनिषद में नारद ने जब पढ़े हुए शास्त्रों के विषय में सनत्कुमार के प्रति जो कहा, तब चारो वेदों का भी उल्लेख किया। यदि कहते वेद के मध्य में ही वेद चतुष्टय के नाम का उल्लेख है, तो ये उक्तियाँ वेद के अस्तित्व में प्रमाण है, तो आत्म आश्रय रूप के दोष का आविर्भाव होता है। स्मृति ग्रन्थों में वेद का उल्लेख है, इस कारण स्मृति ग्रन्थ वेद के अस्तित्व को प्रमाणिक करते ऐसा तो वहाँ पर भी दोष है। क्योंकि स्मृति ग्रन्थों के प्रमाण वेद के प्रमाण का आश्रय लेते है। मीमांसकों का कहना है की स्मृति संबंधी शास्त्रों में और लौकिक ग्रन्थों में आत्माश्रयत्व दोषरूप से गिनते हैं। परन्तु स्वयं सिद्धि के वेदे अपने प्रमाण के अपौरुषेय वेद के विषय में आत्म आश्रयत्व दोष दोषरूप से नहीं मानते है। वेद के अलौकिक शक्तिशाली होने से वेद वाक्य ही वेद के अस्तित्व को बताते है। इसलिए वेदांत में, उपनिषद् वाक्य में और ऋक्संहिता के अन्तर्गत पुरुष सूक्त में ऋक्-साम-यजुर्वेद का उल्लेख वेद के अस्तित्व विषय में प्रमाण है। पूर्वपक्षी कहते है की वेद है, परन्तु प्रमाण सिद्ध में फिर भी वेद वाक्यों के प्रमाण स्वीकार्य नहीं हैं। क्योंकि वेद वाक्य को सन्देह- ज्ञात अर्थ बताने में -व्याघात आदि भी दोषो से मुक्त नहीं है। कुछ वेद वाक्यों का कोई भी अर्थ ही नहीं है जैसे -

टिप्पणियाँ

'अम्यक् स्यात इन्द्र ऋष्टिः' (ऋग्वेद१-१६९-३)'
'सृण्येव जर्भरी तुर्फरी तु पर्फरी फर्फरीका' (ऋग्वेद १०-१०६-६)'
'आपास्तमन्युस्तृपल प्रभर्मा' (ऋग्वेदः१०-८९-५)' इत्यादि।

ये मन्त्र उन्माद व्यक्तियों के प्रलाप के समान अर्थहीन हैं। यहाँ हमारा कथन है की निरुक्त-व्याकरण आदि तक वेदाङ्गों के अध्ययन से इन मन्त्रों के अर्थ जाने जाते है। यास्काचार्य ने निरुक्त में इन मन्त्रों की व्याख्या की। इसलिए जिन्होंने निरुक्त आदि ग्रन्थों का अध्ययन नहीं किया, वे इन मन्त्रों के अर्थ नहीं समझ सकते हैं। इस कारण जो मंत्रों के अर्थ को नहीं जानते उनका ही यह दोष है, वेद का नहीं। जैसे अन्धा जाते समय में यदि खम्भे से आघात को प्राप्त करता है, तो वह दोष उस अन्धे की दृष्टिहीनता है, स्तम्भ का कोई दोष नहीं है - **'नायं स्थानोरपराधो यदेनम् अन्धो न पश्यति'**। इस प्रकार ही सिद्धान्त पक्षकार उनके मत को सम्मुख रखते हैं।

कुछ वेद मन्त्रों के अर्थ सन्दिग्ध है, अर्थात् उनका प्रकृत अर्थ क्या है, इस विषय में मन में सन्देह होता है। जैसे - 'अधस्विदासीदुपरिस्विदासीत्' (ऋग्वेद १०-१२९-५) अर्थात् वह नीचे भी था, और ऊपर भी था। ऐसे मन्त्रों में सन्देह के होने से वेद वाक्य को प्रमाण नहीं मान सकते है ऐसा पूर्वपक्षी कहते हैं। इस प्रश्न के उत्तर रूप में कह सकते है कि उक्त मन्त्र में सन्देह का कारण नहीं है। यह मन्त्र ऋग्वेद के सृष्टि सूक्त से (१०-१२९) लिया है। जगत के मूलकारण का, और परब्रह्म के अपूर्व सृजन शक्ति का तथा अलौकिक महिमा का वर्णन इस सूक्त में है। थोड़ी सी शक्ति वाले मनुष्य का एक साथ ऊपर और नीचे होना सम्भव नहीं है। परन्तु जिसकी सत्ता सम्पूर्ण विश्व में ओत प्रोत रूप से व्याप्त है, और सुना जाता है कि वह परब्रह्म एक साथ ऊपर -नीचे और सभी जगह रह सकता है। अत अर्थ में संदेह करने वाले दोष का अवकाश नहीं है, ऐसा सिद्धान्तियों का मत है।

कुछ मन्त्रों में अचेतन पदार्थो का सम्बोधन चेतन के समान देखा जाता है। जैसे - ब्लेड को लक्षित करके एक मन्त्र में कहते है - **'स्वधिते नैनं हिंसीः' इति। (तैत्तिरीयसंहिता १-२-१-१)**। अर्थात् हे ब्लेड! तुम इसकी हिंसा मत करो। **'शृणोत ग्रावाणः' (तै.सं१-३-१३-१)**। हे पत्थर गणों! तुम सभी श्रवण करो इत्यादि। अचेतन पदार्थ का इस प्रकार चेतन के समान सम्बोधन कोई भी नहीं करता है। यह अनुभव के विरुद्ध और युक्ति के विरुद्ध है। अतः इन वेद मन्त्रों के अर्थ अनुभव से बाधित हैं। यहाँ बाधित अर्थ दोष आता है, ऐसा पूर्वपक्षकारों का मत है। इसके उत्तर रूप से यहाँ कहते है कि इन मन्त्रों में अचेतन पदार्थ का सम्बोधन नहीं है। परन्तु अचेतन पदार्थो के अभिमानी देवताओं के लिए सम्बोधन है। प्रत्येक पदार्थ में चेतन का अनु-श्रवण किया जाता है, और वहाँ चेतन के अभाव में जड़पदार्थो के अभिमानी देवता को संबोधित किया जाता है। इस तत्त्व की आलोचना भगवान् वेदव्यास ने अपने रचित ब्रह्मसूत्र के 'अभिमानिव्यपदेशस्तु विशेषानुगतिभ्याम्' (ब्रह्मसूत्र २-१-५) - इस सूत्र में की है। मन्त्रों में जिस स्थल पर अचेतन का चेतन के समान सम्बोधन अथवा व्यवहार सुना जाता है उस स्थल पर उस अभिमानी देवता के चेतन सत्ता को आमन्त्रित किया ऐसा समझना चाहिए। इसलिए उस स्थल पर बाधित अर्थ के दोष का अवकाश नहीं है। जगत में कोई भी पदार्थ सम्पूर्ण रूप से जड़ नहीं हो सकता है, क्योंकि चेतन सत्ता सभी

जगह व्याप्त है। नाम और रूप को रचकर परम पुरुष परमात्मा उसके मध्य में रहता है – उसको रचकर उस में ही प्रवेश करता है। उसका रूप ही विश्व के सभी रूप है। आपात काल में जो जड़ को उस प्रकार के पदार्थ का यदि कोई भी सम्बोधन करता है, तब यह जानना होता है की उस पदार्थ में वर्तमान चेतन सत्ता का सम्बोधन होता है। इस कारण किसी भी संकट की आशङ्का नहीं होती ऐसा सिद्धान्तियों का मत है।

पूर्वपक्षी सिद्धान्तियों के उत्तर से असन्तुष्ट होते हुए पुनः आपत्ति जताते हैं। कुछ वेद मन्त्रों में परस्पर विरोध दिखाई देता है। उदाहरण के लिये एक मन्त्र हि- 'एक एव रुद्रो न द्वितीयः अवतस्थे' (तैत्तिरीयसंहिता १-८-१-१), अर्थात् रुद्र एक ही है, दूसरा रुद्र नहीं है। किन्त दूसरे मन्त्र में कहते है – 'सहस्राणि सहस्रशो ये रुद्रा अधिभूम्याम्' (तैत्तिरीयसंहिता ४-५-११-५), अर्थात् पृथिवी पर हजारो रुद्र हैं। ये दोनों मन्त्र परस्पर विरुद्ध हैं, इस कारण विपरीत अर्थ दोष स्वीकार नहीं है। कोई भी स्वयं कहता है, कि मैं सम्पूर्ण जीवन में व्याप्त होकर मौनी हूँ। वहाँ जो उसका मौन है। यह वचन ही मौनव्रत विरुद्ध होता है, वैसा दोष प्रकृत स्थल पर आता है। इसके समाधान रूप में कह सकते हैं, की मनुष्य एक ही काल में एक और अनेक दोनों रूप नहीं हो सकते है। परन्तु अलौकिक शक्तिशाली रुद्र अपने स्वयं के बल से हजारो रूप धारण करने में समर्थ है। इस कारण वेद वाक्य उक्त दोष से मुक्त ही है।

पाठगत प्रश्न 1.6

1. वस्तुओं की सिद्धि के लिये क्या क्या आवश्यक होता है?
2. किस प्रकार का वाक्य प्रमाण है?
3. वेद के प्रमाण, नित्यत्व, अपौरुषेयत्व इत्यादि गूढ तत्त्वों को कहाँ स्थापित किया गया है?
4. किनके द्वारा वेद के अस्तित्व को प्रतिपादित करते हैं?
5. क्या शब्द प्रमाण है?
6. चारो वेदों का उल्लेख कहाँ है?
7. वेद के विषय में कौन सा दोष दोषरूप से नहीं मानते है?
8. नाम और रूप को रचकर परम पुरुष परमात्मा उसके मध्य में प्रवेश करता है इस विषय में कौन सी श्रुति है?

1.7 वेद के छः दर्शनो में प्रमाण का प्रतिपादन

न्याय, साङ्ख्य, मीमांसा आदि दर्शनो के आचार्य शब्द को प्रमाण रूप से स्वीकार किया। वे शब्द प्रमाण से ही वेद के अस्तित्व को स्वीकार किया। लौकिक वैदिक भेद से शब्द दो प्रकार के हैं।

लौकिक वाक्य अन्य प्रमाण से सिद्ध होते है। परन्तु वैदिक वाक्य शब्द प्रमाण से ही सिद्ध होते है। वहाँ अन्य प्रमाण की आवश्यकता नहीं है। साङ्ख्य दर्शन में शब्द प्रमाण को ही श्रुति कहा है। साङ्ख्य दर्शन में लौकिक वाक्यों के शब्द प्रमाण में अन्तर्भाव स्वीकार नहीं करते हैं। क्योंकि उनके लिए लौकिक वाक्य प्रत्यक्ष से अथवा अनुमान से ग्रहण करते है। इसलिए ही लौकिक वाक्य स्वयं प्रमाण नहीं है। प्रत्यक्ष अनुमान से ही उनका प्रमाण स्वीकार है। वैसे ही साङ्ख्य सूत्र में कहा है – निजशक्त्यभिव्यक्तेः स्वतप्रामाण्यम् (५.५१)। और इस प्रकार साङ्ख्य ने वेद को स्वतः प्रमाण को ही सिद्ध किया है।

वैशेषिक दर्शन में कणाद ऋषि ने वेद के प्रमाण को स्वीकार किया। उन्होंने कहा की वेद ईश्वर का वचन है। अतः उसकी अभ्रान्तियाँ और प्रमाण सिद्ध है। और कहते है – **''तद्वचनादाम्नायस्य प्रामाण्यम्।** यहाँ आम्नाय शब्द का अर्थ वेद है।'' इति।

पाठगत प्रश्न 1.7

1. साख्य दर्शन के मत में शब्द प्रमाण क्या है?
2. साख्य दर्शन के मत में लौकिक वाक्यों का अन्तर्भाव कहाँ स्वीकार नहीं है?
3. वैशेषिक दर्शन के आचार्य कौन है?
4. आम्नाय शब्द का क्या अर्थ है?

पाठ का सार

इस पाठ में वेद के अनेक स्थलो में प्रयुक्त रस, अंलङ्कार आदि का विशाल वर्णन किया गया है। उपमा आदि अलंकारो का अवतरण उतना ही प्राचीन है जितना जगत में कविता प्राचीन है। ऋग्वेद ही प्राचीनतम वेद है। ऋग्वेद के मन्त्रों में उपमा आदि अलंकारो का प्रयोग देखा जाता है। काव्य में रस ही प्रधान है। रस काव्य की आत्मा है, ऐसा आलंकारिक मानते हैं। उस रस को प्रतिपादित करने के लिये सभी कवि प्रयत्न करते हैं। वैदिक कवि भी रस का प्रतिपादन करने में परम दक्ष थे। वैदिक कवियों के काव्य में जैसे रस की उत्कर्षता है वैसी उत्कर्षता लौकिक कवियों के काव्य में नहीं दिखाई देती है। अत रस प्रतिपादन में वैदिक वाङ्मय विलक्षण है। रसों में प्रधान शृंगार भी वेद में वर्णित है। शृंगार रस प्रतिपादन में उषा सूक्त अन्यतम है। उषा विषयक मन्त्रों के अनुशीलन से हम वैदिक ऋषियों की प्रकृति के प्रति उदार भावना को जान सकते हैं। इसी प्रकार इस पाठ में सामान्य रस के अवतरण विषय में, अलंकार प्रतिपादन विषय में और प्रकृति वर्णन विषय में आलोचना की गई है और अंत में वेद प्रमाण विषय की विस्तार से आलोचना की गई है। वहाँ प्रत्येक दर्शनों में अपने मत अनुसार वेद के प्रमाण को कैसे स्वीकार करें उसकी आलोचना की है।

पाठांत प्रश्न

1. वैदिक वाङ्मय विषय में संक्षेप से लिखिए।
2. रस विधान विषय पर टिप्पणी लिखिए।
3. वैदिक वाङ्मय में प्रयुक्त कुछ उपमा अलङ्कारों का वर्णन कीजिए।
4. उषा देवी के सौन्दर्य कल्पना विषय पर टिप्पणी लिखिए।
5. प्रकृति वर्णन के कितने भेद हैं टिप्पणी लिखिए।
6. वेद प्रमाण विषय पर विस्तृत वर्णन कीजिए।

पाठ में आये प्रश्नो के उत्तर

1.1

1. काव्य संसार में कविता जितनी प्राचीन है, उपमा अंलङ्कार भी उतना ही प्राचीन है।
2. अलङ्कार
3. अनुप्रास अंलङ्कार, उपमा अंलङ्कार, उत्प्रेक्षा अंलङ्कार, दृष्टान्त अंलङ्कार, अर्थान्तरन्यास
4. वैदिक-ऋषियों के द्वारा
5. व्यञ्जना से प्रतिपाद्यमान वैदिक अर्थो को नहीं जान सकते है।

1.2

1. वसिष्ठ के द्वारा।
2. गृत्समद-ऋषि।
3. इन्द्र को।
4. इन्द्र ने।
5. रस को।
6. श्रृंगार रस।
7. संयोग और विप्रलम्भ।
8. विप्रलम्भ।
9. यम-यमी सूक्त में (१०/१०)।

1.3

1. रूपक अलंकार
2. रूपकमयी
3. ऋग्वेद में
4. ऋतु चक्र के वर्णन में

1.4

1. उषा काल के वर्णन में प्रकृति वैसे सुशोभित होती है जैसे मणिमाला में स्वर्ण सूत्र शोभित होता है।
2. उषा अपने प्रकाश को वैसे फैलाती है, जैसे गोपालक गोचर भूमि में अपनी गायों को फैलाता है। अथवा जैसे कोई नदी अपने जल को फैलाती है।
3. हास्य मुख वाली किशोरी के समान अपने वक्ष प्रदेश को खोल देती है।

1.5

1. प्रेम
2. प्रेम
3. पृथ्वी से
4. प्रकृति का तथा उसके व्यापार का
5. पवित्र प्रेम पूर्ण जीवन में

1.6

1. लक्षण और प्रमाण।
2. 'असन्दिग्ध-अनधिगत-अबाधित अर्थ बोधक वाक्य प्रमाण' है।
3. महर्षि जैमिनि ने उनके पूर्वमीमांसा ग्रन्थ में।
4. प्रत्यक्ष अनुमान शब्द आगम प्रमाणों से।
5. आप्त पुरुषों के उपदेश ही शब्द प्रमाण है।
6. मुण्डक उपनिषद् में।
7. आत्म आश्रयत्व दोष है।
8. उसकी रचना करके उसमे ही प्रवेश करते हैं।

1.7

1. श्रुति ही
2. शब्द प्रमाण में
3. कणाद
4. वेद

॥ पहला पाठ समाप्त॥

2

ऋक्संहिता साहित्य

मन्त्र और ब्राह्मण के भेद से वेद के दो भेद हैं। मन्त्र भाग ही संहिता शब्द से प्रयोग किया जाता है। इस अध्याय में हम ऋग्वेद संहिता के विषय में जानेंगे। संहिता ही मन्त्र का पर्यायवाची शब्द है। ऋग्वेद मन्त्रों के विषय में यहाँ संक्षेप में आलोचना की जायेगी और संहिता में अष्टक क्रम और मण्डल क्रम देखते हैं। उसी का यहाँ संक्षेप में आलोचना की जायेगी। शाखाओं के ज्ञान के बिना संहिता पाठ निरर्थक ही है, इसलिए कुछ शाखाओं के विषय में ज्ञान अति आवश्यक है। कुछ सूक्तों को भी पहले जान लेना चाहिए। सूक्त और संवाद-लौकिक-दार्शनिक की तरह होता है, उस की यहाँ आलोचना की गई है। ऋग्वेद में एक विशिष्ट मण्डल है, वह दसवाँ मण्डल है, जहाँ भाषा में, छन्द में पूर्व-पूर्व मण्डलों की अपेक्षा भेद देखते हैं, उसी की यहाँ संक्षेप में कुछ आलोचना की जायेगी।

उद्देश्य

इस पाठ को पढ़कर आप सक्षम होंगे :

- ऋग्वेद के विभागों का परिचय प्राप्त कर पाने में;
- अष्टक मण्डल क्रमों को जान पाने में;
- ऋचा के विविध शाखाओं का परिचय प्राप्त कर पाने में;
- दसवें मण्डल की विशेषता समझ पाने में;

2.1 ऋक्संहिता

जिन ऋचाओं से स्तुति की जाती है वह है ऋक्। उस प्रकार की ऋचाओं का समूह ही ऋग्वेद है। जहाँ अर्थवश से पाद व्यवस्था की वह है ऋक्, इस प्रकार मीमांसक कहते है। चारों वेदों

टिप्पणियाँ

में ऋग्वेद की महानता का वर्णन सबसे अधिक है। ऋग्वेद ही धर्म संबंधी स्तोत्रों का समुद्र के समान महासागर है। ऋचाओं में बहुत से ऋषियों के द्वारा अनेक मधुर शब्दों से अनेक देवो की आदर से और भक्ति से स्तुति की गई है। भाषा का वैसे भाव अन्य वेदों से पृथक होने से यह ऋग्वेद प्राचीनतम माना गया, ऐसा पाश्चात्य विद्वान मानते हैं। भारतीयों के द्वारा भी ऋग्वेद का अत्यधिक आदर किया जाता है। तैत्तिरीय संहिता के अनुसार यज्ञों के लिये जो विधान है, वहाँ उस प्रकार की दृढ़ता नहीं दिखाई देती है। परन्तु ऋग्वेद के द्वारा विधीयमान अनुष्ठान तो दृढ़ ही होता है। जैसे –

''यद्वै यज्ञस्य साम्ना यजुषा क्रियते शिथिलं तत्, यदृचा तत् दृढ़मिति''। (तै.सं. ६/५/१०/३)

परमेश्वर से सर्व प्रथम ऋचाओं का ही आविर्भाव हुआ है ऐसा वेद के पुरुष सूक्त में भी वर्णन किया गया है। जैसे –

''तस्माद् यज्ञात् सर्वहुतः ऋचः सामानि जज्ञिरे।
छन्दांसि यज्ञिरे तस्माद् यजुस्तस्मादजायत॥ इति॥''

2.2 ऋग्वेद का विभाग

यद्यपि महाभाष्य में ऋग्वेद की इक्कीस शाखाओं का निर्देश है, और वहाँ शाकल-वाष्कल-आश्वलायन-शांख्यायन-माण्डूकायन-नाम की पांच मुख्य शाखाओं के विषय में कहा गया है। वह ऋग्वेद सूक्त-मण्डल भेद से दो भागों में विभक्त है। वहाँ सूक्त के चार भेद किये, ऋषि सूक्त, देवता सूक्त, छन्द सूक्त, अर्थ सूक्त। जिन मन्त्रों के ऋषि एक ही हैं, उस समूह को ऋषि सूक्त कहते हैं। जिन मन्त्रों में देवता एक है, उस समूह को देवता सूक्त कहते है। समान छंद के मंत्र समूह को छंद सूक्त और जितना अर्थ समाप्त मन्त्रों के समूह को अर्थ सूक्त कहते है। अच्छे कहने से सभी को सूक्त इस नाम से कहते है। वह ऋग्वेद मण्डल-अनुवाक-वर्ग भेद से अष्टक-अध्याय और सूक्त भेद से दो प्रकार का है।

उपर्युक्त दोनों भाग के प्रथम भाग में ही बालखिल्य सूक्तों को छोडकर सम्पूर्ण यह ऋग्वेद संहिता में दस मण्डल, पचासी अनुवाक, दो हजार छः वर्ग हैं। और द्वितीय भाग में आठ अष्टक, चौसठ अध्याय और एक हजार सत्रह सूक्त हैं।

पाठगत प्रश्न 2.1

1. ऋक् क्या है?
2. ऋग्वेद क्या है?
3. मीमांसको के लिये ऋक् क्या है?
4. ऋचा के आविर्भाव के विषय में कहाँ आलोचना की है?

5. महाभाष्य में ऋग्वेद की कितनी शाखाओं का निर्देश है?
6. ऋग्वेद के दो भाग कौन से है?
7. सूक्त कितने प्रकार के हैं, और वे कौन कौन से है?
8. ऋषि सूक्त क्या है?
9. छन्द सूक्त क्या है?
10. अर्थ सूक्त क्या है?
11. ऋग्वेद कितने प्रकार का है, और वे कौन-कौन से है?
12. ऋग्वेद के प्रथम भाग में क्या है?

2.3 क्रम विभाजन

ऋग्वेद के दो विभाग किये हैं, एक अष्टक क्रम है और दूसरा मण्डल क्रम है। इन क्रमों की यहाँ संक्षेप से आलोचना दी गई है।

2.3.1 अष्टक क्रम

सम्पूर्ण ऋग्वेद संहिता आठ भागो में विभक्त है। और आठ भागो में प्रत्येक भाग में आठ अध्याय है। इसलिए सम्पूर्ण ऋग्वेद में चौसठ अध्याय हैं। प्रत्येक अध्याय के अनन्तर विभाग का नाम 'वर्ग' है। अच्छी प्रकार से और सरलता से जैसे अध्ययन हो, उसी प्रकार का यहाँ पर वर्ग भेद किया गया है। वर्ग तो ऋचा के समुदाय की संज्ञा है। वास्तविकता से वर्गो में ऋचाओं की संख्या निश्चित नहीं है। लगभग पांच मंत्रो का एक वर्ग होता है। सम्पूर्ण ऋग्वेद में दो हजार छः वर्ग हैं।

पाठगत प्रश्न 2.2

1. ऋग्वेद संहिता के कितने भाग है और प्रत्येक भाग में कितने अध्याय है?
2. सम्पूर्ण ऋग्वेद में कितने अध्याय है?
3. प्रत्येक अध्याय के अन्दर विभाग का क्या नाम है?
4. वर्ग भेद किस लिये किये गये हैं?
5. सम्पूर्ण ऋग्वेद में कितने वर्ग हैं?

2.3.2 मण्डल क्रम

ऋग्वेद का द्वितीय क्रम मण्डल क्रम है। यह ऐतिहासिक दृष्टि से और वैज्ञानिक दृष्टि से अत्यधिक महत्त्वपूर्ण है। बालखिल्य सूक्तों को छोड़कर सम्पूर्ण ऋग्वेद संहिता में दस मण्डल, पचासी अनुवाक

टिप्पणियाँ

हैं, और दो हजार छः वर्ग हैं। और यहाँ पर अनुवाको में सूक्त है, और सूक्तों में मन्त्रों को परिश्रम पूर्वक निर्धारित किया गया है। हमारे प्राचीन ऋषियों ने वेदों की शुद्धि के लिये उनमें प्रयुक्त अक्षरों की भी गणना की गई है। सभी मंत्रों की संख्या दस हजार चार सौ सडसठ (१०४६७) है ऐसा शाकल्य ऋषि मानते हैं, शौनक अनुक्रमणि में तो दस हजार पांच सौ अस्सी (१०५८०) मन्त्र बताये गये हैं। यहाँ भेद में खिल भेद से अथवा काल भेद से मन्त्रों में वृद्धि लोप हेतु का कारण है। शब्द संख्या- १५३८२६, अक्षर संख्या- ४३२०००। सभी मन्त्र चौदह छन्दों में विभक्त हैं ऐसा जानना चाहिए। ऋग्वेद में आये मन्त्रों के द्रष्टा ऋषि गृत्समद-विश्वामित्र-वामदेव-अत्रि-भरद्वाज-वशिष्ठ आदि हैं। मण्डलों के अनुसार सूक्तों की व्यवस्था (१९१+४३+६२+५८+८७+१०४+९२+११४+१९१) इस प्रकार है। इन सूक्तों के अतिरिक्त और ग्यारह सूक्त बालखिल्य नाम के हैं।

इनमे 'बालखिल्य'-सूक्तों का स्थान तो आठवें मण्डल के अन्तर्गत ही स्वीकार कर सकते हैं। इस मण्डल में प्रमुख सूक्तों की संख्या बयानवे (92) है। खिल सूक्तों के सङ्कलन करने पर उनकी संख्या एक सौ तीन हो जाती है। खिल शब्द का अर्थ होता है, 'परिशिष्ट' अथवा बाद में संङ्कलित मन्त्र। अपने लिये ही जब अध्ययन करते हैं, उसी समय ही खिल सूक्त पढ़ने की व्यवस्था है। परन्तु ये खिल मन्त्र कहीं पर भी प्राप्त नहीं होते हैं और अक्षर गणना में भी इन मन्त्रों का समावेश नहीं होता है। इनके यथार्थ रूप का भी ज्ञान नहीं है। इनका ऋग्वेद में स्थान आठवे मण्डल के उन्चासवें सूक्त से आरम्भ करके उनसठ सूक्त पर्यन्त है। इन मन्त्रों की संख्या अस्सी है। और अनुवाक-अनुक्रम के अनुसार इन मन्त्रों की संख्या दस हजार पांच सौ अस्सी है -

'ऋचां दशसहस्राणि ऋचां पञ्चशतानि च।
ऋचामशीतिः पादश्च पारणं सम्प्रकीर्त्तितम्'॥४३॥

(अनुवाक अनुक्रमणी में)

ऋचाओं में शब्दो की संख्या १५३८२३ है। जैसे -

'शाकल्यदृष्टेः पदलक्षमेकं सार्धं च वेदे त्रिसहस्रयुक्तम्।
शतानि चाष्टौ दशतद्वयं च पदानि षट् चेति हि चर्चितानि॥' (अनु. ४५)

और शब्द में आये अक्षरो की संख्या ४३२००० है। जैसे -

'उसने ऋचाओं की रचना की। बारह हजार बृहती छंद में। इस प्रकार की ऋचाओं की प्रजापति ने रचना की' (शत.ब्रा. १०/४/२/२/२३)।

'बृहती छन्द छत्तीस अक्षरों का होता है। इसी कारण १२०००'३६=४३२००० होते है। चार लाख बत्तीस हजार अक्षर है' (अनु. अन्तिम भाग में)।

ऋग्वेद के शब्द अक्षर आदि की गणना प्रसङ्ग में यहाँ वहाँ भिन्नता भी देखी जा सकती है। मालावरीय नारायण भट्ट द्वारा रचित सूक्त श्लोक प्राप्त होते हैं। इस ग्रन्थ में ऋग्वेद के वर्गो और सूक्तों की संख्या निर्धारित की गई है। वर्ग सूक्त आदि की गणना प्रतिपादक श्लोक और उसका विवरण निम्न रूप से है -

जानन्नपि द्विषामोदं स यज्ञः पातनानरः।
रसं भिन्नाय मांसादो नरस्तस्य जलाधिपः॥

नारायण भट्ट द्वारा दिया हुआ ऋग्वेद का विवरण –

अष्टक	८
मण्डल	१०
अध्याय	६४
अनुवाक	८५
सूक्त	१०१७
वर्ग	२००६
ऋचा	१०४७२
आदि ऋचा	२०८७५
शब्द	१५३८१६
अक्षर	३९४२२१

उपरि निर्दिष्ट संख्या में बालखिल्य सूक्तों की गणना नहीं है, यदि उन ११ सूक्तों की, ८० ऋचा, १८ वर्ग, ३०४४ अक्षर भी सङ्कलित हों तब सूक्तों की संख्या १०२८, वर्ग २०२४, ऋचा १०५५२ तथा अक्षर ३, ९७, २६५ होने चाहिए।

पाठगत प्रश्न 2.3

1. ऋग्वेद का कौन सा विभाग मण्डल क्रम है?
2. बालखिल्य सूक्तों को छोडकर सम्पूर्ण ऋग्वेद संहिता में कितने मण्डल, अनुवाक और वर्ग हैं?
3. शाकल्य के अनुसार कितने मन्त्र है?
4. ऋक् मंत्रो में अक्षरो की संख्या है?
5. सभी मन्त्र कितने छन्दों में विभक्त है?
6. ऋग्वेद के द्रष्टा ऋषि कौन है?
7. खिल शब्द का क्या अर्थ है?
8. ऋचाओं में कितने शब्द है?
9. बृहती छन्द में कितने अक्षर होते है?

2.4 ऋचाओं की संख्या

ऋग्वेद में ऋक् मन्त्रों की गणना भी एक कठिन समस्या है। इस गणना का समाधान प्राचीन और अर्वाचीन विद्वानों ने किया है। प्राचीन आचार्यो के मध्य में ऋग मन्त्रों के गणना प्रसङ्ग में जो विरोध दिखाई देता है, वह वास्तविक शाखा भेद जन्य ही है। परन्तु अर्वाचीन के मध्य में मन्त्र गणना प्रसङ्ग में जो विरोध है, वह केवल भ्रमजनित ही है। इस भ्रम का कारण है – ऋग्वेद में कितनी ऋचा हैं, इस प्रकार की है, जो अध्ययन काल में चार पाद होते हैं, किन्तु प्रयोग काल में दो पाद ही मानते हैं। ऋक् सर्वानुक्रमणि में इसका उल्लेख प्राप्त होते हैं – 'द्विर्द्विपदास्त्वृच: समामनन्ति' इस सूत्र की व्याख्या में षड्गुरु शिष्य का स्पष्ट कथन है – 'ऋचा के अध्ययन में तो पाठक दो-दो पाद में एक-एक ऋचा करके वेदपाठी अध्ययन करते हैं। वेद वचनो से संशय नहीं होते है। उसने पशुओं को वायु को (ऋ. १/६५) इति दस ऋचा में उल्लेख है। इससे अध्ययन में सरलता होती है।'

सायण भाष्य में भी इसका उल्लेख प्राप्त होता है। चरणव्यूह के टीका कर्ता महिमदास ने भी पहले कथन को समर्थित किया है। इस प्रकार की ऋचा प्राकृतिक दो पाद वाली कहलाती है। ऋग्वेद में भी दो पाद वाली ऋचा है। वे गिनती में सत्रह ही हैं। ये दो पाद वाली कभी भी अपने स्वरूप से अलग नहीं होती है। इस दो पाद वाली ऋचा का वास्तविक स्वरूप के परिचय नहीं होने से मैक्समूलर-मैक्डोनल आदि के अंग्रेजी में वेदज्ञान की गिनती से भ्रान्ति हुई है।

ऋग्वेद की संहिता में तीन छन्दों की अधिकता विद्यमान है। जिनमे 'त्रिष्टुप्'-छन्द की संख्या सबसे अधिक है। इस छन्द में चार पाद होते हैं। प्रत्येक पाद में ग्यारह अक्षर होते है। इस संहिता में ४२५१ त्रिष्टुप् छंद में है। उसके बाद गायत्री छन्द का स्थान आता है। इस छन्द में तीन पाद होते हैं। प्रत्येक पाद में आठ अक्षर होते हैं। इस छन्द की सम्पूर्ण संख्या २४४९ है। उसके बाद जगती छन्द का स्थान होता है। इस छन्द में चार पाद हैं। प्रत्येक पाद में बारह अक्षर हैं। इस छन्द की यहाँ पर संख्या १,३४६ है। शेषभाग में अनुष्टुप् ८९८, पङ्क्ति ४९८, उष्णिक् ६९८, बृहती ३७१ हैं।

पाठगत प्रश्न 2.4

1. प्राचीन आचार्यो के मध्य में ऋग मन्त्रों की गणना प्रसङ्ग में विरोध किसलिए दिखाई देता है?
2. अर्वाचीन के भ्रम का कारण क्या है?
3. चरणव्यूह के टीका कर्ता कौन है?
4. ऋग्वेद की संहिता में किस छन्द की अधिकता दिखाई देती है?
5. त्रिष्टुप्-छन्द में कितने पाद और कितने अक्षर होते है?
6. गायत्री-छन्द में कितने पाद तथा प्रत्येक पाद में कितने अक्षर होते है?

7. जगती-छन्द में कितने पाद और कितने अक्षर होते है?
8. ऋग्वेद के शेषभाग में कितने अनुष्टुप् छन्द है?

2.5 ऋग्वेद की शाखा का परिचय

यज्ञ की आवश्यकता को अनुभव करके उदात्त द्रष्टा महामुनि व्यास ने अपने चार शिष्यो को वेद पढ़ाया। यज्ञ में चार ऋत्विज होते हैं - १. होता, २. अध्वर्यु, ३. उद्गाता, ४ ब्रह्मा। होता- आह्वान कर्त्ता है, वह ही यज्ञ अवसर पर देवताओ की प्रशंसा के लिये लिखे मन्त्रों का उच्चारण करके देवताओ को बुलाते हैं, उस कार्य के लिये सङ्कलित मन्त्र स्तुति रूप में वर्णित है, उनका सङ्ग्रह ही ऋग्वेद है। इस प्रकार उद्देश्य को लक्षित करके व्यास ने पैल को ऋग्वेद पढ़ाया। अध्वर्यु विधिवत यज्ञ को पूर्ण करता है, वहाँ आवश्यक मन्त्र यजूंषी कहलाते हैं, उस का संग्रह यजुर्वेद, उद्गाता तो उच्च स्वर से गान करने वाला है, वह ही स्वर बद्ध मन्त्रों को उच्च स्वर से गाता है, उसके अपेक्षित मन्त्रों का सङ्ग्रह सामवेद है। महर्षि व्यास कवि ने जैमिनि को सामवेद पढ़ाया। ब्रह्मा यज्ञ निरीक्षक करने और नहीं करने का अन्वेषण करने वाला है, वह ही सभी प्रकार के मन्त्रों को जानने वाला है, उस के अपेक्षित मन्त्रराशि अथर्ववेद है ऐसा कहते हैं। यज्ञ निरीक्षण कार्य सम्पादन के लिये मुनि व्यास ने सुमन्तु मुनि को अथर्ववेद पढ़ाया -

'तदृक्वेदधरः पैलः सामगौ जैमिनिः कविः।
वैशम्पायन एवैको निष्णातो यजुषामत।
अथर्वाङ्गिरसनासीत् सुमन्तुर्दारुणो मुनिः॥' (नाग.पुरा. १/४/२१)

शाखा के साथ 'चरण'-शब्द का भी सम्बन्ध है। अब दोनों शब्दों का प्रयोग लगभग समान अर्थ में ही होता है। मालतीमाधव के टीका कर्ता जगद्धर के कथन अनुसार से - चरण शब्द शाखा विशेष अध्ययन-पर एकतापन्न जटा संघवाची है। इन शाखाओं का विस्तृत विवरण पुराणों में और चरणव्यूह में प्राप्त होता है। अलग अलग ग्रन्थों में शाखा संख्या में भी भिन्नता है। भाष्यकार पतञ्जलि ने कहा - 'चत्वार वेदाः साङ्गाः सरहस्या बहुधा भिन्नाः। एकशतमध्वर्युशाखाः। सहस्रवर्त्मा सामवेदः। एकविंशतिधा वाह् वृच्यम्। नवधाऽथर्वणो वेदः' (पस्पशाह्निकम्)।

यद्यपि महाभाष्य में ऋग्वेद की इक्कीस शाखा का निर्देश है, परन्तु शाकल-वाष्कल-आश्वलायन-शाङ्खायन-माण्डूकायन-नाम की पांच शाखा मुख्य हैं।

पाठगत प्रश्न 2.5

1. यज्ञ की आवश्यकता को अनुभव करके महामुनि व्यास ने क्या किया?
2. यज्ञ में ऋत्विज कितने होते है, और वे कौन कौन से है?
3. होता क्या करता है?
4. अध्वर्यु क्या करता है?

5. उद्गाता क्या करता है?
6. जैमिनी को किसने सामवेद पढ़ाया?
7. ब्रह्मा का क्या कार्य है?
8. व्यास ने सुमन्त मुनि को अथर्ववेद किसलिए पढ़ाया?
9. शाखा के साथ किसका सम्बन्ध है?
10. मालतीमाधव के टीकाकर्ता कौन हैं?
11. महाभाष्य में कितनी शाखा का निर्देश है?

2.5.1 शाकल शाखा

आजकल ऋग्वेद की प्रचलित संहिता शाकल शाखा की है। शाकल संहिता के अन्त में ऋक्परिशिष्ट नाम के छत्तीस सूक्तों का संग्रह है। इन सूक्तों में कुछ विख्यात और बहुत चर्चा वाले सूक्त हैं। जैसे – श्री सूक्त (सू.स. ११), रात्रि सूक्त (सू.स. २६), मेधा सूक्त (सू.स. ३१), शिवसङ्कल्प सूक्त (सू.स. ३३)। इस सूक्त के प्रत्येक मन्त्र का चौथा चरण 'तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु' इस वाक्य से समाप्त होता है। वाष्कल शाखा के अनुसार 'संज्ञान सूक्त' ऋग्वेद का अन्तिम सूक्त है। ऋक्परिशिष्ट के मन्त्र पुराणों में वैदिक मन्त्र दृष्टि के रूप में उद्धृत है। श्री सूक्त के दो मन्त्र– 'हिरण्यवर्णां हरिणीम्' तथा 'गन्धद्वारां दुराधर्षाम्' पद्म पुराण में उद्धृत है (६/१५५/२८/३०) 'सितासिते सरीते यत्र सङ्गते' यह स्कन्द पुराण के काशी खण्ड में (७/४४) तथा पद्म पुराण में (६/२४६/३५), इसका उल्लेख प्राप्त होता है। दोनों स्थानो में यह मन्त्र प्रयाग परक है। प्रयाग में सिता=गङ्गा, तथा असिता=यमुना उनका सङ्गम तीर्थ की विपुल महिमा का प्रतिपादन करने वाला यह मन्त्र है। ऋक्परिशिष्ट के मन्त्र पुराणों में प्रमाण के लिये उद्धृत है, उसके कारण ये मन्त्र विशेष सम्मान वाले हैं।

2.5.2 वाष्कल शाखा

यद्यपि आजकल वाष्कल शाखा की संहिता प्राप्त नहीं होती है, फिर भी इसकी विशिष्टता का वर्णन विविध स्थलो में प्राप्त होता है। शाकल शाखा के अनुसार ऋग्वेद का अन्तिम मन्त्र 'समानी व आकूतिः' (१०/१९१/४) है, किन्तु वाष्कल संहिता के अनुसार 'तच्छ्रेयोरावृणीमहे' यह अन्तिम मन्त्र है। इस सूक्त से ही वाष्कल शाखा-संहिता की समाप्ति होती है। मन्त्रों की संख्या भी कही पर अधिक है। शाकल शाखा में एक हजार सत्रह (१०१७) सूक्त हैं। किन्तु वाष्कल शाखा में एक हजार पच्चीस (१०२५) सूक्त हैं। इन आठ से अधिक सूक्तों में एक तो संज्ञान सूक्त है। यह मन्त्र इस संहिता के अन्त में लिखा हुआ है। शेष सात सूक्त बाल्यखिल्य सूक्तों से सङ्गृहीत हैं। इसलिए इस मण्डल के समस्त सूक्तों की संख्या (९९) निन्यानवे होती है।

'एतत् सहस्रं दश सप्त चौवाष्टवतो बाष्कलकेऽधिकानि।
तान् पारेण शाकले शैशिरीये वदन्ति शिष्टानखिलेषु विप्रा॥'

(अनुवाकाक्रमणी, श्लो. ३६)

2.5.3 आश्वलायन शाखा

आश्वलायन संहिता का तथा उसके ब्राह्मणों का काल किसी समय में अवश्य ही था। क्योंकि कवीन्द्र आचार्य की (१७ शताब्दि में) ग्रन्थों की सूची में इस नाम का उल्लेख स्पष्ट रूप से उपलब्ध होता है। आजकल इस शाखा के गृह्यसूत्र और श्रौतसूत्र दो उपलब्ध होते हैं।

2.5.4 शाङ्ख्यायन शाखा

इस शाखा की संहिता तो उपलब्ध नहीं है। किन्तु ब्राह्मण और आरण्यक ग्रन्थ प्रकाशित हैं। बहुत से आलोचकों के विचार में शाङ्खायन तथा कौषीतकी शाखा एक ही है, किन्तु दोनों शाखा अलग ही है। शाङ्खायन संहिता के तथा शाकल शाखा के अनुयायियों में-ऋक्संहिता का और मन्त्र संहिता का भेद नहीं देखते, केवल मन्त्रों के क्रम में ही भिन्नता है।

2.5.5 माण्डूकायन शाखा

इस शाखा के भी ग्रन्थ उपलब्ध नहीं हैं। यहाँ वहाँ उदाहरण से ही इसके अस्तित्व का बोध होता है।

पाठगत प्रश्न 2.6

1. ऋग्वेद की दो शाखाएँ कौन कौन सी है?
2. आश्वलायन शाखा के प्रमाण कहाँ प्राप्त होते है?
3. श्रौतसूत्र किस शाखा में होते हैं?
4. शाकल शाखा के अनुसार ऋग्वेद का अन्तिम मन्त्र क्या है?
5. हिरण्यवर्णा हरिणीम् इत्यादि मन्त्र किस सूक्त में है?

2.6 दान स्तुति

ऋग्वेद के सूक्तों में 'दानस्तुति' नाम के कुछ मन्त्र प्राप्त होते हैं। कात्यायन की ऋक्सर्वानुक्रमणि में केवल बाईस सूक्तों में दान स्तुति का उल्लेख है। किन्तु आधुनिक शोधकों के अनुसार अड़सठ सूक्तों में दान स्तुति का वर्णन है। ग्रन्थ में मणिलाल का निबन्ध देखने योग्य है। ऋग्वेद के ८/३/२१-२४ मन्त्र का देवता सर्वानुक्रमणि में पाकस्थ कौरायाण की दानस्तुति कही है। किन्तु निघण्टु-निरुक्त आदि-ग्रन्थों के अनुशीलन से जाना जाता है कि कौरायाण पद का यास्क के द्वारा किया अर्थ बनाये हुए यान होता है। दुर्गाचार्य के मत में इस मन्त्र में 'यान' की स्तुति है, दान की नहीं। शौनक मत में पाकस्थामा शब्द का भी अर्थ व्यक्ति वाचक नहीं है, अपितु विशेषण पद है (बृहद्देवता ६/४५)। स्कन्द माहेश्वर की व्याख्या के अनुसार पाकस्थामा शब्द का अर्थ होता है - महाप्राण अथवा महाबलवान - 'पाकस्थामा लोक में स्थाम शब्द प्राण में प्रसिद्ध है। पाक

परिपक्व में जो महान्, अथवा जिसमें निष्णात है वह पाकस्थामा महाप्राण अर्थ में' (स्कन्दमाहेश्वर की व्याख्या)।

जैमिनि सूक्त-गुणवाद का (मी. सू १/२/१०) शबरभाष्य भारतीय सिद्धान्त की चाभी है। उसका स्पष्ट कथन है, की ये सम्पूर्ण आख्यान असत्य है। आख्यानों में दो बाते हैं - वृतान्तज्ञान तथा प्ररोचना। वृतान्तज्ञान विधि न तो प्रवर्त्तक और न निवर्त्तक है। फल स्वरूप प्रयोजन अभाव से अपेक्षित नहीं है। प्रीति के कार्यों में प्रवृत्ति होती है, द्वेष से निवृत्ति होती है। आख्यानों में इसी प्रकार के अंश की विवक्षा है। जैसे -

हमारा वृत्तान्त स्तुति अर्थ के द्वारा अन्वाख्यान है। ... वहाँ वृत्तान्त अन्वाख्यान न प्रवर्तक और न निवर्तक है, प्रयोजन के अभाव से। अनर्थक विवक्षित है, परन्तु प्ररोचना से तो प्रवृति और द्वेष से निवृति होने से उसकी विवक्षा है।

सामान्य दानस्तुति प्रतिपादक एक भव्य सूक्त है। इस सूक्त में दान-महिमा का सुन्दर वर्णन है। जो व्यक्ति अपने धन को अपने लिये लगाता है वह पाप को ही खाता है -

'मोघमन्नं विन्दते अप्रचेताः सत्यं ब्रवीमि वध इत् स तस्य।
नार्यमणं पुष्यति नो सखायं केवलाघो भवति केवलादी॥'

(तैति. ब्रा. २/८/८/३ एवं निरु. ७ देखना चाहिए।)

इस प्रकार के जन से दूर जाना ही श्रेयस्कर होता है। उस मनुष्य के लिये घर नहीं होता है। उस मनुष्य का पोषण करने के लिये किसी भी अपरिचित मनुष्य की शरण में जाना चाहिए। जैसे -

'न स सखा यो न ददाति सख्यै स चा भुवे स च मानायषित्वः।
अपास्मात् प्रेयान् न तदोको अस्ति पृणन्तमन्यमरणं चिदिच्छेत्॥'

'केवलाघो भवति केवलादी' यह हि त्याग मूलक वैदिक संस्कृति का महामन्त्र है। इसी ही तत्त्व का वर्णन स्मृति ग्रन्थों में पर्याप्त प्राप्त होता है। इसी सन्दर्भ में अक्षरशः अनुवाद रूप से गीता का यह श्लोक देखना चाहिए -

'यज्ञाशिष्टाशिनः सन्तो मुच्यन्ते सर्वकिल्बिषैः।
भुञ्जते ते त्वघं पापा ये पचन्त्यात्मकारणात्॥' (गीता. ३/१३)

2.7 संवाद सूक्त

ऋग्वेद में दार्शनिक सूक्तों की जैसी उपनिषदो में तात्त्विक विवेचनों के साथ सम्बद्ध है, वैसे ही इन सूक्तों का प्रबन्ध काव्य और नाटक के साथ भी सम्बन्ध जुड़ता है। इस प्रकार के सूक्तों में कथनोपकथन की प्रधानता है। ऋग्वेद में अनेक कथनोपकथन प्रधान यमयमी सूक्त-सरमापणि संवाद सूक्त-ऊर्वशीपुरुरवा संवाद सूक्त-आदि सूक्त है, जिनको आधार मानकर भारतीय नाटकों की उत्पति हुई। दृष्टान्त रूप से उर्वशी पुरुरवा संवादमूल को आधार बनाकर कालिदास ने विक्रमोर्वशीय नाम के त्रोटक की रचना की।

इस सन्दर्भ में भारतीय विद्वानों ने नाटको का उदय वेद में स्थित सूक्तमूल ही बताया है। किन्तु इस विषय में पाश्चात्य विद्वानों के मध्य गम्भीर मतभेद है। जर्मन विद्वान् डाक्टर श्रोदर महोदय ने भी इस विचार का समर्थन किया। उन्होंने ही संवाद सूक्तों को गीतरूप में स्वीकार किया। उस गान को नृत्य से प्रदर्शित किया जाता था, वे इन संवाद सूक्तों के धार्मिक नाटक के रूप में चाहते थे। और यह ही भारतीय नाटकों की मूल प्रवृत्ति कहलाती है।

डॉ. हर्टल महोदय ने भी श्रोदर महोदय के विचार का अनुमोदन किया। दूसरे विद्वान विण्डिश-ओल्डेनवर्ग-पिशेल आदि मुख्य मानते हैं कि संवाद सूक्त प्राचीन काल में गद्य पद्यात्मक थे। पद्यभाग अत्यधिक रोचकता के साथ आज भी प्राप्त होता है। गद्यभाग तो केवल वर्णन परक है, इस कारण यह भाग लगभग समाप्त जैसा हो गया है। नाटक में जो आज भी गद्य पद्य का मिश्रण देखते हैं। वह भी इस प्रकार संवाद सूक्त मूल का ही भाग है। ये विद्वान ऐतरेय ब्राह्मण में आये शुन:शेप उपाख्यान को, और शतपथ ब्राह्मण में आये उर्वशी-पुरुरवा-उपाख्यान को, यहाँ पर साक्षि भाव के रूप में स्थापित करते है। और कुछ विद्वान रामलीला और कृष्णलीला का यहाँ पर निर्देश करते है। ऋग्वेद के ये सभी संवाद सूक्त नाटकीय ओजस्विता के साथ सम्पृक्त है। और कलात्मक दृष्टि से भी ये सूक्त नितान्त रमणीय, सरल और प्रभावित करने वाले हैं।

2.8 लौकिक सूक्त

ऋग्वेद के दसवें मण्डल के अनेक सूक्तों में लौकिक-व्यवहार-विषय का रोचक वर्णन है। ऋग्वेद के दसवें मण्डल में भी इस विधा से लौकिक संस्कृति के साथ सम्बद्ध विषयों की उपलब्धि इस मण्डल की विशिष्टता को सूचित करती है। यक्ष्मा बीमारी के विनाश के लिये १६१, १६३ तथा अन्य अनेक प्रकार के सूक्त प्राप्त होते है। रक्षा सूक्त में दानवों से गर्भ की रक्षा के लिए मन्त्र है। एक सूक्त में पत्नी के कष्ट को छोड़कर पति के प्राप्ति के उपाय का विवरण प्राप्त होता है। जैसे -

'इमां खनाम्योषधिं वीरुधं बलवत्तम्।
यया सपत्नीं बाधते संविन्दते पतिम्॥' **(ऋग्वे. १०/१४५/१)**

अन्ये सूक्त में शत्रु-संहार के लिये प्रार्थना की है -

'ऋषभं मां समानानां सपत्नानां विषासहितम्।
हन्तारं शत्रूणां कृधि विराजं गोपतिं गवाम्॥' **(ऋग्वे. १०/१६६)**

इस प्रकार से १०/१६४ सूक्त में बुरे स्वप्न के विनाश के लिये प्रार्थना की है। १०/५४ सूक्त का नाम ही 'मन का परिवर्तन' सूक्त है। वैवस्वत- यम ने दिन, भूमि, समुद्र आदि के पास जाकर लोगों के मन परिवर्त्तन के लिये प्रार्थन की है -

'यत् ते यमं वैवस्वतं मनो जगाम दूरकम्।
तत्त आवर्तयामसीह क्षयाय जीवसे॥' **(ऋग्वे. १०/५८)**

एक सूक्त में भिषग ऋषि ने औषधियों की भव्य स्तुति को सम्मुख रखा –

'याः फलिनीर्या अफला अपुष्पा याश्च पुष्पिणीः।
बृहस्पति-प्रसुतास्ता नो मुञ्चत्वं हसः॥' **(ऋग्वे. १०/९७/१५)**

एक सूक्त से ज्ञात होता है कि प्राचीन काल में भी प्रजा ही राजा को चुनती थी। जैसे –

'अभित्वा देवः सविताभि सोमो अवीवृतत्।
अभित्वा विश्वाभूतान्यभिवर्चो यथाससि॥'

2.9 दार्शनिक सूक्त

नासदीय सूक्त–(१०/१२९) पुरुष सूक्त–(१०/९०) हिरण्यगर्भ सूक्त–(१०/१२१) वाक् आदि सूक्त दार्शनिक दृष्टि से जैसे गम्भीर हैं वैसे ही प्रतिभा की अनुभूति दृष्टि से अत्यधिक रमणीय है, और अभिनव कल्पना दृष्टि से भी नितान्त प्रसिद्ध है। नासदीय सूक्त के विषय में आलोचकों का मत है कि, जो यह सूक्त ऋग्वेद के ऋषियों की अलौकिक चिन्तन धारा का मौलिक–परिचय देता है। जगत की प्रारम्भिक स्थिति का वर्णन करते हुए इस सूक्त के ऋषि कहते है – सृष्टि के आरम्भ काल में न सत् था और न ही असत् था। न दिन था और न ही रात थी, सृष्टि के अभिव्यञ्जना का कोई चिह्न तब नहीं था। सबसे पहले काम अर्थात् सङ्कल्प उत्पन्न हुआ। इसी काम की अभिव्यक्ति ही सृष्टि के विभिन्न स्तरों में उसका प्रतिफल हुआ। तब एक ही तत्त्व था, जो बिना वायु के श्वास ग्रहण करता था, तथा अपनी स्वाभाविक शक्ति से वह तत्व जीवित था।

'आनीदवातं स्वधया तदेकम्।
तस्माद्धान्यन्न परः किञ्च नास॥' **(ऋ.१०/१२९/२)**

प्रतिभा अनुभूति के ऊपर अद्वैत तत्त्व की प्रतिष्ठा इसी ही गम्भीर मन्त्र का गूढ़ रहस्य है।

पाठगत प्रश्न 2.7

1. दान स्तुति का उल्लेख कहाँ है?
2. भारतीय सिद्धान्तों की चाभी कौन है?
3. त्याग मूलक वैदिक संस्कृति का महामन्त्र क्या है?
4. नाटकों का उदय विद्वान किससे मानते हैं?
5. कुछ पाश्चात्य विद्वानों के नाम लिखो।
6. दार्शनिक दृष्टि से गम्भीर अर्थ के सूक्तों का नाम लिखो।

2.10 दसवें मण्डल की अर्वाचीनता

दसवां मण्डल सबसे अर्वाचीन मण्डल है। और इसका कारण वंश मण्डल से भाषा में आया भेद तथा विषय में आया भेद बहुत जगह दिखते है। यहाँ भाषा में आये वैशिष्ट्य को, छन्द में आये वैशिष्ट्य को और देवता में आये वैशिष्ट्य की आलोचना करते है।

2.10.1 भाषा में आया भेद

ऋक् संहिता साहित्य में बहुत जगह भाषा में भेद परिलक्षित होता है। ऋग्वेद के बहुत से स्थलों में शब्दों के भिन्न रूप से प्रयोग दिखते हैं। भाषा विद्वानों की यह मान्यता है की संस्कृत भाषा जैसे विकसित होती वैसे ही उसकी भाषा में रेफ के स्थान में लकार का प्रयोग बढ़ता गया है, जैसे जल वाचक के सलिल-शब्द का प्राचीन रूप सरिर ऐसा पद गोत्र मण्डलों में प्रयुक्त है। किन्तु दसवें मण्डल में लकार युक्त शब्द का ही प्रयोग प्राप्त होता है। यह प्रयोग दृष्टि से भाषा में भेद है। व्याकरण दृष्टि से भी भाषा में भिन्नता दिखाई देती है। प्राचीन काल में पुंल्लिङ्ग-आकारान्त शब्दों में प्रथमा द्विवचन का प्रत्यय आ इस प्रकार का है। जैसे ''द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया'' (ऋ. वे. १.१६१) इति। किन्तु दसवें मण्डल में उस स्थान में औ इस प्रत्यय का भी प्रयोग प्राप्त होता है। जैसे - ''मा वामेतौ मा परेतौ रिषाम्'' (ऋ.वे.१०.१७८.२), सूर्याचन्द्रमसौ धाता (१०.१९०.३)। प्राचीन अंश में क्रिया अर्थक क्रिया की सूचना के लिए तवै, से, असे, अध्यै, इत्यादि प्रत्ययों का प्रयोग होता है। किन्तु दसवें मण्डल में अधिकतया तुम् इति प्रत्यय का ही प्रयोग प्राप्त होता है। दसवें मण्डल में कर्त्त वै, जीव से, अवसे इत्यादि प्राचीन पदों के स्थान में कर्त्तुम्, जीवितुम्, अवितुम् इत्यादि पदों का प्रयोग अधिक दिखाई देता है। ब्राह्मण ग्रन्थों की भाषा के साथ दसवें मण्डल की भाषा समान दिखाई देती है। इस कारण इन ग्रन्थों के काल विचार करने पर प्राचीन प्रतीत नहीं होते हैं।

2.10.2 छन्द में आया हुआ वैशिष्ट्य

प्राचीन अंशो में उपलब्ध छन्दों की अपेक्षा से दसवें मण्डल के छन्दों में भेद है। प्राचीन काल में वर्णों की संख्या के ऊपर छन्द विन्यास में विशेष ध्यान था। किन्तु दसवें मण्डल में लघु-गुरू के ऊपर भी उचित विन्यास में भी सब जगह विशेष बल दिया। जिससे पद्यों के पढ़ने में सुस्वर का और लय का आविर्भाव अत्यधिक रुचिकर होता है। फलतः प्राचीन अनुष्टुप् दसवें मण्डल में लौकिक संस्कृत के अनुष्टुप् के समान हुआ।

2.10.3 देवता में आया वैशिष्ट्य

ऋग्वेद में ही देवता प्राणशाली होने से असुर ऐसा कहा। इस वेद में देवताओ के स्थान अत्यधिक महत्त्व पूर्ण है। वैदिक काल के महर्षियों ने प्रकृति की लीला धारण करने के लिये विविध रूपों की कल्पना की है। किन्तु दसवें मण्डले में उल्लिखित देवों में बहुत से नये देवता जोड़ दिये। वरुण समस्त जगत का नियन्ता, सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान् देवस्वरूप से पूर्व चित्रित थे, किन्तु इस मण्डल

में उसका शासन क्षेत्र कम होकर जलमात्र तक शेष दिखाई देता है। विश्व नियन्ता पद से हटकर जल देवता स्वरूप में ही दृष्टि गोचर होते है। कुछ मानसिक भावना से, और मानसिक वृत्ति के प्रतिनिधि स्वरूप नये देवों की कल्पना की है। इस प्रकार के देवो में 'श्रद्धा (ऋ. १०.१५१),' मन्यु (१०.८३.८४) आदि की कल्पना की है। तार्क्ष्य की भी स्तुति एक स्थान में देवता रूप में ही उपलब्ध होती है (ऋ. १०.१७८)। कामायनी श्रद्धा का अत्यधिक रोचक वर्णन सूक्त में है –

श्रद्धयाग्निः समिध्यते श्रद्धया हूयते हविः।
श्रद्धां भगस्य मूर्धनि वचसा वेदयामसि॥

श्रद्धा से अग्नि प्रज्वलित होती है, अर्थात् ज्ञान अग्नि का प्रज्वलन श्रद्धा से ही होता है। हवि से हवन भी श्रद्धा से ही सम्भव होता है। गीता में भगवान श्री कृष्ण ने भी बहुत जगह इसी प्रकार कहा है। ऐश्वर्य का ऊर्ध्व स्थान को जाने के लिए हम वाणी द्वारा श्रद्धा से स्तुति करते है। गाय की स्तुति में प्रयुक्त एक सम्पूर्ण सूक्त (१०.१६९) वैदिक आर्यो की गो विषय में भावना को सुन्दरता से अभिव्यक्त किया है। अरण्य-देवों की स्तुति में (१०.१४६) विषय की नवीनता पण्डितों के हृदय को आकर्षित करती है। इसी सूक्त का प्रख्यात मन्त्र में (१०.७१.११) यज्ञ सम्पादक चारों ऋत्विजों का (होता – अध्वर्यु-उद्गाता – ब्रह्मा) स्पष्ट रूप से सङ्केत प्राप्त होता है।

पाठगत प्रश्न 2.8

1. वेद में सलिल शब्द के स्थान में किसका प्रयोग दिखाई देता है?
2. ऋग्वेद के दसवें मण्डल में किन प्रत्ययों का प्रयोग मिलता है?
3. जीवसे, अवसे इन स्थानों पर ऋग्वेद के दसवें मण्डल में क्या प्रयोग किया है?
4. पद्यों के पढ़ने में रुचिता कैसे आती है?
5. ऋग्वेद में देव कैसे असुर कहलाते है?
6. ऋग्वेद के दसवें मण्डल में वरुण देव कैसे प्रतिपादित है?
7. वरुण देव का शासन क्षेत्र कहाँ था?
8. ''श्रद्धयाग्निः समिध्यते'' यह मन्त्र सम्पूर्ण लिखिए।

पाठ का सार

ऋग्वेद अष्टक-अध्याय-सूक्त भेद से तथा मण्डल-अनुवाक-वर्ग भेद से विभक्त है। ऋग्वेद में त्रिष्टुप्-छन्द का प्रयोग अधिक दिखाई देता है। ऋग्वेद की शाकल-वाष्कल-आश्वलायन-

शांख्यायन-माण्डूकायन-नाम की पांच मुख्य शाखा है। आजकल ऋग्वेद की प्रचलित संहिता शाकल शाखा ही है। संवाद सूक्त में कुछ उपाख्यान प्राप्त होते हैं। उनमे ऐतरेय ब्राह्मण में आया हुआ शुन: शेप उपाख्यान, शतपथ ब्राह्मण में आया हुआ उर्वशी-पुरुरवा उपाख्यान इत्यादि मुख्य है। ऋग्वेद का दसवां मण्डल सबसे अर्वाचीन मण्डल है। और इसका कारण वंश मण्डल से भाषा में आया हुआ भेद, और विषय में आई हुई भिन्नता सब जगह दिखाई देती है। यहां भाषा में आये हुए वैशिष्ट्य को, छन्द में आये हुए वैशिष्ट्य को और देवता में आये हुए वैशिष्ट्य की आलोचना की है।

पाठांत प्रश्न

1. ऋक् संहिता के दो क्रमों का वर्णन कीजिए।
2. ऋग्वेद में ऋचाओं की संख्या के विषय में जो जानते हो उसे लिखिए।
3. ऋग्वेद की कौन-कौन सी शाखा प्रसिद्ध है, उनको विस्तारपूर्वक लिखिए।
4. संवाद सूक्त के विषय में संक्षेप में लिखिए।
5. दसवें मण्डल की अर्वाचीनता की युक्ति के द्वारा समर्थन कीजिए।
6. दसवें मण्डल में भाषा में आये हुए भेद का वर्णन कीजिए।

पाठगत प्रश्नों के उत्तर

2.1

1. ऋच्यते स्तूयते यया सा ऋक्।
2. ऋचाओं का समूह ही ऋग्वेद है।
3. जहाँ अर्थवश से पाद की व्यवस्था हो वह ऋक् ऐसा मीमांसक मानते है।
4. ऋचा के उत्पन्न होने के विषय में पुरुष सूक्त में आलोचना की है।
5. महाभाष्य में ऋग्वेद की इक्कीस शाखा का निर्देश है।
6. ऋग्वेद सूक्त-मण्डल भेद से दो भागों में विभक्त है।
7. ऋषि सूक्त, देवता सूक्त, छन्द सूक्त और अर्थ सूक्त भेद से सूक्त चार प्रकार के हैं।
8. जिन मंत्रो के ऋषि एक ही हैं, उन मंत्र समूहों को ही ऋषि सूक्त कहते हैं।
9. जिन मंत्रों के छन्द समान ही है, उन मंत्र समूहों को ही छन्द सूक्त कहते हैं।
10. जितने अर्थ समाप्त मन्त्रों का समूह अर्थ सूक्त कहलाता है।

टिप्पणियाँ

11. ऋग्वेद मण्डल-अनुवाक-वर्ग भेद से और अष्टक अध्याय सूक्त भेद से दो प्रकार की है।
12. प्रथम भाग में बालखिल्य सूक्तों को छोड़कर सम्पूर्ण ऋग्वेद संहिता में दस मण्डल, पचासी अनुवाक, दो हजार छः वर्ग है।

2.2

1. ऋक् संहिता में आठ भाग हैं, और प्रत्येक भाग में आठ अध्याय हैं।
2. सम्पूर्ण ऋग्वेद में चौसठ अध्याय हैं।
3. प्रत्येक अध्याय के अन्तर विभाग का नाम - 'वर्ग' है।
4. अच्छी प्रकार से और सरलता से जैसा अध्ययन होता है, उसी प्रकार इनका वर्ग भेद किया है।
5. सम्पूर्ण ऋग्वेद में दो हजार छः वर्ग है।

2.3

1. ऋग्वेद का दूसरा मण्डल क्रम विभाग है।
2. बालखिल्य सूक्तों को छोड़कर सम्पूर्ण ऋग्वेद संहिता में दस मण्डल, पचासी अनुवाक और दो हजार छः वर्ग है।
3. शाकल्य के अनुसार दस हजार चार सौ सड़सठ मन्त्र है।
4. मन्त्रों में अक्षर संख्या है - ४३२०००।
5. सभी मन्त्र चौदह छन्दों में विभक्त हैं।
6. ऋग्वेद में आये मन्त्र द्रष्टा ऋषियों में गृत्समद-विश्वामित्र-वामदेव-अत्रि-भारद्वाज-वशिष्ठ आदि है।
7. खिल शब्द का अर्थ होता है 'परिशिष्ट' अथवा बाद में संकलित मन्त्र।
8. ऋचाओं में शब्दो की संख्या १५३८२३ है।
9. बृहती छन्द छत्तीस अक्षरों का होता है।

2.4

1. प्राचीन आचार्यो के मध्य में ऋक् मन्त्रों की गणना प्रसंग में विरोध, शाखाओं के भेद से ही परिलक्षित होता है।
2. इस भ्रमोदय का कारण है - ऋग्वेद में कितनी ऋचा इस प्रकार की है जो ऋचा अध्ययन काल में चार पाद वाली होती है किन्तु प्रयोग काल में दो पाद वाली ही मानते हैं।
3. चरणव्यूह के टीका कर्ता - महिमदास है।
4. ऋग्वेद की संहिता में 'त्रिष्टुप्' - छन्द का प्रयोग अधिक है।

5. त्रिष्टुप्-छन्द में चार पाद होते हैं, और ग्यारह अक्षर होते है।
6. गायत्री-छन्द में तीन पाद होते हैं, प्रतिपाद में आठ अक्षर होते है।
7. जगती-छन्द में चार पाद और ग्यारह अक्षर होते है।
8. शेषभाग में ८९८ अनुष्टुप् है।

2.5

1. यज्ञ की आवश्यकता को अनुभव करके उदात्त द्रष्टा महामुनि व्यास ने अपने चार शिष्यों को वेद पढ़ाया।
2. यज्ञ में चार ऋत्विज होते हैं, और वे हैं १. होता, २. अध्वर्यु, ३. उद्गाता, ४. और ब्रह्मा।
3. होता हि यज्ञ का आवाह्न कर्त्ता है।
4. अध्वर्यु विधिवत यज्ञ को पूर्ण करता है।
5. उद्गाता ही स्वर बद्ध मन्त्रों को गाता है।
6. जैमिनी को व्यास ने सामवेद पढ़ाया।
7. ब्रह्मा ही यज्ञ निरीक्षक और किये हुए और नहीं किये हुए कार्य का निरीक्षण कर्त्ता है।
8. यज्ञ निरीक्षण कार्य सम्पादन के लिये मुनि व्यास ने सुमन्तु मुनि को अथर्ववेद पढ़ाया।
9. शाखा के साथ 'चरण'-शब्द का भी सम्बन्ध है।
10. मालतीमाधव के टीका कर्ता - श्री जगधर है।
11. महाभाष्य में ऋग्वेद की इक्कीस शाखा का निर्देश है।

2.6

1. शाकल शाखा और वाष्कल शाखा।
2. कवीन्द्र आचार्य की सूची से।
3. आश्वलायन शाखा में।
4. समानी व आकूतिः इत्यादि मन्त्र है।
5. श्री सुक्त में।

2.7

1. कात्यायन की ऋक्सर्वानुक्रमणि में केवल बाईस संख्या सूक्तों में है।
2. शबर स्वामी ने शबर भाष्य को लिखा।
3. 'केवलाघो भवति केवलादी' इति
4. वेदों में वर्णित सूक्तों के द्वारा।

टिप्पणियाँ

5. डॉ. हर्टल महोदय, श्रोदर महोदय, विण्डिश महोदय, ओल्डेन वर्ग महोदय, पिशेल महोदय इत्यादि
6. नासदीय सूक्त, पुरुष सूक्त, हिरण्यगर्भ सूक्त, वाक सूक्त इत्यादि।

2.8

1. सरिर इति।
2. तवै, से, असे, अध्यै, इत्यादि प्रत्यय है।
3. जीवितुम्, अवितुम् इति।
4. सुस्वर का तथा लय के सुन्दर होने से।
5. प्राणशालि होने से।
6. समस्त जगत का नियन्ता, सर्वज्ञ, और सर्वशक्तिमान् है।
7. जलमात्र ही।
8. श्रद्धयाग्निः समिध्यते श्रद्धया हूयते हविः। श्रद्धां भगस्य मूर्धनि वचसा वेदयामसि।

॥ दूसरा पाठ समाप्त॥

3

यजुर्वेद और सामवेद संहिता साहित्य

इस पाठ में यजुर्वेदीय संहिता साहित्य और सामवेदीय संहिता साहित्य की आलोचना की गई है। यजुर्वेद शुक्ल और कृष्ण भेद से दो प्रकार का होता है। उनका पुन संहिता भेद भी है। यहाँ उनमें आदि यजुर्वेद संहिता का सामान्य से परिचय करके माध्यन्दिन संहिता, काण्व संहिता, तैत्तिरीय संहिता, मैत्रायणी संहिता, कठ संहिता, और कापिष्ठल संहिता इत्यादि इनके विभागों की विस्तार से आलोचना करेगें। उसके बाद सामवेद संहिता की आलोचना करेंगे। और वहाँ साम शब्द के अर्थ का प्रतिपादन करेंगे। उसके बाद कौथुमीय शाखा, राणायणीय शाखा, और जैमिनीय शाखा इन तीनों का सामवेदीय शाखाओं में विस्तार से आलोचना होगी। और अन्त में सामगान का सामान्य परिचय और साम विभाग को प्रदर्शित करेंगे।

उद्देश्य

इस पाठ को पढ़कर आप सक्षम होंगे :

- यजुर्वेद के विभागों को जान पाने में;
- यजुर्वेदीय संहिताओं के प्रकारों को जान पाने में;
- माध्यन्दिन संहिता, काण्व संहिता, तैत्तिरीय संहिता, मैत्रायणी संहिता, कठ संहिता, कापिष्ठल संहिता -इन मुख्य संहिता के विषय में जान पाने में;
- साम-शब्द का अर्थ समझ पाने में;
- सामवेदीय संहिता के प्रकारों को समझ पाने में;
- कौथुमीय शाखा, राणायनीय शाखा और जैमिनीय शाखा इन तीन सामवेदीय शाखा को जान पाने में और;
- सामगान के सामान्य परिचय को और साम विभाग को जान पाने में।

टिप्पणियाँ

3.1 यजुर्वेद संहिता साहित्य

ऋग्वेद संहिता, सामवेद संहिता, यजुर्वेद संहिता और अथर्ववेद संहिता इन चारो संहिता में भी यजु संहिता अत्यधिक महत्त्व पूर्ण है। यजुर्वेद में सभी प्रकार के यागों के वर्णन प्राप्त होते हैं। और वह यजु संहिता कृष्ण यजुर्वेद तथा शुक्ल यजुर्वेद भेद से दो प्रकार के हैं। मन्त्र, ब्राह्मण दोनों का जहाँ मिश्रित भाव प्राप्त होता है वह कृष्ण यजुर्वेद इस नाम से विख्यात है, किन्तु जहाँ मन्त्रों का ही विशुद्ध रूप के द्वारा प्रतिष्ठान किया है वह शुक्ल यजुर्वेद इस नाम से विख्यात है। शुक्ल यजुर्वेद की पच्चासी शाखाओं में केवल चार तैत्तिरीय, मैत्रायणी, काठक, कापिष्ठल नाम की शाखा उपलब्ध होती है।

यजुर्वेद में गद्य है। अध्वर्यु के द्वारा यज्ञ में उपयोग में लाने वाले मन्त्र ही यजुर्वेद में सङ्कलित हैं। यज्ञ का वास्तविक विधान अध्वर्यु ही करता है, इसलिए यह यजुर्वेद यज्ञ विधि के अत्यधिक समीपता के सम्बन्ध की रक्षा करता है। यजु शब्द की व्याख्या समय-समय के अनुसार अलग-अलग प्रतीत होती है परन्तु फिर भी उनमें एक ही लक्षण के प्रति सङ्केत प्राप्त होते हैं। 'अनियताक्षरावसानो यजुः' अर्थात् जहाँ अक्षरो की संख्या निश्चित नहीं होती है वह यजुर्वेद है। 'गद्यात्मको यजुः' अथवा 'शेषे यजुः' इस कथन का यह ही तात्पर्य है कि गद्यात्मक-मन्त्रों का अभिधान ही 'यजुर्वेद' में है।

वेद के दो सम्प्रदाय है - १) ब्रह्म सम्प्रदाय, २) और आदित्य सम्प्रदाय है। शतपथ ब्राह्मण के अनुसार आदित्य यजु-शुक्ल यजुर्वेद के नाम से प्रसिद्ध है, और भी याज्ञवल्क्य आख्यान में - 'आदित्यानीमानि शुक्लानि यजूंषि वाजसनेयेन याज्ञवल्क्येनाख्यायन्ते' (श.ब्रा. १४/९/५/३३)। इस कारण आदित्य सम्प्रदाय का प्रतिनिधि शुक्ल यजुर्वेद है। यजुर्वेद के शुक्लत्व और कृष्णत्व का जो भेद है, वह उसके स्वरूप पर आश्रित है। शुक्ल यजुर्वेद में दर्शपौर्ण मास आदि के अनुष्ठान के लिये मन्त्र सङ्कलित हैं। किन्तु वहाँ ब्राह्मण भाग का अलग से निर्देश है। कृष्ण यजुर्वेद में तो मन्त्रों के साथ ही उसके नियोजक ब्राह्मण वाक्यों का सम्मिश्रण है। मन्त्र और ब्राह्मण का एक ही जगह मिश्रण ही कृष्ण यजुर्वेद के कृष्णत्व का कारण है। और इसी प्रकार मन्त्र, ब्राह्मण के पृथकत्व का शुक्ल यजुर्वेद के शुक्लत्व का कारण है।

3.2 विषय विवेचन

शुक्ल यजुर्वेदीय मन्त्र संहिता वाजसनेयी संहिता इस नाम से विख्यात है। इसमें चालीस अध्याय है। उनमें अन्तिम पंद्रह अध्याय खिल रूप से प्रसिद्ध अर्वाचीन मानते है।

प्रारम्भिक दो अध्याय दर्शपौर्ण मास नामक याग के सम्बद्ध मन्त्रों का वर्णन है। तृतीय अध्याय में अग्निहोत्र के लिये और चातुर्मास्य यज्ञ के लिए उपयोगी मन्त्रों का विवरण किया है। चौथे अध्याय से आरम्भ करके आठवें अध्याय पर्यन्त सोम याग का वर्णन है। इसी अध्याय में अग्निष्टोम के प्रकृति याग का विस्तृत विवरण है। अग्निष्टोम में सोम का उपखण्ड से पीस करके रस निकालना चाहिए। उससे ही प्रातः, मध्याह्न, और सायंकाल अग्नि में हवन होता है। इसी को ही 'सवन' इस नाम से जाना जाता है। यह सवन समय के अनुसार से विभिन्न नामों से विख्यात है। दिन मात्र

में ही समाप्त सवन को 'एकाह:' कहते है। सोमयाग में वाजपेय याग सबसे श्रेष्ठ है। राजा के अभिषेक के समय में राजसूय यज्ञ होता है। इस यज्ञ में द्यूतक्रीडा, अस्त्रक्रीडा आदि का राजा के अन्य उचित विभिन्न क्रियाकलापों का विधान होता है। नौवें और दसवें अध्याय में इसी यज्ञ से ही सम्बद्ध मन्त्रों का सङ्कलन है। उसके बाद ग्यारहवें अध्याय से आरम्भ करके अठारहवें अध्याय पर्यन्त अग्नि चयन विषय में आलोचना है। किन्तु यज्ञ की होम अग्नि हेतु के लिये वेदी निर्माण का वर्णन भी विस्तार से किया है। वेदि की रचना १०८०० ईटों से होता है। यह विशिष्ट स्थान से भी समान होती है। वेदि की आकृति पंख फैलाये पक्षी के समान होती है। ब्राह्मण मन्त्रों में वेदि तथा उसके ईटों का आध्यात्मिक रूप से व्याख्यान बहुत सुन्दरता से किया है। सोलहवें अध्याय में सौ रुद्र यज्ञ का प्रसङ्ग है। इस अध्याय में रुद्र की कल्पना के लिये वेद वेदागों सहित विवेचना की है। रुद्र सम्बन्धी वैदिक यज्ञो में रुद्राध्याय अत्यधिक उपयोगी और हमेशा प्रसिद्ध है। अठारहवें अध्याय में वसु के धारा सम्बन्धी मन्त्रों का निर्देश है। उसके बाद तीन अध्यायों में (१९-२१) सौत्रामणि यज्ञ का विधान है। इस यज्ञ के विषय में एक जनश्रुति है की अधिक सोमपान से इन्द्र रोगी हुए। इस रोग की चिकित्सा स्वर वैद्य ने इसी यज्ञ से की है। राज्य से हटे हुए राजा के लिये, पशुकाम की इच्छा वाले यजमान के लिए, सोमरस अनुकुलता से पराजित मनुष्य के लिए इस यज्ञ का अनुष्ठान किया जाता है। इसकी प्रक्रिया का संक्षिप्त विवरण उन्नीसवें अध्याय के महीधर भाष्य के प्रारम्भ में प्राप्त होती है। सौत्रामणि यज्ञ में सोमरस के साथ सुरापान का भी विधान है। जैसा की ''सौत्रामण्यां सुरां पिबेत्" इति।

बाईसवें अध्याय से आरम्भ करके पच्चीसवें अध्याय तक अश्वमेध यज्ञ के विशिष्ट मन्त्रों का निर्देश है। अश्वमेध यज्ञ तो सार्वभौम के स्वामी की अभिलाषा से सम्राट करते थे। इस यज्ञ का वेद- वेदांगो सहित वर्णन शतपथ ब्राह्मण के तेरहवें काण्ड में और कात्यायन श्रौतसूत्र के बीसवें अध्याय में है। छबीसवें अध्याय से आरम्भ करके उनत्तिसवें अध्याय पर्यन्त सम्पूर्ण मन्त्रों का सङ्कलन किया है। तीसवें अध्याय में पुरुषमेध यज्ञ का वर्णन है। जहाँ एक सौ चौरासी पदार्थों के आलम्भन का (बलिदान का) निर्देश किया है। भारत वर्ष में कभी भी पुरुषमेध नहीं हुआ। यह काल्पनिक यज्ञ है। इस अध्याय में उस समय के समाज की अवस्था का ज्ञान प्राप्त होता है, तथा कला कौशल का परिचय प्राप्त होता है। इकत्तीसवें अध्याय में प्रसिद्ध पुरुष सूक्त है, जिसमें ऋग्वेद की अपेक्षा से छ: मन्त्र अधिक है। बत्तीसवें तथा तैंतीसवें अध्याय में सर्वमेध के मन्त्रों का उल्लेख मिलता है। बत्तीसवें अध्याय के आरम्भ में हिरण्यगर्भ सूक्त के भी कुछ मन्त्र उद्धृत है। चौंतिसवें अध्याय के प्रारम्भ में छ: विशिष्ट मन्त्र 'शिवसङ्कल्प सूक्त के है' (तन्मे मन: शिवसङ्कल्पमस्तु) हमेशा उपयोगी है।

''सुषारथिरश्वानिव यन्मनुष्यान्
नेनीयतेऽभीशुभिर्वाजिन इव।
हृत्प्रतिष्ठं यदजिरं जविष्ठं
तन्मे मन: शिवसङ्कल्पमस्तु॥'' **(यजु ३४/६)**

पैंतीसवें अध्याय में पितृमेध यज्ञ सम्बन्धि मन्त्र सङ्कलित है। छत्तिसवें अध्याय से आरम्भ करके अड़तिसवें अध्याय पर्यन्त प्रवर्ग्य याग का विस्तार से वर्णन है। अन्तिम अध्याय में ईशावास्य उपनिषद्

टिप्पणियाँ

है। उपनिषदो में छोटे आकार का यह उपनिषद् सबसे पहला उपनिषद है, क्योकि अन्य उपनिषद संहिता के भाग नहीं है। उपनिषद् ग्रन्थो में इस ग्रन्थ की प्रधानता का कारण यह ही है की इस संहिता का आदित्य के साथ घनिष्ठ सम्बन्ध की भी सूचना इसके ही अन्तिम मन्त्र के द्वारा प्राप्त होती है –

''हिरण्मयेन पात्रेण सत्यस्यापिहितं मुखम्।
योसावादित्ये पुरुषः सोऽसावहम्॥'' इति। **(ईशावा.४०/१७)**

पाठगत प्रश्न 3.1

1. गद्यात्मक मन्त्रों का क्या अभिधान है?
2. यजुर्वेद कितने प्रकार का है?
3. वेद के कितने सम्प्रदाय है?
4. कृष्ण यजुर्वेद के नाम करण में हेतु कौन है?
5. शुक्ल यजुर्वेद में कितने अध्याय हैं?
6. अश्वमेध यज्ञ के विषय में निर्देश शुक्ल यजुर्वेद में कहाँ प्राप्त होते है?

3.3 शुक्ल यजुर्वेद की शाखा

शुक्ल यजुर्वेद की माध्यान्दिन शाखा, और काण्व शाखा ये दो शाखा हैं। प्रथम शाखा उत्तर भारत में प्राप्त होती है और दूसरी महाराष्ट्र में। दोनों शाखाओं की संहिता अलग होने पर भी उन दोनों में थोड़ा ही भेद है, और बहुत समानता है। किन्तु प्राचीन काल में काण्व शाखा उत्तर भारत में ही थी। जिसके कारण इस संहिता के एक मन्त्र में (११/११) कुरु-पाञ्चालदेशीय राजाओं का निर्देश प्राप्त होता है (एष वः कुरवो राजा, एष पाञ्चालो राजा)। महाभारत के आदिपर्व के अनुसार (६३/१८) शकुन्तला के पालन कर्ता पिता कुलपति कण्व का आश्रम मालिनी नदी के तट पर था। आज भी यह स्थान उत्तर प्रदेश के 'बिजनौर' जिले में 'मालन' नाम से विख्यात एक छोटी नदी है। इस कारण काण्व संहिता का प्राचीन सम्बन्ध उत्तर प्रदेश के साथ स्वीकार करने में कोई आपत्ति नहीं है।

3.4 कृष्ण यजुर्वेद की शाखा

कृष्ण यजुर्वेद की आजकल चार शाखा प्राप्त होती है –

(क) तैत्तिरीय संहिता- यह प्रधान शाखा है, यहाँ सात खण्ड है। और वे खण्ड अष्टक शब्द से और काण्ड शब्द से प्रयोग करते हैं। प्रत्येक काण्ड में कुछ अध्याय है जो प्रपाठक नाम से विख्यात है। ये प्रपाठक बहुत से अनुवाकों में विभक्त है।

(ख) मैत्रायणीं संहिता- ये दोनों भी संहिता में तैत्तिरीय संहिता का अनुसरण करती हैं।

(ग) काठक संहिता- केवल क्रम में यहाँ वहाँ भेद है।

(घ) कापिष्ठल संहिता- चरणव्यूह मत के अनुसार इसके विषय में वर्णन करेंगे।

3.4.1 तैत्तिरीय संहिता

तैत्तिरीय संहिता का प्रचार देश के दक्षिण भारत में है। कुछ अंश रूप में महाराष्ट्र प्रदेश और सम्पूर्ण रूप में आन्ध्र, कर्नाटक प्रदेश इस शाखा का अनुयायी है। इस संहिता के अपने ब्राह्मण, आरण्यक, उपनिषत्, श्रौतसूत्र, तथा गृह्यसूत्र आदि अक्षुण्ण हैं। तैत्तिरीय संहिता के परिमाण भी कम नहीं है। आचार्य सायण की यह अपनी शाखा थी। शुक्ल यजुर्वेद में वर्णित विषय के समान ही इसके विषय हैं। पौरोडाश, यजमान, वाजपेय, राजसूय, आदि अनेक यागों के अनुष्ठान का विस्तार से यहाँ पर वर्णन प्राप्त होता है। यज्ञ के मुख्य स्वरूप का निष्पादकत्व से इस संहिता का विद्वत्ता पूर्ण भाष्य को सर्वप्रथम आचार्य सायण ने लिखा है। किन्तु उनसे भी पूर्वतर भाष्य भट्टभास्कर मिश्र का (ग्यारहवी शताब्दि का) प्राप्त होता है। ज्ञानयज्ञ नाम का यह भाष्य प्रसिद्ध है। प्रमाणिक दृष्टि से अथवा विद्वत्ता की दृष्टि से किसी भी भाष्य से न्यून यह भाष्य नहीं है। यज्ञ अर्थ से अतिरिक्त आध्यात्मिक, आधिदैविक पक्षों में भी मन्त्रों के अर्थ यहाँ वहाँ किए गए हैं।

3.4.2 मैत्रायणी संहिता

कृष्ण यजुर्वेद की दूसरी शाखा मैत्रायणी है। और यह संहिता गद्य पद्यात्मक है। इस संहिता में चार काण्ड है। प्रथम काण्ड ग्यारह प्रपाठकों में विभक्त है। जिनमें क्रमशः दर्शपूर्ण मास, अध्वर, आधान, पुनराधान, चातुर्मास्य, वाजपेय आदि यज्ञो का वर्णन है। दूसरा काण्ड तेरह प्रपाठको में विभक्त है। इन प्रपाठको में काम्य, इष्टि, राजसूय, अग्निचित, आदि का विस्तृत विवरण है। तीसरे काण्ड में सोलह प्रपाठक है। जिनमें अग्निचित, अध्वरविधि, सौत्रामणी, अश्वमेध आदि का विस्तृत वर्णन है। चौथा काण्ड खिलकाण्ड के नाम से प्रसिद्ध है। इसमें पहले निर्दिष्ट राजसूय आदि यज्ञों के विषय में आवश्यक वस्तुओं का बहुत बड़ा सङ्ग्रह है। सम्पूर्ण संहिता में २१४४ मन्त्र हैं, जिनमें १७०१ ऋचा प्रत्येक काण्ड में ऋग्वेद से उद्धृत की है। ये सभी मन्त्र ऋग्वेद के विभिन्न मण्डलों में प्राप्त होते हैं।

3.4.3 कठ संहिता

यजुर्वेद की सत्ताईस शाखाओं में कठ शाखा अद्वितीय है। पुराणों में काठक लोग मध्य प्रदेशीय नाम से अथवा माध्यम नाम से विख्यात थे। इससे जाना जाता है की वे प्राचीन काल में मध्यप्रदेश में रहते थे। पतञ्जलि के कथन अनुसार कठ संहिता का प्रचार तथा पठन-पाठन प्रत्येक गाँव में था ('ग्रामे ग्रामे काठकं कालापकं च प्रोच्यते'- महाभाष्य में ४/३/१०१)। इससे इस संहिता का प्राचीन काल में अत्यधिक प्रचार का बोध होता है। अब इसके अध्येताओं की संख्या बहुत कम है।

कठ संहिता में पांच खण्ड है। और वे क्रमशः इठिमिका, माध्यमिका, ओरमिका, याज्यानुवाक्या, अश्वमेधाद्यनुवचन नामों से विख्यात है। इन खण्ड के अंश का नाम स्थानक है। ये नाम वैदिक साहित्य में अन्य जगह दुर्लभ हैं। इस संहिता में स्थानक की संख्या चालीस है, अनुवचनों की संख्या तेरह है, अनुवाकों की संख्या ८४३ है, मन्त्रों की संख्या ३०९१ है, मन्त्र ब्राह्मणों की सम्पूर्ण संख्या १८००० तक है।

इठिमिका के अट्ठारह स्थानकों में पुरोडाश, अध्वर, पशुबन्ध, वाजपेय, राजसूय आदि यागों का विस्तृत वर्णन है। माध्यमिका के बारह स्थानकों में सावित्री, पञ्चचूड, स्वर्ग, दीक्षित, आयुष्य आदि का विवेचन है। ओरिमिका का दस स्थानकों में पुरोडाश ब्राह्मण, यजमान ब्राह्मण, सत्रप्रायश्चित्त, चातुर्मास, सव, सौत्रामणि आदि का वर्णन है। अन्तिम काण्ड में तेरह अनुवचन है। यहाँ दर्शपौर्णमास, अग्निष्टोम, अग्निहोत्र, आधान, काम्येष्टि, निरूढपशुबन्ध, वाजपेय, राजसूय, अग्निचयन, चातुर्मास, सौत्रामणी, अश्वमेध आदि यज्ञों का विशिष्ट विधान सहित वर्णन किया है। कृष्ण यजुर्वेद की चारों संहिताओ में केवल स्वरूप से ही एक रूपता नहीं है, अपितु उसमे वर्णित अनुष्ठानों में तथा उसके निष्पादक मन्त्रों में भी समानता है।

3.4.4 कापिष्ठल संहिता

चरणव्यूह के मत अनुसार चरक शाखा में कठों का, प्राच्य कठो का, और कपिष्ठल कठ का उल्लेख प्राप्त होते है, जिस उल्लेख से शाखा सम्बद्ध इसका पूर्ण परिचय प्राप्त होता है। कपिष्ठल किसी ऋषि विशेष का नाम था। इसका उल्लेख महावैयाकरण महर्षि पाणिनि ने 'कपिष्ठलो गोत्रे' (८/३/९१) इस सूत्र में किया है। भाष्यकार के अनुसार भी दुर्गाचार्य ने भी अपने आप को 'कपिष्ठल वसिष्ठ' ऐसा कहा है (''अहञ्च कापिष्ठलो वाशिष्ठः'' निरुक्तटीका ४/४)। प्रायः यह किसी स्थान विशेष का बोध कराता था। इस संहिता के सम्पादक का अनुमान है कि – कपिष्ठल गाँव का प्रतिनिधि 'कैथल' इस नाम का ही गाँव था। यह गाँव कुरुक्षेत्र में सरस्वती नदी के पूर्व दिशा में बसा हुआ था। इस गाँव का उल्लेख काशिका में तथा वराहमिहिर के द्वारा रचित बृहत संहिता में (१४/४) प्राप्त होता है।

काठक संहिता से अनेक प्रकार की विभिन्नता और पृथकता इस कापिष्ठल संहिता में दिखाई देती है। काठक संहिता के समान इसका मूल ग्रन्थ भी स्वराङ्कन पद्धति में ऋग्वेद के समान ही है। ऋग्वेद के समान ही यह ग्रन्थ भी अष्टकों और अध्यायों में विभक्त है। इस प्रकार कापिष्ठल संहिता में ऋग्वेद का ही महान् प्रभाव दिखाई देता है। यह ग्रन्थ पूर्ण नहीं है। इस ग्रन्थ में निम्न लिखित अष्टक तथा उसके अन्तर्गत अध्याय है –

प्रथम अष्टक– सम्पूर्ण है, और आठ अध्याय से युक्त है।

द्वितीय अष्टक और तृतीय अष्टक– नौवें अध्याय से आरम्भ करके चौबीसवें अध्याय पर्यन्त द्वितीय तृतीय दोनों अष्टक।

चतुर्थ अष्टक– बत्तीसवें अध्याय को छोड़कर पच्चीसवें अध्याय से आरम्भ इकत्तिसवें अध्याय तक सभी अध्याय प्राप्त होते हैं।

पञ्चम अष्टक- तैतीसवें अध्याय को छोड़कर बतीसवे अध्याय से आरम्भ करके अन्य सात अध्याय प्राप्त होते है।

षष्ठ अष्टक- तैंतालीस अध्याय को छोड़कर अन्य सभी अध्याय प्राप्त होते है। अड़तालीस अध्यायों में यह ग्रन्थ सम्पूर्ण होता है। तुलनात्मक दृष्टि से यह अपूर्ण ग्रन्थ अत्यधिक महत्त्वपूर्ण है।

पाठगत प्रश्न 3.2

1. शुक्ल यजुर्वेद की कितनी शाखा हैं?
2. कृष्ण यजुर्वेद की कितनी शाखा प्राप्त होती हैं?
3. माध्यान्दिन शाखा कहाँ प्राप्त होती है?
4. काण्व शाखा कहाँ प्राप्त होती है?
5. मैत्रायणी संहिता में कितने काण्ड है?

3.5 सामवेद संहिता साहित्य

चारों संहिताओ में साम संहिता परम गौरव शालिनी है। 'सामवेद को जो जानता है, वह ही वेद तत्त्व को जानता है' यह बृहद्देवता की उक्ति उसकी महिमा को उच्च स्वर से गा रही है। गीता में भगवान् श्री कृष्ण ने कहा - वेदो में सामवेद हूँ। गान पूर्वक उपासना इस वेद का उद्देश्य है। अब इस महान वेद की तीन ही शाखा प्राप्त होती है। और वे यथाक्रम कौथुमीय, राणायनीय, और जैमिनीय है।

ऋग्वेद में और अथर्ववेद में सामवेद की बहुत प्रशंसा प्राप्त होती है। ऋग्वेद में एक मन्त्र में पक्षी की सुन्दर ध्वनि के समान साम गायन मधुर होता है ऐसा कहा है - 'उद्गातेव शकुने साम गायसि' इति (ऋ.२/४३/२)। अथर्ववेद में वेदों के स्वरूप विषय में एक जगह वर्णन किया है की जगत के नियन्ता परमेश्वर के मुख स्वरूप अथर्ववेद है, त्वचा के लोम स्वरूप सामवेद है, हृदय स्वरूप यजुर्वेद है, और प्राण स्वरूप ऋग्वेद है। जैसा कि वेद में वर्णन है -

''यस्मादृचो अपातक्षन् यजुर्यस्मादपाकषन्।
सामानि यस्य लोमान्यथर्वाङ्गिरसो मुखं स्कम्भं तं ब्रूहि कतमः स्विदेव सः'' इति।
(अथर्ववेद. १०/७/२०)।

अन्य मन्त्र में ऋग्वेद के साथ सामवेद का भी आविर्भाव प्रदर्शित किया है - **'ऋचः सामानि छन्दांसि.....उच्छिष्टास्तु यज्ञिरे सर्वे' (अथ.वे. ११/७/२४)।** अन्य मन्त्र में कर्म के साधनभूत ऋग्वेद की और सामवेद की स्तुति में विधान है - 'ऋचं साम यजामहे यासां कर्माणि कुर्वते' (अ.वे. ७/५४/१)। इसके अतिरिक्त सामवेद की विभिन्न अभिधान प्राचीन वैदिक साहित्य में उपलब्ध होता है, जिससे इस सामवेद की प्राचीनता पर सन्देह नहीं रहता है। ऋग्वेद में वैरूप, बृहत्, रैवत,

गायत्र, भद्र आदि साम के नाम का ज्ञान होता है। यजुर्वेद में रथन्तर, वैखानस, वामदेव्य, शाक्वर, रैवत, अभीवर्त्त आदि का उल्लेख प्राप्त होता है। ऐतरेय ब्राह्मण में नौधस, रौरय, यौधाजय, अग्निष्टोमीय आदि विशिष्ट साम के नाम का निर्देश प्राप्त होते है। इससे यह प्रतीत होता है की साम गायन प्राचीन काल से ही चला आ रहा है। ऋग्वेद के समय में भी इनका विशिष्ट गायन का अस्तित्व स्पष्ट रूप से सिद्ध होता है।

3.6 साम शब्द का अर्थ

ऋक् मन्त्र सम्बद्ध गान ही वस्तुत: साम शब्द का वाच्य है। साम संहिता का सङ्कलन उद्गाता नाम के ऋत्विज ने किया है। उद्गाता ही देवता स्तुति परक मन्त्रों को आवश्यकता अनुसार विविध स्वरों से गाता है। इस कारण साम नाम का आधार भूत ऋङ्ग मन्त्र ही होते हैं ऐसा निश्चित है (ऋचि अध्यूढं साम- छा. उ. १/६/१)। और यह ऋक और साम का आपस में घनिष्ठ सम्बन्ध को सूचित करता है, दोनों के मध्य में दाम्पत्य भाव की भी कल्पना है। पति ने सन्तान उत्पन्न करने के लिए पत्नी का आह्वान करता हुआ कहता है - साम रूप मैं पति हूँ और तुम ऋक् रूप पत्नी हो। मैं आकाश हूँ, और तुम पृथिवी हो। इसलिए आओ। हम मिलकर प्रजा की उत्पति करते है। **'अमोऽहमस्मि सा त्वम्, सामाहमस्मि ऋक् त्वम्, द्यौरहं पृथिवी त्वम्, ताविह सम्भवावा प्रजानामजनयावहै'** (बृह. उ. ६/५/२०; अ. वे. १४/२/७ ऐ.ब्रा. ८/२७)। साम शब्द की एक बहुत ही सुन्दर निरुक्ति बृहदारण्यक उपनिषद में है - 'सा च अमश्चोति तत्साम्न: सामत्वम्' (बृह.उ. १/३/२२)। 'सा' इति शब्द का अर्थ होता है ऋक् तथा 'अम' इति शब्द का अर्थ है गान्धार आदि स्वर। अत: साम शब्द का व्युत्पत्ति प्राप्त अर्थ होता है ऋक् सम्बद्ध स्वर प्रधान गान। वैसे ही- उसके साथ सम्बन्ध अम नाम का स्वर जहाँ रहता है वह साम है। जिन ऋचाओं के ऊपर साम गान होता है, वह ऋचा वेद विद्वानों द्वारा 'सामयोनि' नाम से जानी जाती है। यहाँ स्मरण रहना चाहिए की यहाँ साम संहिता का वर्णन है। इनमे उन साम-ऋचाओं का सङ्ग्रह मात्र ही है अर्थात् साम संहिता में केवल साम उपयोगी मन्त्रों का ही सङ्कलन है, उनमें गान नहीं है जो सामवेद का मुख्य वाच्य है।

3.7 विषय विवेचना

सामवेद के दो प्रधान भाग हैं - आर्चिक और गान। आर्चिक शब्द का अर्थ ऋक्-समूह। वह भी दो भाग में विभाजित होती है - पूर्वार्चिक और उत्तरार्चिक। पूर्वार्चिक को ही छन्द, छन्दसी, और छन्दसिका तीन नामों से जाना जाता है। विषय अनुसार पूर्वार्चिक को चार भागो में विभाजित करते हैं - आग्नेय पर्व (अग्नि सम्बन्धि ऋचाओं का वर्णन), ऐन्द्र पर्व (इन्द्र सम्बन्धि ऋचाओं से युक्त), पवमान पर्व (सोम विषय), और आरण्यक है। पूर्वार्चिक में छ: प्रपाठक अथवा अध्याय है। प्रत्येक प्रपाठक में दो अर्द्ध अथवा खण्ड है, तथा प्रत्येक खण्ड में पुन 'दशति' नाम के अंश है। प्रत्येक दशति नाम के खण्ड में कुछ ऋचा है। प्रथम अध्याय से आरम्भ करके पांचवे अध्याय तक की ऋचा तो 'सामगान' नाम से विख्यात है, किन्तु छठें अध्याय की ऋचा अरण्य में ही गाते हैं। अत: यहाँ इन ऋचाओं का एक ही जगह सङ्ग्रह है। इसके अन्त में परिशिष्ट रूप से 'महानाम्नी' इस नाम की दस ऋचा हैं। इस प्रकार से पूर्वार्चिक में मन्त्रों की संख्या छ: सौ पचास है (६५०)।

उत्तरार्चिक तो अनुष्ठान निर्देशक है। उसके बहुत से विभाग है। दसरात्र, संवत्सर, ऐकाह, अहीन, सत्र, प्रायश्चित्त, और क्षुद्र वहाँ प्रमुख भेद है। इस उत्तरार्चिक में नौ प्रपाठक है। प्रथम पञ्च प्रपाठको में प्रत्येक प्रपाठक के दो भाग हैं, जो प्रपाठक अर्द्ध नाम से प्रसिद्ध है। किन्तु अन्तिम चार प्रपाठकों में प्रत्येक प्रपाठक के तीन भाग हैं। यह भेद राणायनीय शाखा के अनुसार है। उत्तरार्चिक के सम्पूर्ण मन्त्रों की संख्या (१२२५) बारह सौ पच्चीस है। अत: दोनों आर्चिको के मिलाने से मन्त्रों की संख्या (१८७५) अट्ठारह सौ पचहत्तर है।

पाठगत प्रश्न 3.3

1. बृहद्देवता में साम विषय में क्या कहा है?
2. श्री कृष्ण ने साम महिमा की कीर्ति का वर्णन कैसे किया?
3. साम का क्या उद्देश्य है?
4. साम की कितनी शाखा और वे कौन सी हैं?
5. किस मन्त्र में कर्म साधन भूत ऋग्वेद की और सामवेद की स्तुति विहित है?
6. ऋग्वेद में कैसे साम नाम का अभिधान प्राप्त होता है?
7. ऋक् साम नाम की तुलना है।
8. सामयोनि कौन है?
9. आर्चिक का शाब्दिक अर्थ क्या है?
10. पूर्वार्चिक को किन नाम से व्यवहार किया जाता है?
11. पवमान पर्व का क्या विषय है?

3.8 सामवेद की शाखा

भागवत, विष्णु, वायु आदि पुराणों के मतानुसार वेदव्यास महोदय ने अपने शिष्य जैमिनि के लिए सामवेद की शिक्षा दी। कवि जैमिनि ही सामवेद के आदि आचार्य के रूप से सभी जगह प्रसिद्ध है। जैमिनि ने अपने पुत्र सुमन्तु को, सुमन्तु ने अपने पुत्र सुन्वान् को, सुन्वान् ने अपने पुत्र सुकर्मण को सामवेद संहिता का अध्ययन कराया है। इस संहिता का विपुल प्रचार के लिये वेदाचार्य सुकर्मण का बहुत बड़ा योगदान है। इसके दो पट्टशिष्य थे – हिरण्यनाभकौशल्य, और पौष्यञ्जि, जिनसे सामवेद की दो प्रकार की धारा प्रकट हुई। प्राचि और उदीचि। प्रश्नोपनिषद में (६/१) हिरण्यनाभ का कौशल देश के राज पुत्र रूप से चित्रित है। भागवत पुराण में (१२/६/७८) साम गान की दोनों परम्परा का उल्लेख है – प्राच्य साम गान और उदीच्य साम गान। भौगोलिक भिन्नता के

टिप्पणियाँ

कारण ही यहाँ नामकरण की भिन्नता है। हिरण्यनाभ के शिष्य का नाम कृत था। वह पौरव वंशीय राजा सन्नतिमान्-महोदय का पुत्र था। उसने साम संहिता का अपने शिष्यों द्वारा चौबीस प्रकार का प्रवर्त्तन किया। इसका वर्णन मत्स्य पुराण में (४९/७५-७६), हरिवंश पुराण में (२०/४१-४४), विष्णु पुराण में (४/१९-५०), वायु पुराण में (४१/४४), ब्रह्माण्ड पुराण में (३५/४९-५०) तथा भागवत पुराण में (१२६/८०) सामान्य रूप से प्राप्त होता है। वायु पुराण में और ब्रह्माण्ड पुराण में कृत-महोदय के चौबीस शिष्यों के नाम का भी वर्णन प्राप्त होता है। कृत महोदय के अनुयायियो में सामाचार्य और कार्त्तनाम के प्रसिद्ध विद्वान थे। जैसे -

''चतुर्विंशतिधा येन प्रोक्ता वै सामसंहिताः।
स्मृतास्ते सामगाः प्राच्याः कार्त्ता नाम्नेह सामगाः॥'' इति॥

इस कृत महोदय के लोगाक्षि, माङ्गलि, कुल्य, कुसीद, कुक्षि नाम के पांच शिष्यो का उल्लेख श्रीमद्भागवत में (१२/६/७९) प्राप्त होता है। पौराणिकों के मत अनुसार से सामवेद की हजार शाखा है। इसका समर्थन पतञ्जलि ने भी किया है - 'सहस्रवर्मा सामवेदः' इति। मूल रूप से यह गान प्रधान सामवेद है। जैमिनि गृह्यसूत्र आदि की (जै.गृ.१/१४) पर्यालोचना से सामवेद की तेरह शाखाओं का उल्लेख प्राप्त होता है। सामतर्पण के अवसर पर इन शाखाओं के आचार्यो के नाम का उच्चारण करते है। वैसे ही राणायण, सात्यमुग्रि, व्यास, भागुरि, औलुण्डि, गौल्मुलवि, भानु, मानौपन्यव, काराटि, मशक, गार्ग्य, वार्षगण्यकौथुमी, शालिहोत्र जैमिनि ये तेरह सामगान आचार्य तर्पितो का कल्याण करो। अब सामवेद की तीन शाखा प्राप्त होती है - कौथुमीय, राणायनीय, और जैमिनीय।

3.8.1 कौथुमीय शाखा

यह संहिता अत्यधिक लोकप्रिय है। इसकी ताण्ड्य नाम की शाखा भी प्राप्त होती है। जिसका विशिष्ट प्रभाव और प्रचार प्राचीन काल में था। आचार्य शङ्कर ने अपने वेदान्त भाष्य के अनेक स्थलो में इसकी चर्चा की। यह चर्चा इसके गौरव को और महत्त्व को सूचित करता है। पच्चीस काण्ड का विशालकाय ताण्ड्य ब्राह्मण ग्रन्थ इसकी ही शाखा है। सुप्रसिद्ध छान्दोग्य उपनिषद् का भी इस शाखा के साथ सम्बद्ध है, ऐसा भगवान् शङ्कराचार्य अपने भाष्य में स्पष्ट लिखते है। वैसे - ''यथा ताण्डिनामुपनिषदि षष्ठे प्रपाठके स आत्मा'' इति (शा. भा. ३/३/३६), ''स आत्मा. ...छान्दोग्य उपनिषद्'' इति (६८/७) तथा ''अन्येऽपि शाखिनः ताण्डिनः शाट्यायिनः'' इति (शा. भा. ३/४/२७)।

3.8.2 राणायनीय शाखा

यह संहिता कौथुमीय शाखा से किसी भी प्रकार भिन्न नहीं है। मन्त्र गणना की दृष्टि से लगभग दोनों शाखा समान है। केवल उच्चारण जहाँ कही पर भिन्नता प्राप्त होती है। कौथुमीय लोग जहाँ 'हाड' तथा 'राइ' इन पदों का उच्चारण करते है वहाँ राणायनीय लोग 'हाबु' तथा 'रायी' इन पदों का उच्चारण करते हैं। राणायनीयों में सात्यमुग्रि इस नाम की एक अवान्तर शाखा है, जिसके उच्चारण की विशेषता भाषाविज्ञान की दृष्टि से नितान्त आलोचनीय है। आपिशली शिक्षा द्वारा

तथा महाभाष्य कार ने स्पष्टता से निर्देशित किया है कि सात्यमुग्रि लोग एकार का और ओकार के स्थान में ह्रस्व उच्चारण करते है। जैसा कि कहा है –

''छन्दोगानां सात्यमुग्रिराणायनीया ह्रस्वानि पठन्ति।'' इति। (आपिशलीशिक्षा)
''ननु च भोश्छन्दोगानां सात्यमुग्रिराणायनीया अर्धमेकारं.....अर्धमोकारं च अधीयते। सुजाते ए अश्वसूनृते। अध्वर्वो ओ अद्रिभिः सुतम्'' (महाभाष्यम्-१/१/४/४८)।

3.8.3 जैमिनीय शाखा

इस शाखा का सम्पूर्ण अंश ब्राह्मण, श्रौत, गृह्यसूत्र, संहिता प्राप्त होती है। जैमिनीय संहिता देवनागरी लिपि में लाहौर नगर से प्रकाशित हुई। इसके मन्त्रों की संख्या १६८७ है। तवलकार शाखा इसी की ही अवान्तर शाखा है। यह तवलकार जैमिनि महोदय का पट्टशिष्य था। यह सामगान पूर्वार्चिक से सम्बद्धित है। इसके तीन भाग हैं – आग्नेय, ऐन्द्र, और पवमान। इनमें आदि का और अन्तिम का पर्व का विशेष विभाग नहीं है, किन्तु ऐन्द्र पर्व के चारों भाग हैं। सम्पूर्ण ग्रन्थ में गान संख्या १२२४ है। कौथुमीय साम संहिता से जैमिनीय साम संहिता के पाठ में सर्वथा भेद नहीं है, किन्तु गान प्रकार सर्वथा भिन्न ही है। आज तक इस शाखा का केवल प्रथम भाग ही प्रकाशित है। द्वितीय भाग का तो हस्तलेख मात्र है।

पाठगत प्रश्न 3.4

1. सामवेद की शिक्षा किसने किसको दी?
2. जैमिनि का पुत्र कौन है?
3. प्रश्न उपनिषद् में कौशल देश के राजपुत्र के रूप में कौन चित्रित है?
4. कृत महोदय के कितने शिष्य हैं?
5. राणायणीय में एक अवान्तर शाखा कौन सी है?
6. एकार के और ओकार के स्थान में ह्रस्व उच्चारण कौन करते है?

3.9 साम गान का सामान्य परिचय

इन सामयोनि मन्त्रों को आश्रित करके ऋषियों के द्वारा गान-मन्त्रों की रचना की है। (गान चार प्रकार का होता है – १. गेयगान (प्रकृति गान) २. आरण्यक गान ३. ऊह गान ४. ऊह्य गान (रहस्य गान)। पूर्वार्चिक के प्रथम पांच अध्याय में आये मन्त्रों का पाठ गान गाँव में होता है। आरण्यक पर्व में निर्दिष्ट मन्त्रों का पाठ गान आरण्यक में होता है। ऊहगान और ऊह्यगान उत्तरार्चिक में उल्लेखित मन्त्रों का पाठ मुख्य रूप से गुप्त होता है। विभिन्न शाखा में इनके मन्त्रों की संख्या भी विभिन्न ही होती है। सबसे अधिक गान जैमिनीय शाखा में ही उपलब्ध है।

टिप्पणियाँ

गान	कौथुमीय शाखा	जैमिनीय शाखा
गाँव का गान	११९७	१२३२
आरण्यक गान	२९४	२९१
ऊह गान	१०२६	१८०२
ऊह्य गान	२०५	३५६
सभी का सङ्कलन	२७२२	३६८७

भारतीय सङ्गीत शास्त्र के मूल में यह साम गान ही है। साम गान पद्धति का रहस्य ज्ञान आज भी वैसा ही कठिन है जैसा भारतीय सङ्गीत शास्त्र का ज्ञान रहस्य है। नारदीय शिक्षा के अनुसार सामवेद का स्वर मण्डल इस प्रकार है –

सामानि		वेणवः (स्वर)
१.	प्रथम	मध्यम। मा
२.	द्वितीय	गान्धार। गा
३.	तृतीय	ऋषभ। रे
४.	चतुर्थ	षड्ज। सा
५.	पञ्चम	निषाद। नि
६.	षष्ठ	धैवत। धा
७.	सप्तम	पञ्चम। पा

सामगान में ये ही सात अङ्क उन स्वरों के स्वरूप को सूचित करते है। सामगानो में सामयोनि मन्त्रों का परिवर्तन करने पर अनेक प्रकार के सङ्गीत अनुकूल परिवर्त्तन होते है। और ये परिवर्त्तन सामविकार कहलाते हैं। सामविकार तो संख्या में छः होते हैं।

१. **विकार**– शब्द का परिवर्त्तन। 'अग्ने:' इस पद के स्थान में 'आग्नयि' इस पद का प्रयोग।

२. **विश्लेषण**– एक पद का पृथक् करण। जैसे 'तये' इस पद के स्थान में 'तोयितीया २यि' इस पद का प्रयोग।

३. **विकर्षण**– एक स्वर का लम्बे समय तक विभिन्न प्रकार का उच्चारण। जैसे 'ये' इस पद का 'या २ ३ यि' इस प्रकार उच्चारण करना।

४. **अभ्यास**– किसी भी पद का बार बार उच्चारण करना। जैसे – 'तोयायि' पद का दो बार उच्चारण।

५. **विराम**– आराम के लिए किसी भी पद के मध्य में विराम। जैसे – 'गृणानि हव्यदातये' यहाँ पर हकार के उपर विराम।

६. **स्तोम**– 'औहोवा' 'हाउवा' इत्यादि गान के अनुकूल पद। ये विकार भाषा शास्त्र की दृष्टि में भी हमेशा माननीय है।

3.10 साम विभाग

सामगान की पद्धति अत्यधिक कठिन है। उसके यथार्थ ज्ञान के लिए सूक्ष्म अध्ययन की आवश्यकता है। सामान्य रूप से सामगान के पांच विभाग हैं।

१. **प्रस्ताव**– मन्त्र का यह प्रारम्भिक भाग होता है। 'हूँ'– इस शब्द से प्रारम्भ होता है। प्रस्तोता (ऋत्विक्) इसका गान करता है।

२. **उद्गीथ**– साम का प्रधान (ऋत्विक्) उद्गाता इसका गान करता है। इसका आरम्भ 'ऊँ'–शब्द से होता है।

३. **प्रतीहार**– प्रतीहार शब्द का अर्थ सङ्कलन कर्त्ता है, प्रतिहर्त्ता नाम का ऋत्विक् इसका गान करता है।

४. **उपद्रव**– जो उद्गाता गाता है वह ही उपद्रव है।

५. **निधन**– प्रस्तोता, उद्गाता, प्रतिहर्त्ता ये तीनो मिलकर के इसका गान करते है। उदाहरण के लिये सामवेद का यह प्रथम मन्त्र–

'अग्न आयाहि वीतये गृणानो हव्यदातये। निहोता सत्सि वर्हिषि।' इति।
अस्य मन्त्रस्योपरि यस्य साम्नः गानं भविष्यति तस्य निम्नलिखितानि पञ्च अङ्गानि भवन्ति–

१. हुँ ओग्नाई (प्रस्ताव)।

२. ओम् आयाहि वीतये गृणानो हव्यदातये (उद्गीथ)।

३. नि होता सत्सि वर्हिषि ओम् (प्रतिहार)। इस प्रतिहार के भी दो भेद है।

४. नि होता सत्सिव (उपद्रव)।

५. र्हिषि ओम् (निधन)।

इस साम का जब तीन बार गान होता है तब वह स्तोम कहलाता है। सामगायन के लिए किसी स्वर का विकार और परिवर्तन करना होता है। जैसे पूर्व मन्त्र का 'अग्न' इस पद के गायन में परिवर्त्तित रूप– 'ओग्नाई' इस प्रकार का होता है। गायन में स्वर पूर्ति के लिए जब कभी भी निरर्थक पदों का सङ्कलन होता है। जैसे – औ, हौ, वा, हा इत्यादि। ये स्तोम होते है। छान्दोग्य उपनिषद् के अनुसार सात प्रकार का साम होता है। जैसे – १ हिङ्कार, २ प्रस्ताव, ३ आदि,

४ उद्गीथ, ५ प्रतिहार, ६ उपद्रव, ७ और निधन। उपर निर्देशों का पांच प्रकार साम के ही अवान्तर भेद करने से सात प्रकार साम की उत्पति होती है।

पाठगत प्रश्न 3.5

1. चार प्रकार के गान कौन कौन से हैं?
2. विकार कौन हैं?
3. विश्लेषण क्या है?
4. विकर्षण क्या है?
5. अभ्यास क्या है?
6. स्तोम क्या है?
7. प्रस्ताव क्या है?
8. उपद्रव क्या है?

पाठ का सार

इस पाठ में यजुर्वेद सामवेद संहिता साहित्य की आलोचना की है। शुक्ल और कृष्ण भेद से भी यजुर्वेद के दोनों भागों की यहाँ आलोचना की है। उनको पुनः संहिता भेद भी प्रदर्शित किया है। यहाँ सबसे पहले यजुर्वेद संहिता का सामान्य परिचय कराकर काण्व संहिता, तैत्तिरीय संहिता, मैत्रायणी संहिता, कठ संहिता, और कापिष्ठल संहिता इन मुख्य संहिता का यहाँ विस्तार से आलोचना की है। उसके बाद सामवेद संहिता की व्याख्या की। और साम शब्द का अर्थ भी प्रतिपादित किया। उसके बाद कौथुमीय शाखा, राणायनीय शाखा, और जैमिनीय शाखा इन तीनों सामवेद की शाखाओं की व्याख्या की। और अन्त में सामगान का सामान्य परिचय और सामविभाग प्रदर्शित किया है।

पाठांत प्रश्न

1. काण्व संहिता विषय पर टिप्पणी लिखिए।
2. तैत्तिरीय संहिता विषय पर छोटा निबंध लिखिए।
3. मैत्रायणी संहिता विषय पर टिप्पणी लिखिए।
4. कापिष्ठल संहिता विषय पर छोटा निबन्ध लिखिए।

5. साम शब्द के अर्थ का विस्तार से निबन्ध लिखिए।
6. कौथुमीय शाखा विषय पर टिप्पणी लिखिए।
7. राणायनीय शाखा विषय पर छोटा निबन्ध लिखिए।
8. जैमिनीय शाखा विषय पर टिप्पणी लिखिए।

पाठगत प्रश्नों के उत्तर

3.1

1. यजु।
2. दो प्रकार का।
3. १ ब्रह्म सम्प्रदाय, २ और आदित्य सम्प्रदाय दो सम्प्रदाय हैं।
4. मन्त्र और ब्राह्मण भाग का एक ही जगह मिश्रण कृष्ण यजुर्वेद के कृष्णत्व का कारण है।
5. चालीस।
6. बाईसवे अध्याय से आरम्भ करके पच्चीसवे अध्याय तक अश्वमेध यज्ञ के विशिष्ट मन्त्रों का निर्देश है।

3.2

1. शुक्ल यजुर्वेद की माध्यन्दिन शाखा और काण्व शाखा दो शाखा है।
2. कृष्ण यजुर्वेद की अभी चार शाखा प्राप्त होती है।
3. उत्तर भारत में प्राप्त होती है।
4. काण्व शाखा महाराष्ट्र में।
5. चार काण्ड है।

3.3

1. ''साम को जो जानता है वही वेद को जानता है''।
2. 'वेदों में सामवेद हूँ' इति।
3. गान पूर्वक परमात्मा की उपासना।
4. तीन-कौथुमीय, राणायनीय, और जैमिनीय।
5. ''ऋचं साम यजामहे याभ्यां कर्माणि कृण्वते'' इति (अथर्ववेद: ७/५४/१)।

टिप्पणियाँ

6. ऋग्वेद में वैरूप, बृहत्, रैवत, गायत्र, भद्र आदि साम के नामो का ज्ञान प्राप्त होता है।
7. मैं साम रूप में पति हूँ और तुम ऋक् रूप में पत्नी हो।
8. जिन साम ऋचाओं पर सामगान होता है वह ऋचाए वेद विद्वानों द्वारा 'सामयोनि' नाम से जानी जाती है।
9. ऋग्वेद का समूह।
10. छन्द, छन्दसी और छन्दसिका।
11. सोम विषयक।

3.4

1. वेदव्यास महोदय ने अपने शिष्य जैमिनी के लिए।
2. सुमन्तु।
3. हिरण्यनाभ।
4. २४।
5. सात्यमुग्रि।
6. सात्यमुग्रि मनुष्यों के द्वारा।

3.5

1. १ गेयगान (प्रकृति गानम्), २ आरण्यक गान ३ ऊहगान, ४ और ऊह्यगान (रहस्य गान)।
2. शब्द का परिवर्त्तन। 'अग्नेः' इस पद के स्थान में 'आग्नायि' इस पद का प्रयोग।
3. एक पद को अलग करना। जैसे 'तये' इस पद के स्थान में 'तोयितीया २यि' इति।
4. एक स्वर का दीर्घकाल तक अनेक प्रकार से उच्चारण करना। जैसे 'ये' इस पद का 'या २ ३ यि' इस प्रकार उच्चारण करना।
5. किसी भी पद का बार-बार उच्चारण करना। जैसे - 'तोयारि' पद का दो बार उच्चारण करना।
6. आराम के लिए किसी भी पद के मध्य में विराम लगाना। जैसे - 'गृणानि हव्यदातये' इस पद में हकार के उपर विराम है।
7. मन्त्र का प्रारम्भिक भाग प्रस्ताव है।
8. जो उद्गाता गाता है वह ही उपद्रव है।

॥ तीसरा पाठ समाप्त॥

4

अथर्ववेद संहिता साहित्य

भारतीय ज्ञान गङ्गा के स्रोत वेद ही है। इस प्रकार दूसरा कोई भी ग्रन्थ नहीं है जो अपनी प्रभा से केवल स्वय ही प्रकाशित न हो अपितु अपनी प्रभा से सम्पूर्ण भारतीय वाङ्मय को भी प्रकाशित कर दे। 'विद्यमान है धर्म आदि पुरुषार्थ जहाँ वे वेद है' ऐसा बह्वृक प्रातिशाख्य में कहा है। चारों वेदों में अथर्ववेद सबसे अर्वाचीन है। ऋग्वेद के बहुत से विषयों पर यहाँ दुबारा आलोचना की है। ऋग्वेद के ही बहुत से मन्त्र यहाँ वैसे ही स्वरूप में लिखे है। अथर्ववेद में केवल अपने स्वयं के मन्त्र जो अन्य वेदों में प्राप्त नहीं होते है इस प्रकार के मन्त्र बहुत ही कम है। वहाँ अथर्ववेद की संहिता साहित्य अत्यधिक महत्त्वपूर्ण है। उपरे के पाठ में ऋक् आदि तीन वेदों की संहिता विषयों पर चर्चा हुई अथवा उन वेदों की संहिता को समझा। इस अध्याय में अथर्ववेद की संहिता विषय पर आलोचना प्रस्तुत है।

उद्देश्य

इस पाठ को पढ़कर आप सक्षम होंगे :

- अथर्ववेद के साहित्य विषय को समझ पाने में;
- अथर्ववेद रूप वृक्ष की अनेक दिशाओं में फैली हुई शाखाओं के विषय को जानने में;
- अथर्ववेद के मूल प्रतिपाद्य विषयों को समझ पाने में; और
- स्त्री-राजा आदि के वैदिक कर्म के विषयों को जानने में।

4.1 भूमिका

वेदों में अथर्ववेद का स्थान सबसे उपर है। ऋक् आदि तीनों वेद कम फल देने वाले है। क्या चारों वेदों में अथर्ववेद बहुत विशिष्ट फल देता है। जब ऋग्वेद आदि तीनों वेद परलोक का फल

टिप्पणियाँ

देते है, तब यह अथर्ववेद इहलोक का भी फल देता है। जीवन को सुखी करने के लिए जिन साधनों की अपेक्षा होती है, उनकी सिद्धि के लिए इस वेद में अनेक अनुष्ठानों का विधान है। पतञ्जलि ने यद्यपि इस वेद की नौ शाखा का उल्लेख किया फिर भी वर्त्तमान में पैप्पलाद, और शौनक संज्ञा की दो शाखा ही प्राप्त होती हैं। अथर्व संहिता की शौनकशाखा और पैप्पलादशाखा लम्बे काल से ही प्रकाशित है।

किसी भी यज्ञ को सम्पूर्ण रूप से निष्पन्न करने के लिए चार ऋत्विज होते हैं। उनमे ब्रह्मा इस नाम का ऋत्विग् यज्ञ का अध्यक्ष होता है। इसका प्रधान कार्य सभी कार्यो पर अच्छी प्रकार से निरीक्षण करना तथा होने वाली त्रुटी को हटाना। इसलिए ब्रह्मा सभी वेदों को जानने वाला होना चाहिए। उसको मन से बल से भी सम्पन्न होना चाहिए। किन्तु उस ब्रह्मा का प्रधानभेद अथर्ववेद ही होता है। ब्राह्मण ग्रन्थों में ब्रह्मा के महान् गौरव का अनेक जगह वर्णन है। गोपथ ब्राह्मण का (३/२) कथन है की तीनों वेदों के द्वारा यज्ञ का अन्तर पक्ष को ही शुद्ध करते हैं। ब्रह्मा मन से यज्ञ के अन्य पक्ष का संस्कार करता है। जैसे –

'स वा एष त्रिभिर्वेदैर्यज्ञस्यान्यन्तरः पक्षः संस्क्रियते।
मनसैव ब्रह्मा यज्ञस्यान्यतरं पक्षं संस्करोति॥' **(गोप. ब्रा. ३/२)**

पुरोहित को अथर्ववेद का ज्ञान भी आवश्यक होता है, जो राजा की शान्ति तथा पौष्टिक कार्य का सम्पादन अथर्ववेद से ही करता है। अथर्ववेद के परिशिष्ट में लिखा है कि – जिस राज्य में अथवा राजा के जनपद में अथर्ववेद का ज्ञाता रहता है उस राष्ट्र में उपद्रव आदि नहीं रहते हैं और वह राष्ट्र भी शीघ्र ही वृद्धि को प्राप्त होता है। इसी प्रकार इस लोक के साधनों का और परलोक के विषयों का प्रतिपादन करने से अथर्ववेद का वैदिक संहिता में अपना विशिष्ट स्थान है।

अथर्ववेद के उपलब्ध अनेक नामों में अथर्ववेद, ब्रह्मवेद, अङ्गिरोवेद, अथर्वाङ्गिरसवेद, आदि मुख्य नाम है। 'अथर्व'–शब्द की व्याख्या तथा उसके निर्वचन को निरुक्त में तथा और गोपथब्राह्मण में प्राप्त होते है। 'शर्व'–धातुः कुटिलता अर्थ में तथा हिंसावाचक है। इसलिए ही अथर्व शब्द का अर्थ होता है – अकुटिल वृत्ति और अहिंसावृत्ति से मन की स्थिरता को प्राप्त करने वाला। इस व्युत्पत्ति के योग का प्रतिपादन करने वाले अनेक प्रसङ्ग इस वेद में है। ब्रह्म कर्म का प्रतिपादन करने से अथर्ववेद 'ब्रह्मवेद' इस नाम से जाना जाता है। अथर्ववेद का यह ही ब्रह्मवेद नाम से जानने का मुख्य कारण है।

'अथर्वाङ्गिरस'–इस पद की व्याख्या से प्रतीत होता है, की जो यह दो ऋषि द्वारा दृष्ट मन्त्रों का समूह प्रस्तुत किया है। अथर्व नाम के ऋषि द्वारा दृष्ट मन्त्र शान्ति और पुष्टिकर्म युक्त है। और अङ्गिरस द्वारा दृष्ट मन्त्र तो अभिचार (मारने, मोहित और वशीकरण आदि–को करने में) होते है। इस कारण दो प्रकार के मन्त्रों के होने के कारण वायु पुराण में (६५।२७) तथा ब्रह्माण्ड पुराण में (२।१।३६) अथर्ववेद को दो शरीर शिर वाला कहते हैं। इस कथन से स्पष्ट होता है

की अथर्ववेद में दो प्रकार के मन्त्र सङ्गृहीत हैं। शान्ति पौष्टिक कर्म का प्रतिपादन करने वाले मन्त्र तथा अभिचार कर्म का प्रतिपादन करने वाले मन्त्र हैं। आङ्गिरस के द्वारा मारण, मोहन, स्तम्भन, विद्वेष, वशीकरण, और उच्चाटन प्रख्यात छः कर्मों का विधान विशेष रूप से देखना चाहिए, वैसे ही नारदीय पुराण में भी कहा है –

'तत्र चाङ्गिरसे कल्पे षट्कर्माणि सविस्तरम्।
अभिचारविधानेन निर्दिष्टानि स्वयम्भुवा।।'

तैत्तिरीय ब्राह्मण में (३/१२/९/१) 'अथर्वणामङ्गिरसां प्रतीची' इस पद में अथर्व अङ्गिरस का मिला हुआ स्वरूप वर्णित है। सम्भवतः इन ऋषियों द्वारा दृष्ट मन्त्रों का समूह अलग सत्ता को भी धारण करता है। इस दृष्टि से गोपथब्राह्मण का एक प्रकरण में 'अथर्व वेद सिद्ध होता है' और इसी प्रकार 'अङ्गिरस वेद भी इस प्रकार का वाक्य प्राप्त होता है (११/५ ११/१८)। शतपथब्राह्मण में भी इन दोनों का उल्लेख प्राप्त होता है (१३/४/३/२)। सभी जगह अधिकांश अङ्गिरस का ही अभिधान प्राप्त होता है। उससे इसी ऋषि के महत्व को जाना जाता है। इससे जाना जाता है की इस वेद में पहले शान्ति पौष्टिक मन्त्रों की सत्ता थी उसके बाद आभिचारिक मन्त्रों का सन्निवेश हुआ।

अथर्ववेद को अनेक प्रकार के विचार से जाना जाता है कि दो धाराओं के मिश्रण का परिणाम स्वरूप यह फल है। इनमे एक धारा है अथर्व धारा और दूसरी अङ्गिरा धारा है। अथर्व-ऋषि द्वारा दृष्ट मन्त्र शान्ति और पौष्टिक कर्म के साथ सम्बद्ध है। इसका सङ्केत भागवत पुराण में भी प्राप्त होता है – 'अथर्वणेऽदात् शान्तिं यया यज्ञो वितन्यते' इति (३/२४/२४)। अङ्गिरा धारा का आभिचारिक कर्मों के साथ सम्बद्ध है। जिससे मनुष्यों में यह वेद प्रिय हुआ। शान्ति कर्म का सम्बद्ध होने से अथर्व का सम्बन्ध श्रौतयाग के प्रारम्भ से ही है, बाद में आभिचारिक कर्म के साथ उसका सम्बन्धवश होने से राजा के पुरोहित वर्गो के लिए यह वेद बहुत उपयोगी हुआ। ऋक् यजु, साम से अथर्व की भिन्नता स्पष्ट ग्रन्थों में प्राप्त होती है।

वेदत्रयी जहाँ अलौकिक फलदाता है, वहाँ अथर्ववेद लौकिक फलदाता है। इस सन्दर्भ में यहाँ यह ध्यान रखना चाहिए की जयन्त भट्ट ने न्यायमञ्जरी में अथर्ववेद की ही प्राथमिकता की उदगोषणा की है – ''वहाँ चारों वेद में, प्रथम अथर्ववेद'' है। नागरखण्ड ने भी इसको आदि वेद कहते है। और भी प्रमाणित करते है कि अथर्ववेद ही सभी लौकिक कार्यों की सिद्धि के लिए मुख्य रूप से प्रयुक्त होता है। इसी कारण ही इसे आदि वेद कहते है, जयन्तभट्ट ने तो न्यायमञ्जरी में इस विषय में विस्तार सहित विचार किया है।

राजकार्यो में भी अथर्ववेद का विशेष महत्त्व है। राजा के लिए शान्ति पौष्टिक कर्म की तुलना में पुरुष आदि के दान की महती आवश्यकता होती है। इस प्रकार के कर्मों का विधान प्रधानता से अथर्ववेद में ही प्राप्त होता है। इस विषय में पुराण, स्मृत्ति आदि ग्रन्थों में बहुत प्रमाण उपलब्ध होते हैं। विष्णुपुराण का स्पष्ट कथन है कि – ''पुरोहित के शान्तिक और पौष्टिक आदि कर्म

टिप्पणियाँ

इस अथर्ववेद से ही जाने जाते है। मत्स्य पुराण का कथन है - पुरोहित अथर्व मन्त्र में और ब्राह्मण में निपुण होना चाहिए। वैसा ''पुरोहितं तथा अथर्वमन्त्र-ब्राह्मण-पारगम्'' इति। कालिदास के कथन से भी इस कथन की पुष्टि होती है। कालिदास के द्वारा वशिष्ठ मुनि के लिए 'अथर्वनिधि:' इस पद का विशेषण दिया है, जिसका यह तात्पर्य है - रघुवंश उद्भव के कुलपुरोहित मुनि वशिष्ठ ने अथर्व मन्त्रों का तथा उनके क्रियाकलापो का भण्डार थे (रघु. १/५९)। राजा अज अथर्ववेद मन्त्रों के द्वारा गुरु वशिष्ठ से अभिषिक्त होकर शत्रुओं के लिए अपराजेय हुए। यहाँ कालिदास ने वशिष्ठ को 'अथर्ववेत्ता' ऐसा कहना चाहते है। वैसे हि रघुवंश में - 'स बभूव दुरासद: परैर्गुरुणाऽथर्वविदा कृतक्रिय:'। इति। (८/४)। अथर्ववेद भाष्यभूमिका में लिखा है की अथर्ववेद का ज्ञाता शान्ति कर्म परायण जिस राष्ट्र में रहता है वह राष्ट्र उपद्रव रहित होकर निरन्तर बढ़ता रहता है। वैसे हि-

''यस्य राज्ञो जनपदे ह्यर्वाशान्तिपारगा:।
निवसत्यपि तद्राष्ट्रं वर्धते निरुपद्रवम्॥
तस्माद्राजा विशेषेण ह्यथर्वाणं जितेन्द्रियम्।
दान-सम्मानसत्कारैर्नित्यं समभिपूजयेत्॥'' इति।

अत यह कह सकते है कि राजपुरोहितों को अथर्ववेद के मन्त्रों का तथा उससे सम्बद्धित अनुष्ठानों का ज्ञान आवश्यक होना चाहिए। इसी कारण ही अथर्ववेद इहलौकिक (इहलोक) कहलाता है, तथा अन्य तीनों वेद पारलौकिक (परलोक) के लिए कहलाते है।

4.2 अथर्ववेद की शाखा

पस्पशाह्निके में ''नवधाऽऽथर्वणो मत:'' ऐसा लिखकर पतञ्जलि ने अथर्ववेद की नौ शाखा कही है। पुराणों के अनुसार वेदव्यास महोदय ने जिस शिष्य को अथर्ववेद पढ़ाया है उसका नाम सुमन्तु था (श्रीमद्भागवत में १२/७/१-३, वायुपुराण में ६१/४९-५३, विष्णुपुराण में ३/६/९-१३)। भागवत में इसकी विशाल चर्चा है की सुमन्तु इस अभिचार प्रधान वेद के मुख्य प्रचारक थे। वे ही इस 'दारुणमुनि' इस उपाधि से विभूषित थे। अथर्ववेद की शाखाओं का विस्तार पुराणों में वर्णित है। किन्तु भागवत में (१२/७/१) स्कन्ध का नाम निर्दिष्ट नहीं है। इस पुराण में सुमन्तु के ही दो शिष्यों का वर्णन कहा पथ्य और देवदर्श है। दोनों के मध्य में देवदर्श- यह नाम ही प्रमाणिक है ऐसा प्रतीत होता है। क्योंकि अथर्वण महानारायण उपनिषद् में देवदर्शी इस नाम का अथर्व शाखा के साथ सम्बन्ध स्वीकार करते है। उस देवदर्श अथवा देवदर्शी इस नाम का ही उपयुक्त होता है ऐसा प्रतीत होता है। विष्णु पुराण के अनुसार से पथ्य के तीन शिष्यों के नाम क्रमश जाबालि, कुमुद तथा शौनक ये तीन थी। प्रमाण के अनुसार से पथ्य के तीन शिष्य थे - जाजलि, कुमुद, और शौनक। देवदर्श के चार शिष्य थे - ब्रह्मवलि, पिप्पलाद, शौष्कायणि, और शौक्लायनि। इन शिष्यों में शौनक के शिष्य बभ्रु तथा सैन्धवायन कहा है। इन मुनियों के द्वारा अथर्ववेद का विशेष प्रचार हुआ। प्रपञ्चहृदय, चरणव्यूह, सायणभाष्य आदि के उदाहरणों में यद्यपि शाखाओं की सङ्ख्या

अलग नहीं है फिर भी इनमें नामों में भिन्नता दिखाई देती है। इनकी तुलना करने पर निम्नलिखित ज्ञान होता है –१ पिप्पलाद, २ स्तौद, ३ मोद, ४ शौनकीय, ५ जाजल, ६ जलद, ७ ब्रह्मवेद, ८ देवदर्श, ९ और चारणवैद्य। इन अथर्ववेद की नौ शाखाओं में अब शौनक पैप्लाद नाम की दो ही शाखा प्राप्त होती है।

4.2.1 पैप्लाद शाखा

पिप्पलाद मुनि एक महान् अध्यात्म वेत्ता ऐसा प्रतीत होती है। स्वाध्यात्म विषयों का संशय निवारण के लिए सुकेशा, भारद्वाज आदि छः मुनि उसके समीप में आने का उल्लेख प्राप्त होता है। उनके द्वारा दिए उत्तरों भी प्रश्नोपनिषद् में सुरक्षित है। प्राचीन काल में इस संहिता की विशेष ख्याति थी। इसके दो ग्रन्थ थे। प्रपञ्चहृदय का कथन है की – पैप्लाद शाखा की मन्त्र संहिता बीस काण्डों में विभक्त है, तथा उसके ब्राह्मण में आठ अध्याय है। पैप्लाद संहिता की एक प्रतिलिपि शारदा लिपि में कश्मीर में उपलब्ध होती है। वह पाण्डुलिपि कश्मीर राजा के द्वारा जर्मन विद्वान राथ महोदय के लिए उपहार रूप में भेजी थी। १९०१ ईस्वी में उसके लेख अमेरिका से प्रकाशित हुआ था। महाभाष्य के अनुसार से– 'शन्नो देवीरभीष्टय आपो भवन्तु पीतये। शंयोरभिस्रवन्तु नः' अथर्ववेद का यह प्रथम मन्त्र है, किन्तु अभी प्रचलित शौनक संहिता के छठे सूक्त का यह प्रथम मन्त्र है। गुणविष्णु से ज्ञात होता है कि यह मन्त्र पैप्लाद शाखा का आदि मन्त्र था (शन्नो देवी ..... अथर्ववेद का यह आदि मन्त्र पिप्पलाद दृष्ट है – छान्दोग्यमन्त्र भाष्य में)। इससे ही ज्ञात होता है कि महाभाष्य काल में इस संहिता की विशिष्ट ख्याति थी।

4.2.2 मौद शाखा

महाभाष्य में (४/१/८६), शाबरभाष्य में (१/१/३०) इस मौदमुनि का उल्लेख प्राप्त होता है। मौद शाखा विशेषज्ञ अथवा जलद शाखा विशेषज्ञ पुरोहित जिस राष्ट्र में रहता है, उस राष्ट्र का विनाश होता है –

'पुरोधा जलदो यस्य मौदो वा स्यात् कदाचन।
अब्दाद् दशभ्यो मामेभ्यो राष्ट्रभ्रष्टं भविष्यति॥'

इससे यह शाखा कम प्रचलित थी ऐसा बोध होता है।

4.2.3 शौनक शाखा

आजकल प्रचलित अथर्व संहिता और गोपथ ब्राह्मण इसी ही शाखा के है। तौद, जालज, ब्रह्मवेद, देवदर्श, आदि संहिता तो केवल नाम मात्र से ही प्रसिद्ध है। अथर्व की अन्तिम शाखा चारणवैद्य के विषय में कौशिक सूत्र में व्याख्या की है। वायुपुराण से ज्ञात होता है कि इस शाखा के छः हजार छब्बिस (६०२६) मन्त्र थे, किन्तु अभी तक यह संहिता प्राप्त नहीं है।

पाठगत प्रश्न 4.1

1. अथर्ववेद आमुष्मिक के साथ अन्य क्या फल देता है?
2. महर्षि पतञ्जलि के मत में अथर्ववेद की कितनी शाखा है?
3. किसी भी यज्ञ के सम्पूर्ण रूप से पूर्ण करने के लिए कितने ऋत्विज होते हैं?
4. ब्रह्मा- नाम के ऋत्विज का प्रधानकार्य क्या है?
5. अथर्ववेद के अनेक अभिधानों में मुख्य कौन से है?
6. आजकल अथर्ववेद की कितनी शाखा प्राप्त होती हैं?
7. ब्रह्मवेद कौन है और कैसे कहलाता है?
8. अथर्व शब्द का अर्थ क्या है?
9. पथ्य के तीन शिष्य कौन थे?
10. शौनक के शिष्य कौन थे?

4.2.4 अथर्ववेद की विषय विवेचना

अथर्ववेद की विषय विवेचना अन्य वेदों की अपेक्षा नितान्त गूढ़ और विलक्षण है। इस वेद में वर्णित विषयों का विभाजन तीन प्रकार से कर सकते हैं - १. आध्यात्मिक, २. आधिभौतिक, ३. और आधिदैविक। अध्यात्म प्रकरण में मुख्य रूप से ब्रह्मजीव विषय पर और परमात्मा विषय पर वर्णन है। उसके बाद आश्रमों का भी पर्याप्त निर्देश प्राप्त होता है। आधिभूत प्रकरण में राजा, राज्य, राज्यशासन और सङ्ग्राम आदि का वर्णन है। आधिदैवत प्रकरण में अनेक देवताओं का, अनेक यज्ञों का, और काल आदि के विषय में सङ्कलन है। इसी प्रकार स्थूल विवेचना के बाद विस्तृत विवरण है। जैसे -

4.2.5 भैषज्य सूक्त

इस प्रकरण में रोगों के चिकित्सा सम्बन्धी मन्त्रों का तथा विधि विशेषणों का अन्तर्भाव होता है। रोगों की उत्पत्ति अनेक दु:ख राक्षस, भूत, पिशाच आदि के उपद्रव से ही होती है। अत इस प्रकरण के अनेक मन्त्रों में ऊपर वर्णित उपद्रवों के शांत करने का उपाय है। इन मन्त्रों की सहायता से किये हुए अभिचारों का विशेष वर्णन कौशिक सूत्र में है। अनेक रोगों के लक्षण तथा उस रोग से उत्पन्न शारीरिक विकार का आर्युवेदिक दृष्टि से विशाल वर्णन है। अथर्ववेद में -'तक्मा:' यह बुखार का ही नाम है। इस सन्दर्भ में अथर्ववेद का कथन है कि बुखार पीडित लोग पित्त से परेशान रहते है। अत: कुछ मन्त्रों में बुखार निमित्त प्रार्थना है। जैसे - हे ज्वर ! तुम हट जाओ, अथवा रोग को छोड़कर मूजवत अग्नि के समान महावृष आदि दूरस्थ प्रान्त में जाओ (५/२५/७/८)। बलास(क्षय आदि) रोग (६/१४), गण्डमाला (६/८३), यक्ष्मा (६/८५) आदि रोगों को दूर करने

के लिए वरुण नाम की औषधि सेवन का उपयोग प्राप्त होते है। खांसी (६/१०५) तथा दन्तपीडा आदि रोगों का तथा उनकी औषधी का वर्णन अत्यधिक सुंदर रीति से अथर्ववेद में वर्णित है। सांप के विष नाश के लिए अनेक उपाय वर्णित है। एक सूक्त में (५/१३) असित-तैमात-आलिङ्गी-विलिङ्गी-उरु-गूल आदि सांपो का नाम उल्लेखित है। अनेक प्रकार की औषधियों का तथा अनेक पेड़ों की प्रशंसा में भी अनेक मन्त्र यहाँ है।

4.2.6 आयुष्य सूक्त

दीर्घ आयु के लिए अनेक प्रकार के प्रार्थना परक मन्त्र इस भाग में दिए है। इन मन्त्रों का विशेष प्रयोग पारिवारिक उत्सव के समय पर होता था। बालकों के मुण्डन पर, किशोर को गोदान में (प्रथम क्षौर कर्म में) तथा उपनयन संस्कार में इस मन्त्र का उपयोग होता है। इस सूक्त में सौ शरद ऋतु तक तथा सौ हेमन्त ऋतु तक जीवन के लिए अनेक प्रकार की मृत्यु से रक्षा के लिए अनेक रोगों से रक्षा के लिए प्रार्थना प्राप्त होती है। अथर्ववेद में जीवन काल को बढ़ाने के लिए रक्षासूत्र के धारण का विशेष विधान प्राप्त होता है। इस रक्षासूत्र धारण से प्राणि पूर्ण स्वास्थ्य को प्राप्त होता है ऐसा जाना जाता है। सत्रहवें काण्ड का एकमात्र सूक्त यहाँ इस सूक्त में आता है।

4.2.7 पौष्टिक सूक्त

यहाँ घर निर्माण के लिए, क्षेत्र जोतने के लिए, बीज बोने के लिए, अन्न उत्पादन के लिए, पुष्टि के लिए, व्यापार के कारण विदेश जाने के लिए और अनेक प्रकार के आशीर्वाद के लिए प्रार्थना की है। इस विषय में एक सुंदर सूक्त का (अथर्व. ४/१५) वर्णन। इस सूक्त में वर्षा का अत्यधिक रमणीय, और साहित्यिक दृष्टि में सुंदर वर्णन है।

4.2.8 प्रायश्चित्त सूक्त

इन सूक्तों में प्रायश्चित्त का विधान उपलब्ध होता है। चरित्र की त्रुटी में धार्मिक विरोध का तथा अन्य विधिहीन आचरणों का विधान है - जैसे ज्ञात अथवा अज्ञात अपराधो के हेतु से, धर्मशास्त्र के द्वारा निषेध का, विवाह का कारण, ऋण लेने वाले के प्रति द्वेष भावना हेतु से, बड़े भाई के बिना विवाह हेतु से जो अपराध होते हैं, उनको दूर करने के लिए यहाँ प्रायश्चित्त का विधान है। इस सम्बन्ध में इस प्रकार के मन्त्र है, जो शारीरिक दुर्बलता से, मानसिक त्रुटि से, दु:स्वप्न, अपशकुन आदि का निराकरण करें, और उनसे हटा देते है। वर्तमान युग के ही समान उस युग में भी अशुभ स्वप्न में मनुष्यों का विश्वास था। उसको दूर करने के लिए अनेक प्रकार के उपायों का वर्णन मन्त्रों में है।

4.2.9 स्त्रीकर्म विषय सूक्त

विवाह विषय पर और प्रेम विषय पर बहुत से सूक्त इस वेद में है। इन सूक्तों का उस समय के समाज के स्वरूप को जानने में विशेषरूप से सहायक होते है। इन सूक्तों में पुत्र उत्पन्न के लिए

और उस उत्पन्न हुए शिशु की रक्षा के लिए सुंदर प्रार्थना भी प्राप्त होती है। इस प्रसङ्ग में चौदहवां काण्ड विशेषरूप से सहायक है। इसी ही क्रम से अथर्ववेद के मारण, मोहन, उच्चाटन, वशीकरण आदि क्रियाओं के बहुत प्रयोगों का वर्णन है। कौशिक सूक्त में नारी प्रेम सम्पादन के लिए अनेक प्रकार की आभिचारिक क्रिया का वर्णन है।

4.2.10 राजकर्म विषय सूक्त

राजा से सम्बद्ध बहुत सूक्त अथर्ववेद में प्राप्त होते है। इन सूक्तों के अध्ययन से उस समय की राजनैतिक स्थिति का विशाल वर्णन प्राप्त होता है। शत्रु के विनाश के लिए प्रार्थना के साथ सङ्ग्राम का तथा उसके उपयोगी साधनों का वर्णन है जैसे- रथ, दुन्दुभि, शङ्ख आदि का विशेष विवरण और संग्राम की दृष्टि से भी अथर्ववेद के महत्त्व को सूचित करते हैं। अथर्ववेद का 'क्षत्रवेद' इस नामकरण का यह ही कारण है। उस युग में प्रजा ही राजा का चुनाव करती थी। यहाँ मनुष्यों के साथ अश्विन, मित्रावरुण आदि द्वारा राजा के चुनने का वर्णन है। अन्ध सूक्त में (३/३) ज्ञात होता है की देश से निकाला हुआ राजा दुबारा राज्य में सम्मान पूर्वक प्रतिष्ठित हुआ। सङ्ग्राम भूमि पर जाने के लिए वीरो को उत्साहित करने के लिए दुन्दुभि का वर्णन अत्यधिक सरल और वीररस पूर्ण है। पांचवे काण्ड के दसवें सूक्त में कवि की दृष्टि से और मनोहर भावों के प्रदर्शन से अत्यधिक रोचक, सरल तथा अभिव्यञ्जनात्मक है। दुन्दुभि की गर्जना को सुनकर शत्रु युवती का भयानक शस्त्र सङ्घर्ष के मध्य में अपने पुत्र को लेकर पलायन की प्रार्थना भी बहुत ही कारुणिक है। (अथर्व. ५/२०/५)।

पाठगत प्रश्न 4.2

1. अथर्ववेद में वर्णित विषयों के कौन कौन से भेद हैं?
2. रोगों की उत्पत्ति कैसे होती है?
3. अथर्ववेद में तक्मा: यह किसका नाम है?
4. जीवनकाल के बढ़ाने के लिए किसका विशेष विधान है?
5. विवाह विषयक और प्रेम विषयक सूक्त कहाँ प्राप्त होते हैं?
6. क्षत्रवेद इस नाम से अथर्ववेद कैसे प्रसिद्ध है?

पाठ का सार

वेदों में अथर्ववेद ने वेदान्त के समान स्थान का अधिकार किया है। ऋग्वेद आदि तीनों वेद थोड़ा फल देने वाले हैं। विशेष रूप से अथर्ववेद में लौकिक विषयों की अधिक चर्चा प्राप्त होती है। अथर्ववेद के ब्रह्मवेद-अङ्गिरावेद-अथर्वाङ्गिरसवेद आदि नाम भी प्रसिद्ध है। 'अथर्व'-शब्द की

व्याख्या तथा उसका निर्वचन निरुक्त में (११/२/१७) तथा गोपथ ब्राह्मण में (१/४) प्राप्त होती है। इस अथर्ववेद की अनेक शाखा प्राप्त होती है। उनमे लगभग सभी जगह लौकिक के ही विषयों पर वर्णन प्राप्त होते हैं।

इस वेद में वर्णित विषयों का विभाजन तीन प्रकार कर सकते है –१ आध्यात्मिक, २ आधिभौतिक, ३ और आधिदैविक। और वहाँ विविध सूक्तों में लौकिक विषयों पर राजकर्म आदि का विधान है। जैसे – भैषज्य सूक्तों में विविध रोगों का वर्णन तथा उनके नाश के लिए विविध उपायों का वर्णन है। आयुष्य सूक्तों में दीर्घायु के लिए प्रार्थना की है। यहाँ विहित सूक्तों का विशेष प्रयोग पारिवारिक महोत्सवों के अवसर पर होता है। और यहाँ सौ शरद ऋतु तक तथा सौ हेमन्त ऋतु पर्यन्त जीवन के लिये प्रार्थना है। पौष्टिक सूक्तों में घर निर्माण के लिए, क्षेत्र को जोतने के लिए, बीज बोने के लिए, अन्न उत्पादन के लिये और अन्य गृहस्थ कर्मो के लिए प्रार्थना है। यहाँ विविध अपराधो के प्रायश्चित्त के लिए प्रार्थना है। और भी यहाँ प्रेम विषय और विवाह विषय पर विविध सूक्त उपलब्ध होते है। अनेक राजकर्म विषय सूक्त भी यहाँ प्राप्त होते है। जैसे – शत्रु के विनाश के लिए प्रार्थना के साथ सङ्ग्राम का तथा उसके उपयोगी साधनों का विशेष विविरण प्राप्त होता है। इस कारण से अथर्ववेद का अन्य नाम 'क्षत्रवेद' भी है।

पाठांत प्रश्न

1. पैप्लाद शाखा विषय पर लिखिए।
2. भैषज्य सूक्त विषय पर विस्तार से लिखिए।
3. प्रायश्चित्त विषय पर अथर्ववेद में जो कहा है उसे विस्तार से लिखिए।
4. स्त्रीकर्म विषय पर अथर्ववेद में जो कहा है उसे विस्तार से लिखिए।
5. राजकर्म विषय पर अथर्ववेद में जो कहा है उसे लिखिए।

पाठगत प्रश्नों के उत्तर

4.1

1. इहलोक का फल भी देते है।
2. नौ।
3. चार।
4. ब्रह्मा नाम के ऋत्विज का प्रधान कार्य है सभी कार्यो में अच्छी प्रकार से निरीक्षण करना तथा होने वाली त्रुटी से हटाना।

टिप्पणियाँ

5. अथर्ववेद, ब्रह्मवेद, अङ्गिरोवेद, अथर्वाङ्गिरसवेद, आदि नाम मुख्य है।
6. दो शौनक शाखा और पैप्लाद शाखा।
7. ब्रह्म कर्म का प्रतिपादन करने से अथर्ववेद 'ब्रह्मवेद' कहलाता है।
8. अकुटिलता वृत्ति से और अहिंसा वृत्ति से मन की स्थिरता प्राप्त करने वाला व्यक्ति।
9. पथ्य के तीन शिष्य थे – जाजलि, कुमुद, और शौनक।
10. शौनक के दो शिष्य है, बभ्र और सैन्धवायन।

4.2

1. १ आध्यात्मिक, २ आधिभौतिक, ३ और आधिदैविक।
2. रोगों की उत्पत्ति अनेक दु:ख राक्षस भूत पिशाच आदि के उपद्रव से ही होता है।
3. बुखार का नाम।
4. रक्षासूत्र धारण के।
5. स्त्रीकर्म विषय सूक्तों में।
6. शत्रुओं के विनाश के लिए प्रार्थना के साथ सङ्ग्राम का तथा उसके उपयोगी साधनों के वर्णन से अथर्ववेद 'क्षत्रवेद' इस नाम से प्रसिद्ध है।

॥ चौथा पाठ समाप्त॥

5

ब्राह्मण साहित्य

पूर्व पाठों में आपने वेदों की संहिता विषय में अधिकता से समझ लिया है। इस पाठ में संहिता विषय में और ब्राह्मण विषय में सामान्य रूप से आलोचना करेगें। संहिता और ब्राह्मण में महान् भेद है। जैसे – अधिकांश संख्या में संहिता छन्दोबद्ध है। उनमे कुछ अंश ही गद्यात्मक है, किन्तु ब्राह्मण ग्रन्थ सभी प्रकार से गद्यात्मक ही है। इनके विवेचना विषयों में भी भेद है। इनके संहिता और ब्राह्मण के विषय में यहाँ और अधिक जानोंगे। और ब्राह्मणों में प्रतिपादित विषय पर भी सामान्य ज्ञान को प्राप्त करेंगे।

उद्देश्य

इस पाठ को पढ़कर आप सक्षम होंगे :

- ब्राह्मण ग्रन्थों के महत्त्वपूर्ण विषयों को जान पाने में;
- मुख्य आख्यान और उनमें प्रतिपादित विषयों को समझ पाने में;
- संहिता ब्राह्मण की भिन्नता बता पाने में;
- देव अमर कैसे हुए इस विषय को समझ पाने में; और
- प्रधान ब्राह्मण ग्रन्थों के विषय में विस्तार से जान पाने में।

5.1 सामान्य परिचय

ग्रन्थवाची ब्राह्मण शब्द विशेष रूप से नपुंसकलिङ्ग में ही प्रयुक्त होता है। मेदिनीकोश के अनुसार से वेदभाग का सूचक ब्राह्मण शब्द का प्रयोग तीनो लिङ्गों में होता है। जैसे – ब्राह्मण शब्द ब्रह्मसङ्घात में और वेदभाग में नपुंसक लिङ्ग में होता है। ग्रन्थ के अर्थ में ब्राह्मण शब्द का प्रयोग

टिप्पणियाँ

पाणिनीय व्याकरण में (सू.३/४/३६), निरुक्त में (४/२७), ब्राह्मण में (शतप.४/६/९/२०), और ऐतरेय ब्राह्मण में (६/२५/८/२) केवल प्राप्त नहीं होता अपितु ब्राह्मण विषय में तैत्तिरीय संहिता में कहा है - एतद् ब्राह्मणान्येव पञ्च हवींषि (तै. सं. ३/७/१/१)। इस अर्थ के विषय में कुछ भी भिन्न मत नहीं है। ब्राह्मण यह ब्रह्म के व्याख्या परक ग्रन्थों के नाम है। ब्रह्म शब्द स्वयं अनेक अर्थो में प्रयुक्त होता है, जैसे मन्त्र के अर्थ में - ब्रह्म वै मन्त्रः...(शत. ब्रा.७/१/१/५)। इसी प्रकार से वैदिक मन्त्रों के व्याख्यान का भाग होने से इसका ब्राह्मण नामकरण हुआ। ब्राह्मण शब्द का अन्य अर्थ भी होता है - यज्ञ। यज्ञीय कर्मकाण्ड की व्याख्या विवरण के सम्पादन ब्राह्मण ग्रन्थों का मुख्य विषय है। ब्राह्मणों में मन्त्र-कर्म-विनियोग की व्याख्या है। ब्राह्मण के अन्तरङ्ग परीक्षा से ज्ञात होता है कि ये ग्रन्थ यज्ञों के वैज्ञानिक, आधिभौतिक, तथा अध्यात्मिक विषयों का प्रतिपादन करता है। और ब्राह्मण शब्द के विषय में जैसे कहा है -

ब्राह्मणं नाम कर्मणस्तन्मन्त्राणां च व्याख्यानग्रन्थः।
(भट्टभास्करः- वै. सं. १/५/१ भाष्यम्)

नैरुक्तं यस्य मन्त्रस्य विनियोगः प्रयोजनम्।
प्रतिष्ठानं विधिश्चौव ब्राह्मणं तदिहोच्यते।। (वाचस्पतिमिश्रः)

इस कथन से सिद्ध होता है की वेद दो प्रकार का है - मन्त्ररूप और ब्राह्मणरूप। और यह ब्राह्मणभाग भी वेद ही है। वेद से शेष ये ब्राह्मण ग्रन्थ यज्ञानुष्ठान का विस्तृत वर्णन करते हैं। कुछ कथा भी ब्राह्मण ग्रन्थों में प्राप्त होती है। प्रत्येक वेद शाखा के अनुसार से ब्राह्मण ग्रन्थ और आरण्यक ग्रन्थ भिन्न होते हैं।

यह ब्राह्मण साहित्य हमेशा ही विशाल और व्यापक है। यह साहित्य गद्यात्मक है। यज्ञ का विधान कब करना चाहिए। और उसके लिए कौन से साधनों की आवश्यकता है। और कौन उन यज्ञों के अधिकारी है। इन विषयों की विवेचना ब्राह्मण साहित्य में की है। वर्त्तमान में प्राप्त हुए प्रमुख ब्राह्मण वेदों का अनुसरण करने की सङ्ख्या इस प्रकार से है - १. ऐतरेय ब्राह्मण, २. शाङ्खायन ब्राह्मण (ऋग्वेदीय), ३. शतपथ ब्राह्मण (शुक्लयजुर्वेदीय), ४. तैत्तिरीय ब्राह्मण (कृष्णयजुर्वेदीय), ५. ताण्ड्य, ६. षड्विंश, ७. सामविधान, ८. आर्षेय, ९. दैवत, १०. उपनिषद्-ब्राह्मण, ११. संहितोपनिषद् ब्राह्मण, १२. वंश ब्राह्मण, १३. जैमिनीय ब्राह्मण (सामवेदीय), १४ और गोपथ ब्राह्मण (अथर्ववेदीय) है।

ब्राह्मण ग्रन्थों में शतपथ ब्राह्मण सबसे महत्त्व का माना जाता है। और वह विशालकाय है। वहीं यागों के अनुष्ठानों का प्रतिपादन सबसे उत्तम रीति से किया है। वहाँ याग विषय पर अडिग सहित विवेचना भी प्रस्तुत की है।

निरुक्त आदि ग्रन्थ इस प्रकार जाना जाता है ऐसा कहकर ब्राह्मण ग्रन्थों का ही प्रमाण रूप से निर्देश किया है। इस शब्द की व्याख्या में दुर्गाचार्य ने लिखा है - 'इस प्रकार ब्राह्मण में भी विचार किया गया है' (निरु. टी. ३/११, २/१७)। पाणिनि ने अष्टाध्यायी सूत्र में अनुब्राह्मण शब्द का प्रयोग प्राप्त होता है - अनुब्राह्मणादिनिः (पा. सू. ४/२/६२)। ब्राह्मण के समान ग्रन्थ अनुब्राह्मण,

उसको पढने वाला अनुब्राह्मण। इस शब्द का प्रयोग भट्टभास्कर ने तैत्तिरीय संहिता की भाष्यभूमिका में किया है। इससे प्रतीत होता है कि ब्राह्मण का ही अन्तरभाग अनुब्राह्मण पद से प्रयोग किया।

पूर्व ही कहा है कि ब्राह्मण ग्रन्थों का विस्तार अत्यधिक विशाल और व्यापक था। आश्वलायन गृह्यसूत्र में (३अ. ३ख.) ऋषि तर्पण के साथ आचार्य तर्पण का भी उल्लेख प्राप्त होता है। आश्वलायन के मतानुसार से मन्त्र द्रष्टा ऋषि होते हैं, और ब्राह्मण द्रष्टा आचार्य। इस प्रकार आचार्यों के यहाँ तीन गण उपलब्ध होते है - १ माण्डुकेय गण, २ शाङ्खायन गण, ३ और आश्वलायन गण। इनके आचार्यों के क्रमशः नाम है - कहोल, कौषीतक, महाकौषीतक, भरद्वाज, पैङ्ग्य, महापैङ्ग्य, सुयज्ञ, शाङ्खायन, ऐतरेय, वाष्कल, शाकल, गार्ग्य, सुजातवक्र, औदवाहि, सौजामि, शौनक तथा आश्वलायन। पैङ्ग्य महापैङ्ग्य इन नामों से प्रतीत होता है की महाभारत के समान भारत भी एक भिन्न ग्रन्थ था। एक छोटा तो दूसरा विशाल था। और भी शाङ्खायन ब्राह्मण ही कौषितकि ब्राह्मण नाम से विख्यात है, किन्तु इसका सूची में पृथक् पृथक् नाम से ज्ञात होता है कि ये दो आचार्य हैं। यहाँ निश्चयपूर्वक कुछ भी नहीं कह सकते हैं, कि इन आचार्यों के द्वारा ब्राह्मण ग्रन्थों का निर्माण हुआ हो। किन्तु ऐतरेय तथा शाङ्खायन निश्चय से ही ब्राह्मण द्रष्टा ऋषि है। इनके ब्राह्मण ग्रन्थ आज भी उपलब्ध है।

पाठगत प्रश्न 5.1

1. वेदभाग का सूचक ब्राह्मण शब्द किस लिङ्ग में होता है?
2. ब्राह्मण ग्रन्थ विषय पर भट्टभास्कर का क्या मत है?
3. वेद कितने प्रकार का है?
4. पाणिनि के किस सूत्र में ब्राह्मण शब्द का प्रयोग देखा जाता है?
5. आचार्यों के तीन गण कौन-कौन से है?
6. ब्राह्मण द्रष्टा दो आचार्यों के नाम लिखिए।
7. शाङ्खायन ब्राह्मण का अन्य क्या नाम है?

5.2 संहिता ब्राह्मण के विषय की भिन्नता

संहिता का और ब्राह्मण के स्वरूप विषय में बहुत अंतर दिखाई देता है। बहुत संख्या के मन्त्र छन्दोबद्ध है, उनमे कुछ अंश ही गद्यात्मक है। किन्तु सभी ब्राह्मण ग्रन्थ गद्यात्मक ही होते हैं। इनके प्रतिपाद्य विषयों में भी अन्तर है। जैसे - ऋक् मंत्रो में देव-स्तुति की प्रधानता है। अथर्व मन्त्रों में इहलोक परलोक का फल देने के विषयों की विवेचना की है तथा घर निर्माण के लिये, हल जोतने के लिए, बीज बोने के लिए उपयोगी विषयों का तथा गृहस्थ जीवन के भी विविध

विषयों का वर्णन है। राजकीय विषय में भी – शत्रुओं के वध के लिए, सैन्य सञ्चालन के लिए तथा उसके उपयोगी साधनों का विस्तार सहित विवरण है। यजुर्वेद संहिता का विवेच्य विषय पूर्व वर्णित विषयों से नितान्त भिन्न ही है। ब्राह्मणों का मुख्य विषय है विधि- किसका विधान कब होना चाहिए। उसको किस प्रकार करना चाहिए। उसका क्या आकर और साधनों की आवश्यकता होती है। और कौन उन यज्ञों का अधिकारी होता है। इस प्रकार याज्ञिक विधानों के प्रतिपादन के लिए ही ब्राह्मण साहित्य का उद्भव हुआ। याज्ञिक विषयों में कुछ विरोध भी प्रतीत होता है, वहाँ शुद्ध करना भी ब्राह्मण का उद्देश्य है। शबर स्वामी के मत अनुसार से ब्राह्मण विधि की संख्या दस है। उसका तात्पर्य यह है कि संहिता स्तुति प्रधान है, ब्राह्मण ग्रन्थ में उसका विधान ही प्रधान है।

फल स्वरूप विविध विधि ही ब्राह्मण ग्रन्थों का मुख्य विषय है। जहाँ उपलब्ध अवान्तर विषय तो उन विधियों के ही पोषक और निर्वाहक है। इन विधानों के विषयों पर मीमांसकों द्वारा किया अभिधान अर्थवाद होता है। अर्थवाद में निन्दा है तथा याग उपयोगी द्रव्यों की प्रशंसा है। वहाँ विधि और विधान का मिलान होता है। निरुक्त जनित अर्थ से भी ब्राह्मण वाक्यों का समर्थन होता है। ब्राह्मण ग्रन्थों में विधि ही उसका केन्द्र बिन्दु है, जिसके चारो और निरुक्त, स्तुति, आख्यान, हेतु, वचन आदि विविध विषय अपने अपने आवर्त्तन को पूर्ण करते है।

जैमिनि महोदय ने भी पूर्वपक्ष रूप से कहा है कि वेद में केवल विधि वाक्यों का ही अस्तित्व नहीं है, अपितु उसके विभिन्न विषयों के प्रतिपादक वाक्यों की भी सत्ता है। फल स्वरूप ये वाक्य अनर्थक ही हैं। इसी कारण उन वाक्यों की विधियों का प्रतिपादन नहीं करते हैं, जिससे उन वाक्यों की भी व्यर्थता प्रकट होती है। इसलिए कहते हैं – वेद के क्रियार्थ होने से अनर्थक मत का अर्थ हो सकता है। इस शङ्का के होने पर सिद्धान्त पक्ष का कथन है की इन वाक्यों की भी आवश्यकता है। इन वाक्यों का यद्यपि अपने स्वयं से कोई उपयोगिता नहीं है फिर भी ये विधि प्रशंसा में प्रयुक्त है। अत: इस विधि प्रतिपादित के अर्थ का ही अवान्तर वाक्य है। अत: परम्परा से इनका उपयोग विधि में अवश्य ही होता है – विधि से एक वाक्य होने से स्तुति अर्थ से विधि की हो (जैमि. सू १/२/२७)। यह विश्लेषण ब्राह्मण-विषयों को ही लक्ष्य करता है।

पाठगत प्रश्न 5.2

1. ऋक् मन्त्रों में किसकी प्रधानता है?
2. ब्राह्मण विधियों की संख्या दस प्रकार की है ये किसका मत है?
3. संहिता ब्राह्मण का प्रधान भेद क्या है?

5.3 विषय विवेचना

विधि शब्द का अर्थ होता है – यज्ञ, और उसके अङ्गों के तथा उपाङ्गों के अनुष्ठान का उपदेश है। ताण्ड्य ब्राह्मण में इसके अनेक भेद प्राप्त होते हैं। उदाहरण के लिए वहिष्पवमान-स्तोत्र में

अध्वर्यु-उद्गाता आदि पांच ऋत्विजों के प्रसर्पण का विधान है। और वहाँ यज्ञादियों में दो नियम पालन की नितान्त आवश्यकता होती है। वहाँ प्रसर्पण करते हुए ऋत्विजों के धीरे धीरे चलने का विधान है। वहाँ चुप होने का भी विधान है। पांचो ऋत्विजो में अध्वर्यु, प्रस्तोता, उद्गाता, प्रतिहर्ता, ब्रह्मा, आदि के जाने की व्यवस्था है। इसी ही क्रम से पङ्क्ति बद्ध होकर उनके द्वारा गमन करना चाहिए। वहाँ पङ्क्ति भङ्ग होने पर पाप होता है, अनर्थ की भी सम्भावना बढती है। इस प्रदक्षिण काल में वे अपने हाथ में कुछ धारण करके ही चलते हैं।

शतपथ ब्राह्मण तो विधि विधानों का एक विशाल समूह उपस्थित करता है। प्रथम काण्ड में दर्शपौर्णमास आदि मुख्य के और अवान्तर के अनुष्ठानों का वर्णन याग क्रम से है। दूसरे काण्ड में आधान, पुनराधान, अग्निहोत्र, उपस्थापन, आग्रायण, दाक्षायण, आदि यज्ञों का वर्णन विस्तार से पुङ्ख और अनुपुङ्ख क्रम से है। विधि के साथ हेतु का भी युक्ति सहित वर्णन किया है। शतपथ ब्राह्मण के प्रारम्भ में ही हेतु के साथ ही विधि का निर्देश उपलब्ध होता है। पौर्णमास याग में दीक्षित मनुष्य पूर्व दिशा में आहवनीय, गार्हपत्य, अग्नि के मध्य में स्थित जल का स्पर्श करते हैं। इस जल स्पर्श का क्या कारण है ऐसा प्रश्न होने पर भी कहते हैं जल पवित्र होता है। वहाँ मिथ्यावादी मनुष्य यज्ञ के लिए उपयुक्त नहीं होता है। इस कारण से जल स्पर्श से यह पाप को छोड़कर पवित्र होता है। और उस जल स्पर्श से मनुष्य पवित्र होकर दीक्षित होता है। इस कारण यहां पर जल स्पर्श करते है। इसलिए कहते ही है - **अमेध्यो वै पुरुषो यदनृतं वदति तेन पूतिरन्तरतः। मेध्या वा आपः। मेध्यो भूत्वा व्रतमुपायानीति। पवित्रं वा आपः। पवित्रपूतो व्रतम् उपयानीति तस्माद्वा अप उपस्पृशति (शत. ब्रा. १/१/१/१:) इति।**

पाठगत प्रश्न 5.3

1. विधि शब्द का क्या अर्थ है?
2. कुछ यज्ञों का नाम लिखिए।
3. यज्ञ के लिए उपयुक्त मनुष्य कौन नहीं है?

5.4 विनियोग

ब्राह्मण ग्रन्थों में मन्त्रों के विनियोग का विस्तृत वर्णन है। किस मन्त्र का प्रयोग किस उद्देश्य से होता है, इसकी युक्ति सहित व्यवस्था ब्राह्मण ग्रन्थ में सब जगह उपलब्ध होती है। ब्राह्मण ग्रन्थ मन्त्रों की व्याख्या से ही उनके विनियोग का युक्त मत को सिद्ध करते है। अंत में मन्त्रों के तात्पर्य का जो बोध होता है वह तो ब्राह्मणों के अन्तरङ्ग आध्यात्मिक व्याख्या से ही जाना जाता है। ताण्ड्य ब्राह्मण दो तीन दृष्टान्त ही पर्याप्त होते है।

स नः पवस्व शंगवे (ऋ. १/११/३) इस ऋचा के गायन से पशुओं की रोग निवृत्ति होती है। इस विनियोग का विशिष्ट विवेचन की आवश्यकता नहीं है, जिससे यह बात तो मन्त्र पद से ही

टिप्पणियाँ

सिद्ध होती है (६/१/६-९)। किन्तु - **आ नो मित्रावरुणा** (ऋ. ३/६२/१६) इस मन्त्र के गायन का प्रयोग दीर्घरोग निवृत्ति के लिए ही है। यह कथन भी कुछ आश्चर्यजनक प्रतीत होता है। इस विषय में ब्राह्मण का कथन है कि मित्रावरुण का सम्बन्ध प्राण के और अपान के साथ है। दिन का देवता मित्र है, उससे यह प्राणों का प्रतिनिधि है। इसी ही क्रम से रात का देवता वरुण है, इसलिए यह अपान का प्रतीक है। फल स्वरूप दीर्घरोग निवारण के लिए इस मन्त्र का पूर्व में कहा विनियोग नितान्त युक्ति सहित है। बहुत जगह विनियोग के प्रसङ्ग में कल्पना का ही विशेष रूप प्रभाव से परिलक्षित होता है, किन्तु ब्राह्मण की व्याख्या रीति से, और अनुगमन से इस प्रकार कल्पना आश्रितों में कुछ स्थलों में भी युक्तिमत का प्रतिपादन करता है। वहाँ उदाहरण रूप से दविद्युत्या रुचा (ऋ. ९/६४-२८) इस मन्त्र को देखना चाहिए।

पाठगत प्रश्न 5.4

1. मित्रावरुण का सम्बन्ध किसके साथ है?
2. दिन का देवता कौन है?
2. रात का देवता कौन है?

5.5 हेतु

हेतुपद से उनके कारणों का निर्देश होता है जिनके द्वारा कर्मकाण्ड विधि विशेष रूप से सम्पन्न होता है। ब्राह्मण ग्रन्थों में यज्ञीय विधि, विधान निमित्त का उचित कारण का भी निर्देश विस्तार से प्राप्त होता है। अग्निष्टोम याग में उद्गाता मण्डप में औदुम्बर की शाखा का पाठ करता है। इस विधान के कारण का निर्देश करते हुए ताण्ड्य ब्राह्मण का (६/४/१) यह कथन है की प्रजापति ने ऊर्जा का (बल का) विभाजन किया है। वहीं औदुम्बर वृक्ष की उत्पत्ति हुई। इस प्रकार से औदुम्बर वृक्ष का देवता प्रजापति हुए। उद्गाता का भी सम्बन्ध प्रजापति के साथ ही है। इसलिए उद्गाता उदुम्बर शाखा का पाठ करना अपने कार्यों में प्रधान कर्म मानता है। इस अवसर में प्रयुक्त पाठ की भी व्याख्या की है। इस प्रकार से द्रोणकलश में सोमरस को स्रावित करके अग्निष्टोम में स्थापना की व्यवस्था है। इस द्रोणकलश की स्थापना रथ के पृष्ठ भाग में होती है। इस विधान कारण का पूर्ण निर्देश ताण्ड्य ब्राह्मण में (६/५/१) प्राप्त होते है।

प्रजापति से कामना करते हुए 'मैं प्रजाओं की सृष्टि करता हूँ' इस प्रकार, प्रजापति के मन का चिन्तन से ही उसके शिर से आदित्य की सृष्टि हुई। उसने प्रजापति के शिर का छेदन किया। उससे ही द्रोणकलश की सृष्टि हुई। उससे ही द्रोणकलश से सोमरस को पीकर देव अमर हुए। इस रूप से पत्थर पर द्रोणकलश की स्थापना के विषय में भी विधि, विधानों के कारण का निर्देश है। वहिष्पवमान-स्तोत्र में पांच ऋत्विज में आगे जाने वाला अध्वर्यु ने अपने हाथ में दर्भ को मुट्ठी में लेकर जाता है। कैसे, इस कारण का निर्देशन काल में ताण्ड्य ब्राह्मण में (६/७/१६/२०) घोड़े रूप को धरकर यज्ञ से जाने का तथा दर्भ से भरी मुट्ठी को देखकर उसके परावर्तन का आख्यान

हेतु रूप से उपस्थित है। इस प्रकार के हेतु वचन से पाठकों के अनुष्ठानों के कारण का अपने आप परिचय प्राप्त होता है, तथा समाधन रूपी श्रद्धा से उनकी उन्नति भी होती है।

पाठगत प्रश्न 5.5

1. उर्ज शब्द का क्या अर्थ है?
2. औदुम्बर वृक्ष का देवता कौन है?

5.6 अर्थवाद

यज्ञ में निषिद्ध पदार्थो की निन्दा ब्राह्मण ग्रन्थों के अनेक स्थलो में उपलब्ध होता है। यज्ञ में माष विधान का निषेध है। अत इसकी निन्दा इस वाक्य में है - अमेध्या वै माषा (तै. सं. ५/१/८/१)। अनुष्ठान के और हवनीय द्रव्यों के देवताओं की बहुत प्रशंसा से ब्राह्मणों के शरीर में वृद्धि हुई। अग्निष्टोम याग की विशेष प्रशंसा ताण्ड्य ब्राह्मण में (६/३) प्राप्त होती है। सभी कार्यों कल्याण के लिए इस यथार्थ यज्ञ रूप से कल्पना की। यागों का अधिक महत्त्व होने से यह ही सबसे बड़े यज्ञ के नाम से सुशोभित है (ताण्ड्य. ६/३/८-९)। इस प्रकार से वहिष्पवमान- स्तोत्र की स्तुति यहाँ उपलब्ध होती है (ता.६/८/५)। उपयोग विधि का आस्था पूर्वक सिद्धि के लिए ही अर्थवादा होते है। इन अर्थवाद से और प्रशंसा वचन से ब्राह्मण ग्रन्थ आदि से अन्त तक भरे हुए है।

पाठगत प्रश्न 5.6

1. यज्ञ में किसके विधान का निषेद्ध है?
2. अर्थवाद कौन है?

5.7 निरुक्ति

ब्राह्मण ग्रन्थों में स्थान-स्थान पर शब्दों के निर्वचन का भी निर्देश प्राप्त होते है। यह निर्देश इतना मार्मिक और वैज्ञानिक है कि भाषाशास्त्र की दृष्टि से भी यह अत्यधिक महत्त्वपूर्ण प्रतीत होता है। निरूक्त में जिन शब्दों की व्युत्पत्ति प्राप्त होती है उनका मूल इन ब्राह्मण ग्रन्थों में उपलब्ध है। ये निर्वचन नहीं हैं काल्पनिक है। भाषाविज्ञान दृष्टि से भी इसकी वैज्ञानिकता अक्षुण्ण ही है। इसी प्रकार की निरुक्ति स्वयं संहिता भाग में भी उपलब्ध होती है। जिसका आश्रय लेकर ब्राह्मण ग्रन्थ की व्युत्पत्ति निर्मित हुई। जैसे दही और जल शब्द की व्याख्या संहिता ग्रन्थों में इस प्रकार से है - तद्ध्नोदधित्वम् (तै. सं. २/५/३/३/), उदानिर्षुमही: इति तस्मादुदकमुच्यते(अर्थ. ३/१/३/१)। शतपथ ब्राह्मण में और ताण्ड्य ब्राह्मण में उपयोगी निरुक्तियों का भण्डार है। अनेक प्रकार के स्तोत्रों

टिप्पणियाँ

का और साम नामो की सुन्दर निरुक्ति ताण्ड्य ब्राह्मण में उपलब्ध होती है। आज्यस्तोत्र की व्याख्या अजि शब्द से कहते हुए उसके व्याख्यान का भी क्रम प्राप्त होता है, जैसे – 'यदाजिमायन् तदा आज्यानाम् आजत्वम्' (ता. ७/२/१) रथन्तर की निरुक्ति इस प्रकार होती है – 'रथं मर्या क्षेप्लातारीत् इति तद्रथन्तरस्य रथन्तरत्वम्' (ताण्ड्य. ७/६/४)। इसी ही प्रकार से बृहत्साम नाम की निरुक्ति प्राप्त होती है – 'ततो बृहदनु प्राजायत। बृहन्मर्या इदं स ज्योगन्तरभूदिति तद्बृहतो बृहत्त्वम्' (ताण्ड्य. ७/६/५) इति। इसका यह अर्थ है – प्रजापति के मन में यह साम लम्बे समय तक रहा है। इसलिए इस साम का नाम बृहत्साम यह विशिष्ट नामकरण है।

5.8 आख्यान

ब्राह्मण ग्रन्थों में अर्थवाद का विस्तृत वर्णन प्राप्त होता है। इस वर्णन को पढ़कर साधारण पाठक प्रसन्न होते हैं, इनमें कुछ उद्विग्न करने वाले विषय समूह पर यहाँ वहाँ अत्यन्त रोचक, आकर्षक और महत्त्वपूर्ण आख्यान भी प्राप्त होते है। अंधकार में प्रकाश किरण के समान, ये आख्यान पाठक हृदय के उद्विग्न चित्त में शान्ति और शीतलता प्रदान करता है। विधि विधानों के अपने स्वरूप की व्याख्या ही इस आख्यान की माता है। और जब यह आख्यान यज्ञ के संकुचित प्रान्त को छोड़कर साहित्य के सार्वभौम क्षेत्र में रचे गए तब वैदिक कर्मकाण्ड के कर्कश भाव भी उसको रोक नहीं सके। यह आख्यान दो प्रकार का होता है –अल्पकाय आख्यान और दीर्घकाय आख्यान। अल्पकाय आख्यान में उन कथाओं की गणना होती है जिन कथाओं में युक्ति का प्रदर्शन हो। इन आख्यानों में कुछ मुख्य आख्यान है – 'वाचः देवान् परित्यज्य सलिले तदनु वनस्पतौ च प्रवेशः (ताण्ड्य.६/५/१०–१२); यज्ञस्वरूपे देवताभिः अनाक्रमणं तथा दर्भमुष्ट्या तस्य प्रत्यावर्त्तनं (ता. ६/७/१८), अग्निमन्थनकाले घोटकस्य अग्रे स्थापनम् (शत. १/६/४/१५), देवासुराणां मध्ये बहुविध सङ्ग्रामः' (शत. २/१/६/८–१८, ऐत. १/४/२३, ६/२/१)।

इन लघु आख्यानों में कुछ स्थलों पर अत्यधिक गम्भीर तत्व के तथ्यों का भी सङ्केत प्राप्त होता है, जो ब्राह्मण के कर्मकाण्ड वर्णन से बिल्कुल भिन्न होता है, तथा गहरे –गम्भीर अर्थ का भी प्रतिपादन होता है। प्रजापति की उपांशु रूप से प्रार्थना के लिए शतपथ ब्राह्मण में जिस कथानक का उपक्रम प्राप्त होता है वह तो बिल्कुल रहस्यमय है। श्रेष्ठता को प्राप्त करने के लिए वाणी और मन में झगड़ा हुआ। मन का कथन था कि मेरे बिना बताये बात को वाणी प्रकट नहीं कर सकती है। वाणी का कथन था कि जो बात तुम जानते हो उसका विज्ञापन मैं ही करता हूँ। मन द्वारा जाने हुए चिन्तित तथ्यों को वाणी ही प्रकट करती है। इसलिए मैं ही श्रेष्ठ हूँ। दोनों प्रजापति के पास गये। प्रजापति ने अपना निर्णय मन के पक्ष में ही दिया। इस कथानक के अंदर मनोवैज्ञानिक तथ्य का विशाल सङ्केत प्राप्त होता है (शत.१/४/५/८–२)। वाणी के सम्बद्ध अनेक प्रकार की आख्या रुचिकर और शिक्षाप्रद है। गायत्री छन्द सोम देवताओं को लेकर जा रहा था, मार्ग में गन्धर्वों ने उसका अपहरण कर लिया। तब देवो ने वाणी को उसके पास भेजा, वाणी उस सोम को लेकर वापस लौटने लगी। वाणी को अपने पक्ष में लाने के लिए गन्धर्व प्रयत्नशील हुए। वे स्तुति प्रशंसा वचनों से वाणी को संतुष्ट करके अपने पक्ष में करना चाहते थे। दूसरे पक्ष में देव भी गायन और वादन द्वारा उसको संतुष्ट करना चाहते थे। वाणी देवताओं के कार्यों से प्रसन्न होकर उनके पास

गई। इस कथा के प्रतीयमान उपदेश के ऊपर ब्राह्मण का मत है की आज भी स्त्री स्तुति की अपेक्षा से गायन के प्रति अधिक आकर्षित होती है। स्त्रिय स्वभाव से ही इस प्रकार की होती हैं। (शत. ३/२/४/२/६)।

सृष्टि-विषय में भी अनेक आख्यान ब्राह्मण ग्रन्थ में उपलब्ध हैं। परम पुरुषार्थ चारों के उत्पत्ति वर्णन का उल्लेख तो पुरुष सूक्त में ही उपलब्ध होता है। ब्राह्मणों में भी इस प्रसङ्ग का सुंदर वर्णन प्राप्त होता है। ताण्ड्य ब्राह्मण में (६/१) प्रजापति के अङ्ग विशेष का वर्णन तथा उन देवताओं की उत्पत्ति का वर्णन है। इस वर्णन में शूद्र वर्णों का यज्ञ अधिकार से निकलने का भी सुंदर वर्णन प्राप्त होता है। प्रजापति के मुख से ब्राह्मण का और अग्नि का भुजाओं से क्षत्रिय का और इन्द्र का, मध्यदेश से वैश्य का और विश्वदेव का, पाद से केवल शूद्र की ही उत्पति बताई शूद्र का कर्त्तव्य का भी निर्देश- 'तस्मात् शूद्र उत बहुपशुरयज्ञियो विदेवो हि। नहि तं काचन देवसान्वसृज्यत। तस्मात्पादावनेज्यं नातिवर्धते। पत्तोहि सृष्टः' (ताण्ड्य. ६/१/११)।

पाठगत प्रश्न 5.7

1. वाणी को अपने पक्ष में लाने के लिए किस किसने प्रयत्न किया?
2. स्त्रियाँ स्वभाव से किस प्रकार होती है?
3. किसने चारो वर्ण का सृजन किया?
4. कहा चारो वर्ण की उत्पत्ति लिखी हुई है?

पाठ का सार

ब्राह्मणशब्द नपुंसकलिङ्ग में और क्लीब् में कोई लिङ्ग नहीं है। ब्राह्मणशब्द का यज्ञ अर्थ भी है। यज्ञीय कर्मकाण्ड की व्याख्या-विवरण के सम्पादन ब्राह्मण ग्रन्थों का मुख्य विषय है। ब्राह्मण में मन्त्र, कर्म, विनियोग की व्याख्या है। संहिता ब्राह्मण के मध्य में महान भेद है। बहुसंख्यक संहिता छन्दोबद्ध है, उनमे कुछ अंश ही गद्यात्मक है। किन्तु ब्राह्मण ग्रन्थ सभी प्रकार से गद्यात्मक ही होते है। विवेचना विषय पर भी अंतर दिखते हैं। और ब्राह्मण ग्रन्थों में विविध विधियों के विषय में आलोचना है। और वे विधि जैसे विनियोग, हेतु, निरुक्ति, आख्यान इत्यादि। ब्राह्मण में यज्ञ के सम्बद्ध में और उसके विविध उपदेशों का वर्णन है। उनमें मन्त्रों के विनियोग विषय पर विस्तार सहित वर्णन प्राप्त होता है। किस मन्त्र का किस समय में प्रयोग होना चाहिए, इत्यादि विधि का उपदेश यहाँ दिया है। और इन विनियोग का वैज्ञानिक दृष्टि से भी वहाँ समानता प्रदर्शित है। हेतुपद से उनके कारणों का निर्देश होता है, जो कर्मकाण्ड विधि को सही रूप से सम्पन्न करते हैं। यज्ञ में निषिद्ध पदों की निन्दा का जहाँ विधान हो वह अर्थवाद, उपयोग विधि का आस्था पूर्वक सिद्धि

के लिए ही ये अर्थवाद होते। ब्राह्मणों में शब्दों के निर्वचन का मार्मिक और वैज्ञानिक निर्देश निरुक्त में कहा है। वहाँ अर्थवाद के विस्तृत वर्णन प्राप्त होते हैं, जिससे पाठक प्रसन्न होते हैं। और यहाँ विभिन्न स्थलों में अत्यन्त आकर्षक आख्यान भी प्राप्त होते हैं। ये आख्यान पाठक हृदय के उद्विग्न मन में शान्ति और शीतलता देते हैं। विधि विधानों के अपने स्वरूप की व्याख्या ही इन आख्यानों की माता है।

पाठांत प्रश्न

1. ब्राह्मण ग्रन्थों के महत्त्व का वर्णन कीजिए।
2. प्रधान ब्राह्मण ग्रन्थों का वेद निर्देश सहित नाम लिखिए।
3. वाणी और मन के आख्यान का प्रतिपादन कीजिए।
4. कुछ मुख्य आख्यानों के उदाहरण दीजिए।
5. संहिता ब्राह्मण का भेद लिखिए।
6. किसी के प्रतिपादन के लिए ब्राह्मण साहित्य का उद्‌भव बताइए।
7. देव कैसे अमर हुए?
8. निरुक्त में कुछ निर्वचनों के उदाहरण लिखिए।

पाठगत प्रश्नों के उत्तर

5.1

1. नपुंसक लिङ्ग में।
2. ब्राह्मण नाम कर्म और उनके मन्त्रों का व्याख्यान ग्रन्थ हैं।
3. दो प्रकार, मन्त्र रूप और ब्राह्मण रूप।
4. अनुब्राह्मणादिनिः (पा. सू. ४/२/६२) इस सूत्र में।
5. माण्डुकेय गण, शाङ्खायन गण, और आश्वलायन गण।
6. एतरेय और शाङ्खायन।
7. कौषितकी ब्राह्मण।

5.2

1. देव स्तुति में।
2. शबर स्वामी।
3. संहिता में स्तुति प्रधान है, ब्राह्मण ग्रन्थ में उसके विधानों की ही प्रधानता है।

5.3

1. यज्ञ।
2. आधान,पुनराधान, अग्निहोत्र, उपस्थापन, आग्रायण, दाक्षायण आदि कुछ यज्ञों के नाम है।
3. मिथ्यावादी।

5.4

1. प्राण के और अपान के साथ।
2. मित्र।
3. वरुण।

5.5

1. बल (शक्ति)।
2. प्रजापति।

5.6

1. माष का।
2. प्रशंसा वचन।

5.7

1. गन्धर्व।
2. स्तुति की अपेक्षा गायन के प्रति अधिक आकृष्ट होते है।
3. परम पुरुष से।
4. पुरुष सूक्त में।

॥ पांचवा पाठ समाप्त॥

6

आरण्यक और उपनिषद्

मन्त्र और ब्राह्मण का वेद नाम है ऐसा जानना चाहिए श्रुति अनुसार मन्त्र, ब्राह्मण दो वेद के भाग है। वहाँ ब्राह्मण के भी तीन भाग है। और वे ब्राह्मण, आरण्यक और उपनिषद्। ब्राह्मण ग्रन्थों का विस्तृत परिचय पहले ही हुआ है। अब आरण्यकों का परिचय प्रस्तुत करते है। ऋग्वेद आदि भाग के अनुसार से आरण्यक भी बहुत है। उनमें कुछ विशिष्ट आरण्यक हैं जैसे ऐतरेय आरण्यक, बृहदारण्यक, शांख्यायन आरण्यक और तैत्तिरीय आरण्यक यहाँ प्रस्तुत है। आरण्यक प्रपाठकों में विभक्त है। और वे अनुवाको में विभक्त है। महाव्रत के अनुष्ठान वर्णन, निष्कैवल्य शास्त्र, प्राणविद्या, पुरुष आदि का वर्णन, कुछ स्थलो में ब्रह्मविद्या की गूढ़ता का विस्तार से भी वर्णन है। ये किस वेद में प्रपाठक में और अनुवाक में है, उसका भी यहाँ वर्णन है।

इस अध्याय के द्वितीय भाग में उपनिषदों का वर्णन है। उपनिषद् भारतीयों के अध्यात्म विद्या का ज्वलित रत्न है। महर्षियों ने जो आध्यात्मिक तत्त्व ध्यान के माध्यम से साक्षात् किया उन सभी तत्त्वो का यहाँ वर्णन है। उपनिषद् परा विद्या कहलाती है। वेदान्त ही उपनिषद् है। उपनिषद्, शब्द का अर्थ रहस्य है। अध्यात्म विद्या का रहस्य प्रतिपादक वेदभाग उपनिषद् ऐसा कहलाता है। महर्षियों ने आध्यात्मिक विद्या से उन गूढ से भी गूढ़ रहस्यो का भी विस्तृत विचार करते हुए प्राप्त होते है।

उद्देश्य

इस पाठ को पढ़कर आप सक्षम होंगे :

- विविध आरण्यकों के विषय में जान पाने में;
- उपनिषदों का सामान्य रूप से परिचय प्राप्त कर पाने में;
- आरण्यकों के नामकरण की सार्थकता को समझ पाने में; और
- केन उपनिषद् और छान्दोग्य उपनिषद् का परिचय जान पाने में।

6.1 आरण्यक का सामान्य परिचय

आरण्यक और उपनिषद् ब्राह्मणों के परिशिष्ट ग्रन्थ के समान होते हैं। जैसे ब्राह्मण ग्रन्थों में सामान्य प्रतिपाद्य विषयों से भिन्न विषयों का प्रतिपादन है तथा इनका भी है। सायणाचार्य के मत में इस ग्रन्थ का अरण्य में पाठ होने से 'आरण्यक' यह नामकरण सार्थक ही है। जैसे –

'अरण्याध्ययनादेतद् आरण्यकमितीर्यते।
अरण्ये तदधीयीतेत्येवं वाक्यं प्रवक्ष्यते॥' **–(तै० आ० भा०, श्लो० ६)**

इन ग्रन्थों के मनन स्थान जंगल का एकान्त शान्त वातावरण है। गाँव के अंदर इसका अध्ययन कभी भी लाभदायक उचित उपयोग नहीं है। आरण्यक का मुख्य प्रतिपाद्य विषय केवल यज्ञ ही नहीं, अपितु यज्ञ, याग आदि के अन्दर विद्यमान आध्यात्मिक तथ्य की विवेचना भी है। यज्ञीय अनुष्ठान के साथ उसके अन्तर्गत दार्शनिक विचार भी इसका मुख्य विषय है। संहिता मन्त्रों में जिस विद्या का सङ्केत मात्र ही उपलब्ध होता है, यहां उसका विश्लेषण भी है।

आरण्यक का महत्त्व सभी जगह स्वीकार किया है। महाभारत का कथन है कि औषधियों से जैसे अमृत को धारण किया वैसे ही वेदों से सार को लेकर के आरण्यकों की रचना की। जैसे –

'आरण्यकञ्च वेदेभ्य ओषधिभ्योमृतं यथा। **(महाभा० १।२६५)**

मन्त्र ब्राह्मणात्मक का वेद के जिस अंश में प्राण विद्या का प्रतीक और उपासना के विषय में वर्णन है वह ही अंश आरण्यक है ऐसा कहते है। आरण्यक भी ब्राह्मण का ही अंश है। उसकी विशिष्टता प्रदर्शन के लिए 'रहस्यब्राह्मण' इस नाम से भी जाना जाता है। निरुक्त की टीका में (१।४) दुर्गाचार्य ने, 'ऐतरेयके रहस्यब्राह्मणम्' ऐसा कह करके ऐतरेय आरण्यक उदाहरण दिया है (२।२।१)। इससे रहस्यब्राह्मण, और आरण्यक के एकता की सिद्धि होती है, आरण्यक का अन्य नाम रहस्य भी है (गोपथ० ब्रा० १०)। क्योंकि जैसे आरण्यक यज्ञ के गूढ़ रहस्य का प्रतिपादन करता है वैसे ही कर्मकाण्ड की दार्शनिक व्याख्या भी प्रस्तुत करता है। मुख्य रूप से ब्रह्मविद्या रहस्य शब्द से जानी जाती है। विषय विवेचना की दृष्टि से आरण्यक के साथ उपनिषद् की भी समानता है। इसलिए बृहदारण्यक आदि ग्रन्थ को उपनिषद् इस शब्द से भी प्रयोग किया जाता है। किन्तु वर्णनीय विषय की समानता भी उन दोनों के मध्य में कुछ भेद दिखाई देता है। आरण्यक का मुख्य विषय प्राणविद्या तथा प्रतीक उपासना है। उपनिषदों में वर्णित विषय निर्गुण ब्रह्म प्राप्ति का उपाय है। यद्यपि यहाँ भेद है, फिर भी दोनों ग्रन्थ रहस्य ग्रन्थ है।

पाठगत प्रश्न 6.1

1. आरण्यक किन ग्रन्थों का परिशिष्ट भाग है?
2. सायणाचार्य के मत से आरण्यक नाम करण का सार्थक श्लोक को लिखिए?

3. आरण्यक के मनन के लिए उपयुक्त स्थान क्या है?
4. यज्ञ अनुष्ठान और दार्शनिक विचार किस ग्रन्थ का मुख्य बिषय है?
5. आरण्यक किसका सारभूत है?
6. आरण्यक वेदों से औषधि के समान सारभूत है यहाँ क्या प्रमाण है?
7. रहस्य ब्राह्मण क्या है?
8. आरण्यक किसके गूढ़ रहस्य को प्रदर्शित करते हैं?
9. रहस्य शब्द से किस विद्या का मुख्य रूप से प्रतिपादन करते है?
10. आरण्यक और उपनिषद् में क्या भेद है?

6.2 ऐतरेय आरण्यक

ऋग्वेद के दो आरण्यकों के मध्य में यह श्रेष्ठ आरण्यक है। यह आरण्यक ऐतरेय ब्राह्मण का ही परिशिष्ट भाग है। इसमें पांच आरण्यक है। ये आरण्यक भिन्न ग्रन्थ रूप से माने जाते हैं।

प्रथम आरण्यक में महाव्रत का वर्णन है। यह महाव्रत ऐतरेय ब्राह्मण के तीसरे प्रपाठक के गवामयन का ही एक अंश है। दूसरे प्रपाठक के पहले तीन अध्यायों में उक्थ, निष्कैवल्य शस्त्र, प्राणविद्या, पुरुष आदि की विवेचना है। चौथे पांचवे छठे अध्यायों में ऐतरेय उपनिषद् है। तीसरे आरण्यक का अन्य नाम है संहितोपनिषद्। इस उपनिषद् में संहिता, पदक्रम, पाठों का वर्णन तथा स्वर व्यञ्जन आदि स्वरूप का भी विवेचन है। इस खण्ड में शाकल्य का और माण्डुकेय के मतों का उल्लेख है। यह अंश बिना संदेह के रूप से प्रातिशाख्य निरुक्त आदि से भी प्राचीन है। व्याकरण विषय का भी यह ही अंश बहुत ही प्राचीन है। इससे इस आरण्यक के समय की पूर्व सीमा विक्रम से एक हजार वर्ष पहले मानते हैं। उससे यह आरण्यक यास्क से पूर्ववर्ति माना जाता है। क्योंकि इस अंश में निर्भुज, प्रतिघ्ण, सन्धि, संहिता आदि के पारिभाषिक शब्द प्रयुक्त है। चौथा आरण्यक बहुत ही छोटा है। इस आरण्यक में महाव्रत के पांचवे दिन में प्रयुक्त होने वाली महानाम्न ऋचा है। अन्तिम आरण्यक में निष्कैवल्य शस्त्र का वर्णन है। इन आरण्यकों में पहले तीन के रचयिता ऐतरेय, चौथे के आश्वलायन और पांचवें का शौनक माना जाता है। यह शौनक बृहद्देवता का निर्माता है। डॉ० कीथ महोदय ने इस आरण्यकों निरुक्त से बाद में लिखा हुआ मानकर इसका समय विक्रम से छः सौ वर्ष पहले मानते है। किन्तु वास्तव में यह आरण्यक निरुक्त से अधिक प्राचीन है। यह आरण्यक महीदास, ऐतरेय के पहले तीन आरण्यकों के कर्ता होने से ऐतरेय ब्राह्मण के ही समकालिक है ऐसा सिद्ध होता है।

पाठगत प्रश्न 6.2

1. ऐतरेय आरण्यक किस वेद के अन्तर्गत आता है?
2. ऐतरेय आरण्यक किसका परिशिष्ट ग्रन्थ है?

3. ऐतरेय के प्रथम आरण्यक में किसका वर्णन है?
4. दूसरे प्रपाठक के आदि तीन अध्यायों में किसका वर्णन है?
5. अन्तिम आरण्यक में किसका वर्णन है?
6. तृतीय आरण्यक का दूसरा नाम क्या है?
7. संहितोपनिषद् में किसका वर्णन है?
8. दूसरे चौथे आरण्यक के रचयिता कौन-कौन हैं?
9. बृहद्देवता का निर्माता कौन है?
10. अर्वाचीन इसका क्या अर्थ है?

6.3 शाङ्ख्यायन आरण्यक

यह ऋग्वेद का दूसरा आरण्यक है। इसमें पन्द्रह आध्याय है। तीसरे अध्याय से छठे अध्याय तक कौषीतकि, उपनिषद् कहलाता है, तथा सातवां, आठवा अध्याय संहितोपनिषद् कहलाता है। इनसे भिन्न अध्यायों में आरण्यक के मुख्य विषयों का प्रतिपादन है। पहले दूसरे अध्याय में महाव्रत का वर्णन उपलब्ध है। यहाँ एक यज्ञ है, गवामयन-नामक यज्ञ ऐसा उसका नाम है। उस यज्ञ का जो अन्तिम दिन उससे पहले के दिन में महाव्रत का अनुष्ठान होता है। इसी ही दिन में तीन सवन भी होते हैं। इस आरण्यक में होतृ नाम का जो ऋत्विज है उससे प्रयुक्त शास्त्रों का वर्णन है। महाव्रत के सभी अनुष्ठानों के विधान शाङ्खायन श्रौतसूत्र में है। इस अनुष्ठान का सबसे महत्त्वपूर्ण अङ्ग महदुक्थम् अथवा निष्कैवल्यशास्त्र है। इसका विस्तार सहित वर्णन वहीं अन्य अध्यायों में भी (१।४।५,२=१-१७) उपलब्ध होता है।

कौषीतकि ब्राह्मण उपनिषद् चार अध्यायों में विभक्त है। यह उपनिषद् शाङ्खायन आरण्यक का ही अंश है। यह कौषीतकि ब्राह्मण उपनिषद् और संहितोपनिषद् अध्याय के अगले भाग में है। ये दो उपनिषद् शाङ्खायनारण्यक के अविभाज्य अङ्ग है। इसका वर्णन उपनिषद् के वर्णन प्रसङ्ग में आगे होगा। नौवें अध्याय में प्राण की श्रेष्ठता का वर्णन है। दसवें अध्याय के अन्तर अग्निहोत्र का अङ्ग सहित और उपाङ्ग इत्यादि का वर्णन है। इस अध्याय का कथन है कि अग्निहोत्र से जिस देव के संतुष्टि का विधान है, अथवा देव को तृप्त करते है, वह देव जीव के अंदर ही विद्यमान है। बाह्य अग्निहोत्र से इसकी तृप्ति होती है। जो साधक इस तत्त्व से अज्ञात होकर केवल बाहर के हवन में ही आसक्त होता है, वह केवल राख में ही हवन करता है। मृत्यु को भगाने के लिए एक विशिष्ट याग का ग्यारहवें अध्याय में विस्तृत विवरण दिया है। बारहवें अध्याय में बिल्व फल से मणि निर्माण की प्रक्रिया का वर्णन है, काल का और स्वरूप का वर्णन है। जिसको धारण करके साधक शत्रुओं पर विजय प्राप्त करता है। तेरहवें और चौदहवें अध्यायों में अत्यंत संक्षेप से आत्मा का ब्रह्म के साथ एकत्व प्राप्ति जीव की सबसे बड़ी उपलब्धि के विषय में कहते है। 'आत्मावगम्योऽहं ब्रह्मास्मीति' यह ही उक्ति इस आरण्यक का सबसे श्रेष्ठ उपदेश है -

टिप्पणियाँ

'ऋचां मूर्धानं यजुषामुत्तमाङ्गं
साम्नां शिरोऽथर्वणां मुण्डमुण्डम्।
नाधीतेऽधीत वेदमाहुस्तमज्ञं
शिरस् द्वित्वासौ कुरुते कबन्धम्॥'

पंद्रहवे अध्याय में आचार्य का वंश वर्णन है। इस अध्याय से स्पष्ट रूप से प्रतीत होता है की इस आरण्यक के दृष्टा ऋषि का नाम गुणाख्य शाङ्ख्यायन था। उसके गुरु का नाम कहौल कौषीतकि था। ये दोनों अन्तिम आचार्य है। इसी ही कारण से इस शाङ्ख्यायन आरण्यक के अन्तर्गत उपनिषद् कौषीतकि नाम से विख्यात है।

पाठगत प्रश्न 6.3

1. ऋग्वेद का दूसरा आरण्यक किस नाम से कहते है?
2. कौषीतकि उपनिषद् किस आरण्यक के किस अध्याय को अतिव्याप्त करके आख्या की है?
3. शांख्यायन आरण्यक के सातवें, आठवें अध्याय में व्याप्त कौन सा उपनिषद् है?
4. महाव्रत अनुष्ठान कब होता है?
5. महाव्रत अनुष्ठान में विहित विधानों का वर्णन कहाँ है?
6. मृत्यु को भगाने के लिए विशिष्ट याग का वर्णन कहाँ पर है?
7. बारहवें अध्याय में किसका वर्णन है?
8. जीव ब्रह्म की एकता शांख्यायन आरण्यक के किस अध्याय में वर्णित है?
9. पंद्रहवे अध्याय में क्या वर्णित है?
10. शांख्यायन आरण्यक का द्रष्टा कौन है?
11. शाङ्यायन आरण्यक दृष्टा के गुरु का क्या नाम है?

6.4 बृहदारण्यक

यह आरण्यक यजुर्वेद के साथ सम्बद्ध है। किन्तु आत्मतत्त्व की विशेष विवेचना को यह उपनिषद् भी कहता है। यह आरण्यक भी प्राचीनतम और मान्य है। कृष्ण यजुर्वेद की मैत्रायणी शाखा का भी एक आरण्यक है, जो मैत्रायणीय उपनिषद्, इस नाम से विख्यात है।

पाठगत प्रश्न 6.4

1. बृहदारण्यक किस वेद से सम्बद्धित है?
2. बृहदारण्यक का उपनिषद् कथन का क्या कारण है?
3. कृष्ण यजुर्वेद में मैत्रायणी शाखा के अन्तर्गत उपनिषद् का क्या नाम है?

6.5 तैत्तिरीय आरण्यक

इस आरण्यक में दस परिच्छेद अथवा प्रपाठक हैं। यह प्रपाठक सामान्य रूप से 'अरण' इस पद से जानी जाती है। इसका नामकरण भी उससे ही होता है। जैसे पहले प्रपाठक का नाम है – 'भद्र', दूसरे का – 'सहैव', तीसरे का – 'चिति', चौथे का – 'युञ्जते', पांचवे का – 'देव वै', छठे का – 'परे', सातवे का – 'शिक्षा', आठवे का – 'ब्रह्मविद्या', नौवे का – 'भृगु', दसवें का – 'नारायणीय' है। इसमें सात, आठ और नौवें प्रपाठकों को मिलाकर 'तैत्तिरीय उपनिषद्' कहलाता है। दसवें प्रपाठक को भी महानारायणीय उपनिषद् कहलाता है। यह प्रपाठक आरण्यक का परिशिष्ट भाग है। प्रपाठकों का विभाजन अनुवाकों में है। नौवें प्रपाठक तक अनुवाकों की संख्या १०७ है। तैत्तिरीय ब्राह्मण के समान ही यहाँ पर भी प्रत्येक अनुवाक में दस वाक्यों का एक अङ्क होता है। प्रत्येक दस का अन्तिम पद अनुवाक के अन्तिम में परिगणन किया है। इस आरण्यक में ऋक् मन्त्र उद्धृत है।

पहला प्रपाठक आरुण-केतु नाम की अग्नि की उपासना का तथा उसके लिए ईटों के चयन का वर्णन करता है। दूसरे प्रपाठक में स्वाध्याय का तथा पञ्चमहायज्ञों का वर्णन है। यहाँ गङ्गा-यमुना के बीच का स्थान पवित्र, तथा मुनियों के निवास के लिए उत्कृष्ट भूमि का वर्णन है। तीसरे प्रपाठक में चार होताओं के चित्त में उपयोगी मन्त्रों का सङ्ग्रह है। चौथे अध्याय में संन्यासी के उपयोगी मन्त्रों का सङ्ग्रह है। यहाँ कुरुक्षेत्र का और खाण्डव का वर्णन भौगोलिक स्थित्ति के अनुसार से ही है। इस प्रपाठक में अभिचार मन्त्रों की भी सत्ता है। आभिचारिक मन्त्रों का प्रयोग शत्रुओं के नाश के लिए होता है। ४।२७ मन्त्र में तथा ४।३७ मन्त्र में 'छिन्धी भिन्धी हन्धी कट' इस प्रकार के मन्त्रों का स्पष्ट रूप से यहाँ संकेत है। ४।३८ मन्त्र में अथर्ववेद के आभिचारिक मन्त्र के प्रति स्फुट रूप से सङ्केत प्राप्त होता है। पाँचवे प्रपाठक में यज्ञों के सङ्केत नाम उपलब्ध होते हैं। छठे प्रपाठक में पितृमेध सम्बन्धी मन्त्रों का उल्लेख है। सातवें, आठवें और नौवें प्रपाठकों में तैत्तिरीय उपनिषद् है। दसवें प्रपाठक में नारायणीय उपनिषद् है। इस प्रपाठक की संख्या का भी निर्देश नहीं है।

इस आरण्यक में स्थान-स्थान पर कुछ विशेष बात भी प्राप्त होती है। जैसे- १. कश्यप का अर्थ होता है सूर्य। इसकी व्युत्पत्ति पर्याप्त रूप से वैज्ञानिक है। 'कश्यप देखने वाला होता है। जो सभी को चारो और से सूक्ष्मता से देखता है' १।८।८) अर्थात् पश्यक शब्द से वर्ण को बदलने के नियम से कश्यप शब्द बनता है। इसी प्रकार से वर्ण व्यत्यय से बने हुए शब्द का सुंदर उदाहरण यह

टिप्पणियाँ

है। (२) पाराशर व्यास का भी यहाँ उल्लेख प्राप्त होता है (१।९।२)। (३) दूसरे प्रपाठक के आरम्भ में ही संध्या में प्रयुक्त सूर्य के अर्घजल की महिमा का वर्णन है। उस जल प्रभाव से मन्देह नाम के दैत्य का सभी प्रकार से विनाश होता है (२।२)।

सामवेद से सम्बद्ध भी एक आरण्यक है। यह आरण्यक तवलकार आरण्यक के नाम से प्रसिद्ध है। यह ही आरण्यक 'जैमिनीय उपनिषद् ब्राह्मण' कहलाता है। इसमें चार अध्याय है। प्रत्येक अध्याय में अनुवाक हैं। चौथे अध्याय का दसवें अनुवाक में प्रसिद्ध तवलकार, अथवा केनोपनिषद् है। अथर्ववेद का कोई भी आरण्यक उपलब्ध नहीं है। इस वेद से सम्बद्ध जो उपनिषद् है, वे किसी भी आरण्यक के अंश नहीं होकर प्रारम्भ से ही स्वतन्त्र ग्रन्थ रूप से विद्यमान है।

पुराणों में आरण्यक का आचार्य रूप में शौनक के नाम का उल्लेख है – 'शौनको नाम मेधावी विज्ञानारण्यके गुरुः' (पद्मपुरा० ५।१।१८) पुराण का यह वाक्य यथार्थ है। क्योंकि आचार्य शौनक एक ब्रह्मवेत्ता ऋषि थे। इन्होने वेदों की अध्यात्म परक व्याख्या की है। जो की इस वामीयभाष्य में आत्मानन्द ने लिखा है– 'अध्यात्मविषयां शौनकादिरीतिम्'। पद्म पुराण का विज्ञान आरण्यक शब्द भी आरण्यक स्वरूप का परिचायक है। आरण्यक विज्ञान के विशिष्ट ज्ञान का अथवा अध्यात्म ज्ञान का बोधक ग्रन्थ है यह भी इससे ही जाना जाता है।

पाठगत प्रश्न 6.5

1. प्रपाठक सामान्य रूप से किस नाम से जाने जाते है?
2. तीसरे, सातवें, आठवें प्रपाठकों का नाम लिखिए।
3. अन्तिम प्रपाठक का क्या नाम है?
4. तैत्तिरीय आरण्यक के कौन-कौन से अध्याय तैत्तिरिय उपनिषद् कहलाते हैं?
5. तैत्तिरीय आरण्यक के किस प्रपाठक में गङ्गा यमुना की कथा का वर्णन है?
6. पांचवे प्रपाठक में किसका वर्णन है?
7. परे यह किस प्रपाठक का नाम है?
8. काश्यप का क्या अर्थ है?
9. दूसरे प्रपाठक के आरम्भ में क्या-क्या वर्णित है?
10. प्रपाठकों का विभाजन कैसे होता है?
11. सामवेद संबन्धित आरण्यक का क्या नाम है?
12. तवलकार आरण्यक किस नाम से कहलाता है?
13. केन उपनिषद् किस अनुवाक में है?
14. आरण्य आचार्य कौन है?
15. वेदों की अध्यात्म परक व्याख्या किसने की है?

6.6 उपनिषदों का सामान्य परिचय

भारतीय दर्शन साहित्य में श्रुति, स्मृति, न्याय, आख्यानों के तीन प्रस्थान है। वे वेदों को ही धारण करके स्थित है। उनमें मानव जीवन के चरम लक्ष्य और उसकी प्राप्ति साधन का उपदेश है। उपनिषद् प्रस्थान त्रयी में प्रथम प्रस्थान कहलाता है, क्योंकि यह ही भारतीय विचार शास्त्र का श्रेष्ठ उपजीव्य ग्रन्थ है। श्रीमद्भगवद्गीता को दूसरा प्रस्थान कहते है। गीता कैसे दूसरा प्रस्थान है यह निम्नलिखित श्लोक से स्पष्ट होता है –

'सर्वोपनिषदो गावो दोग्धा गोपालनन्दनः।
पार्थो वत्सः सुधीर्भोक्ता दुग्धं गीतामृतं महत्॥'

बादरायण व्यास प्रणीत ब्रह्मसूत्र को तीसरा प्रस्थान कहते है। वहाँ अचानक विरोधियों का उपनिषद् वाक्यों के मध्य में सामजस्य अच्छी प्रकार से प्रदर्शित करते है। उससे भी सभी वाक्यों का ब्रह्मनिष्ठ सिद्ध होता है। और भी तार्किको की युक्ति भी यहाँ निराकृत की है। भारतीय वैदिक धर्म ग्रन्थ और दर्शन यह ही प्रस्थानत्रय का अवलम्बन करते है।

उप–नि–पूर्वक विशरण गति अवसादन अर्थ से 'षद्लृ'–धातु से क्विप प्रत्यय में रूप उपनिषद् बनता है। उपनिषदों के अध्ययन से ऐहिक विषयों में तथा आमुष्मिक विषयों में वैराग्य को स्वीकार करके संन्यासियों की संसार की बीजभूत विद्या नष्ट हो जाती है। तब मुमुक्षु पुरुष ब्रह्म को प्राप्त करता है, और दुःखों से दूर होता है। ब्रह्म स्वरूप का उसकी प्राप्ति उपाय का, जीव का, जगत का, तथा आत्मा आदि विषयों का विस्तार सहित वर्णन उपनिषद् में है। इसलिए इसका 'उपनिषद्' यह नाम (संज्ञा) युक्त ही है।

'सर्वोपनिषदां मध्ये सारमष्टोत्तरं शतम्' यह मुक्तिकोपनिषद् का वाक्य है। इससे जाना जाता है कि उपनिषद् एक सौ आठ से भी अधिक थे। किन्तु एक सौ आठ संख्या तक ही उपनिषद् प्राप्त होते है। इन उपनिषदों में प्राय बारह उपनिषद् प्राचीन और विस्तृत विषय का प्रतिपादन करते है। इसलिए ये प्रमाणिक होते है। वहाँ १० उपनिषद् ऋग्वेद से सम्बद्ध, १९ उपनिषद् शुक्ल यजुर्वेद से सम्बद्ध, ३२ कृष्ण यजुर्वेद से सम्बद्ध, १६ सामवेद से सम्बद्ध, ३१ अथर्ववेद से सम्बद्ध। वेदान्त आचार्यो ने इन उपनिषदों की व्याख्या लिखी। उनमे भी दस उपनिषद् प्रसिद्ध है।

ऋग्वेदीय उपनिषदों में एतरेय, कौषीतकि, साम परक उपनिषदों में छान्दोग्य, केन उपनिषद्, कृष्ण यजुर्वेद विषयी उपनिषदों में तैत्तिरीय, महानारायण, कठ, श्वेताश्वतर, मैत्रायणी उपनिषद्, शुक्ल यजुर्वेद पर लिखे हुए ईशावास्य उपनिषद् बृहदारण्यक और अथर्ववेद में मुण्डक, माण्डूक्य, प्रश्न उपनिषद् गहरे चर्चित प्राचीन सभी जगह प्राप्त है। मुण्डक उपनिषद् में उपनिषदों की संख्या निम्न रूप से वर्णित है –

'ईश–केन–कठ–प्रश्न–मुण्ड–माण्डूक्य–तित्तिरिः।
ऐतरेयं च छान्दोग्यं बृहदारण्यकं दश॥'

टिप्पणियाँ

ये दस उपनिषद् प्रसिद्ध है – ईश, केन, कठ, प्रश्न, मुण्डक, माण्डूक्य, तैत्तिरीय, ऐतरेय, छान्दोग्य, बृहदारण्यक, उपनिषद्। किन्तु श्वेताश्वतर उपनिषद् भी प्रसिद्ध है।

कुछ उपनिषद् गद्यात्मक है, कुछ पद्यात्मक है, और कुछ गद्य पद्य दोनों से मिश्रित है। इन उपनिषदों का काल भिन्न भिन्न है, पुराने काल में प्रसिद्ध कुछ उपनिषद् बुद्ध काल से प्राचीन है ऐसा संस्कृत साहित्य के इतिहासकार कहते हैं।

सत्रहवीं शताब्दी में दाराशिकोह नाम शाहजहाँ–नाम के सम्राट पुत्र ५० संख्या तक उपनिषद् पारसी भाषा में ब्राह्मण पण्डितों की सहायता से अनुवाद किये। शोपेन हावेर (Shopen Howers)–नाम से प्रसिद्ध विदेशी दार्शनिक उपनिषदों को अपने गुरुओं में गिनते थे। आजकल भी पाश्चात्यों में उपनिषदों का महान् प्रभाव विद्यमान है, प्रायः सभी ही सभ्य भाषाओ में इन उपनिषदों का अनुवाद किया है।

उपनिषद् अति सरल शैली में तत्त्व को बताते है, उससे उनका महत्त्व और लोकप्रिय प्रतिदिन बढ़ती है। जैसे कठ उपनिषद् में –

'आत्मानं रथिनं विद्धि शरीरं रथमेव तु।
बुद्धिं तु सारथिं विद्धि मनः प्रग्रहमेव च॥
इन्द्रियाणि हयानाहुर्विषयांस्तेषु गोचरान्
आत्मेन्द्रियमनोयुक्तं भोक्तेत्याहुर्मनीषिणः॥'

भगवद्गीता भी उपनिषद् का ही बोध कराता है।

पहले ही हमने यह कहा है की ये उपनिषद् एक काल में नहीं लिखे गए अपितु काल काल पर उनकी रचना हुई। प्रधान उपनिषद् बुद्ध से पूर्व ही रचे गए। इन उपनिषदों का काल क्या है, अथवा इनके मध्य में पारस्परिक सम्बन्ध क्या हैं इन विषयों को जानने के लिए प्राचीन विद्वानों ने अत्यधिक उपयोग किया है। जर्मन विद्वान् डायसन महोदय ने तो उपनिषदों को चार स्तरों में विभक्त किया है।

(क) प्राचीन गद्य उपनिषद्– जो गद्य ब्राह्मण गद्य के समान ही प्राचीन, लघुकाय और सरल है। जैसे – (१) बृहदारण्यक उपनिषद्, (२) छान्दोग्य उपनिषद्, (३) तैत्तिरीय उपनिषद्, (४) ऐतरेय उपनिषद्, (५) कौषीतकि उपनिषद् (६) और केन उपनिषद्।

(ख) प्राचीन पद्य उपनिषद्– जो पद्य प्राचीन, सरल तथा वैदिक पद्य के समान ही है। जैसे – (७) कठ उपनिषद्, (८) ईश उपनिषद्, (९) श्वेताश्वतर उपनिषद् (१०) और महानारायण उपनिषद्।

(ग) उत्तरकालिक गद्य उपनिषद्– (११) प्रश्न उपनिषद्, (१२) मैत्रायणी उपनिषद् (१३) माण्डूक्य उपनिषद्।

(घ) आथर्वण उपनिषद्– जिनका उपयोग तान्त्रिक उपासना में विशिष्ट रूप से स्वीकार किया है – (१) सामान्य उपनिषद्, (२) योग उपनिषद्, (३) सांख्यवेदान्त उपनिषद्, (४) शैव उपनिषद्, (५) वैष्णव उपनिषद्, (६) और शाक्त उपनिषद्।

इस क्रम साधन में बहुत दोषो को दिखाकर डॉ० बेलवेलकर, राणाडे महोदय ने एक नई योजना प्रस्तुत की। Belvelkar and Ranade& History of Indian Philosophy- Vol. 2 p.p. इस ग्रन्थ में ८७-९० पृष्ठ तक उपनिषदों का रचनाकाल प्रदर्शित है, किन्तु वह इतना काल्पनिक और अप्रामाणिक है की विश्वास योग्य नहीं है। ईशावास्य उपनिषद् की दूसरे स्तर में स्थापना कभी भी न्याय सङ्गत नहीं है। क्योंकि इसके यज्ञ का महत्त्व ब्राह्मण काल में ही स्वीकार किया है ('कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषे शतं समाः') तथा बृहदारण्यक में कर्म संन्यास भावना की घोषणा ही नहीं है इस प्रकार ('पुत्रैषणायाश्च लोकैषणायाश्च ह्युत्थाय भिक्षाचर्यं चरन्ति'- बृहदारण्य०)। अन्य उपनिषदों के समान ही ईश उपनिषद् आरण्यक का अंश न होकर माध्यन्दिन संहिता का भाग है। मुक्तिकोपनिषद् मान्य परम्परा के अनुसार से यह समस्त उपनिषदों की गणना में प्रथम स्तरीय ही है। इस कारण बेलवेलकर-महोदय का कथन किसी भी तत्त्व जिज्ञासु मनुष्य के हृदय में विश्वास को उत्पन्न नहीं कर सकता है।

श्री चिन्तामणि विनायक वैद्य भी अपने ग्रन्थ में उपनिषदों की प्राचीनता को प्रमाणित करने के लिए दो साधन सामने उपस्थित करते है। विष्णु का और शिव का परम देव स्वरूप में वर्णन, प्रकृति-पुरुष का तथा सत्त्व-रजस तमस तीन प्रकार के गुणों का और साङ्ख्य सिद्धान्त का प्रतिपादन किया। यह सिद्धान्त सही प्रतीत होता है। तिलक महोदय के अनुसार उपनिषद् काल १९०० सौ वि० पूर्व होना चाहिए। इस प्रकार से उपनिषद् काल का शुभारम्भ २५०० सौ वि० पूर्व कह सकते है।

वस्तुत आरण्यक का परिशिष्टभूत उपनिषद् है। आरण्यक में आरम्भ हुए अध्यात्म तत्त्व की आलोचना उपनिषदों में ही पूर्ण पराकाष्ठा को प्राप्त करके ही समाप्त होता है। वेद का अन्तिम लक्ष्य होने से और वेद का प्रधान भाग होने से ही उपनिषद् वेदान्त कहलाते हैं। उपनिषद् शब्द का अर्थ ब्रह्मविद्या है। ब्रह्मविद्या संसार के प्राणी को बनाता, विस्तृत करता और शिथिल करता है। ब्रह्मविद्या ही उपनिषद् है फिर भी जैसे आयु बढ़ाने के लिए घी को 'आयुर्वै घृतम्' इस आयु शब्द का औपचारिक प्रयोग होता है, वैसे ही ब्रह्मविद्या के प्रकाशक ग्रन्थ में भी उपनिषद् शब्द का औपचारिक प्रयोग होता है। ब्रह्म ही एक सत् है अन्य सभी रस्सी में सांप की तरह ब्रह्म की अविद्या से आच्छादित असत् ही है। जीव हि अविद्या के प्रभाव से असद् वस्तु को सत् रूप से देखता है। स्वरूप से निष्काम ब्रह्मभूत भी अपने स्वरूप को भूलकर जो भिन्न नहीं है उसको भी भिन्न मानकर कामना, द्वेष अथवा कर्मो को करता है। और उससे ही वे कर्मो के शुभ अशुभ फल को भोगते है। जब तक माया का नाश नहीं हो जाता है, तब तक यह बिना रुका हुआ संसार चक्र चलता रहता है। अतः निष्काम कर्म द्वारा जब चित्त की शुद्धि होती है, तब यहाँ फलभोग से विरागवान होकर शम, दम आदि छः सम्पत्ति को प्राप्त करके संसार ताप अग्नि को सहन नहीं करने वाला मुमुक्षु यदि ब्रह्मज्ञ गुरु के समीप जाकर उनके मुख से वेदान्त वाक्यों को सुनकर मनन और निदिध्यासन का आचरण करता है तब समाधि में ब्रह्म में लीन हो तब उसकी माया नष्ट होती है। सभी आत्माओं में अपनी आत्मा को और अपने स्वरूप को देखता है। उसकी कोई भी द्वेष कामना नहीं रहती है। उसके लिए कोई चेष्टा भी नहीं होती है। कर्म अभाव से फल भी नहीं बढ़ते है। फल अभाव से फल उपभोग के लिए शरीर धारण करना भी आवश्यक नहीं है। वह ब्रह्मवेत्ता होने से दुबारा उत्पन्न नहीं होता है। जब तक प्रारब्ध का नाश नहीं हो जाता है, तब तक वह शरीर धारण के लिए

टिप्पणियाँ

आवश्यक कर्म मात्र का पालन करते हुए कर्तव्य मात्र का बोध करता है बुद्धि से। जैसे पुरुष मोम की मूर्ति को देखता हुआ उसके मोम मूर्ति के मात्र स्वरूप को ही देखता है, वैसे ही ब्रह्मवेत्ता भी जगत् को देखता हुआ भी ब्रह्म स्वरूप को ही देखता है। और प्रारब्ध के क्षीण होने पर सांप के समान शरीर को छोडकर ब्रह्म में लीन हो जाते हैं। ' ब्रह्मैव सद् ब्रह्म अप्येति ' इति वेदान्तसार।

(क) **ऋग्वेदस्य मुख्य उपनिषद्ाः** – ऐतरेयोपनिषत्, कौषीतकि उपनिषत्, निर्वाणोपनिषत् चेति।

(ख) **सामवेदस्य मुख्य उपनिषद्ाः** – छान्दोग्योपनिषत्, केनोपनिषत्, सन्न्यासोपनिषत् चेति।

(ग) **कृष्णयजुर्वेदस्य मुख्य उपनिषद्ाः** – तैत्तिरीयोपनिषत्, कठोपनिषत्, श्वेताश्वेतरोपनिषत् चेति।

(घ) **शुक्लयजुर्वेदस्य मुख्य उपनिषद्ाः** – बृहदारण्यकोपनिषत्, ईशोपनिषत्, भिक्षुकोपनिषत् चेति।

(ङ) **अथर्ववेदस्य मुख्य उपनिषद्ाः** – प्रश्नोपनिषत्, मुण्डकोपनिषत्, माण्डूक्योपनिषत्, नृसिंहतापनीयोपनिषत् चेति।

इनको भी छोड़कर अन्य भी कुछ उपनिषद् हैं। श्रीमद् भगवान शङ्करचार्य ने जिन ग्यारह उपनिषदों का भाष्य लिखा है वे है – 'ईश, केन, कठ, प्रश्न, मुण्ड, माण्डूक्य, ऐतरेय, तैत्तिरीय, छान्दोग्य, बृहदारण्यक, श्वेताश्वतर उपनिषद्'।

अब केन उपनिषद् तथा छान्दोग्य उपनिषद् को संक्षेप से जानेंगे।

6.7 केन उपनिषद्

उपनिषद् ब्रह्म के भाव को प्राप्त करने से इसे उपनिषद् कहते हैं। उपनिषद् शब्द ही प्रधान रूप से वेदान्त को कहते हैं। उसको कहते है वेदान्त नाम उपनिषद् प्रमाण है। ईश आदि दस उपनिषदों के मध्य में केन उपनिषद् का दूसरा स्थान मानते हैं वेदान्त विद्वान। यह उपनिषद् सामवेद की तवलकार शाखा के अन्तर्गत आता है। शङ्कर भगवान के लिए यद्यपि उपनिषद् शब्द से ब्रह्मविद्या को ही कहते है, फिर भी ग्रन्थ में उपनिषद् शब्द व्यवहार के लिए होता है। ब्रह्म विद्या में उपनिषद् शब्द मुख्य रूप से वृत्ति में है, ग्रन्थ बोध में तो लक्षण से।

यह उपनिषद् ''केनेषितं पतति प्रेषितं मनः'' इत्यादि मन्त्र से आरम्भ होता है। वहाँ मन्त्र के आदि में केने इस पाठ से केन उपनिषद् नाम को प्राप्त करता है। इसी प्रकार ईशावास्यमिदं सर्वम् इति मन्त्रा अंश से आरम्भ होने के कारण ईशावास्य उपनिषद् इस नाम से भी सुना जाता है। सभी उपनिषदों में अखण्ड ब्रह्म के स्वरूप की विशेष आत्म तत्त्व उपनिषदों में मुख्य रूप से प्रतिपाद्य विषय है। इसी प्रकार इस उपनिषद् में भी उसी तत्त्व का प्रतिपादन किया है। शङ्कर भगवान इसमें अत्यधिक रुचि लेते हैं। इसकी व्याख्या की कामना के लिए भगवान् भाष्यकार ने दो भाष्य लिखे। इस उपनिषद् का आरम्भ प्रश्न प्रतिवचनों से देखा जाता है। रथ आदि चेतना के समान मुख्य प्रवृत्ति चाहते हैं, बिना अधिकार के नहीं चाहते हैं। मन-आदि जड़ की लोक में प्रवृत्ति देखी जाती है। चेतना के समान अधिष्ठान के लिए अस्तित्व में उसी को ही लिङ्ग कहते हैं। इसलिए

कारणों का अधिष्ठान जो चेतनवान उसका क्या विशेषण है इस प्रकार का जिज्ञासु का प्रश्न है। उस समाधान के लिए उत्तरगर्भ का यह मन्त्र बताता है –

श्रोत्रस्य श्रोत्रं मनसो मनो यद् वाचो ह वाचं स उ प्राणस्य प्राणः।
चक्षुषश्चक्षुः अतिमुच्य धीरा प्रेत्यास्माल्लोकादमृता भवन्ति॥ इति।

क्रिया आदि विशेष रहित का आत्मा मन आदि प्रवृत्ति का निमित्त है उत्तरार्थ के लिए। इसलिए ही श्रीमान आनन्दगिरि द्वारा बनाई टीका के 'मन आदि का जो प्रवर्तक है क्या वह विशेष है इस प्रश्न की विशेषता ही विशेष उत्तर' है ऐसा कहा गया है। इसी प्रकार की उपाधि से मुक्त ही उस ब्रह्म तत्त्व को रूप रहित होने से आखों से देख नहीं सकता है। बिना शब्द के होने से वाणी से कह नहीं सकते है। इन्द्रियों के परे होने से मन से नहीं मान सकते है। यहाँ ही 'यद्वाचाऽनभ्युदितं येन वागभ्युद्यते तदेव ब्रह्म तं भेदं यदिदमुपासते' इत्यादि मन्त्र देखना चाहिए। इस आत्म तत्त्व का सभी को अवश्य साक्षात् करना चाहिए। अन्यथा महाविनाश होना ही निश्चित है। जान लेने पर तो उस तत्त्व को, मृत्यु को जीतकर अमृतत्व को प्राप्त करता है साधक। इसलिए ही बार –बार वेदों की बात को जानना चाहिए –'तमेव विदित्वाऽतिमृत्युमेति नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय' इति।

6.8 छान्दोग्य उपनिषद्

यहाँ एक उपनिषद् को संक्षेप से कहते है। और वह छान्दोग्य उपनिषद् है। सामवेद के ही उपनिषदों में दूसरा ही छान्दोग्य उपनिषद् है। यह उपनिषद् सामवेद के छान्दोग्य ब्राह्मण का अंश विशेष है। यह आठ अध्यायों में लिखा हुआ उपनिषद् है। प्रत्येक अध्याय में दोबारा कुछ खण्ड हैं। सम्पूर्ण रूप से यहाँ एक सौ चौवन खण्ड तथा छः सौ अट्ठाईस मन्त्र है। प्रथम अध्याय के प्रारम्भ में ओङ्कार उपासना प्राप्त होती है। यह उपासना उद्गीतसङ्गीत का अङ्गभूत है। और कहा है –

'ओमित्येतदक्षरमुद्गीतमुपासीत' इति।

वहाँ कुछ उपाख्यान (कथा) है। उनमें श्रेष्ठ सत्यकाम जावालि का उपाख्यान है, और उपकोसल का उपाख्यान है। कर्मोपासना ब्रह्मविद्या की यहाँ अच्छी प्रकार से आलोचना की है। कर्मवत उपासना भी सकाम और निष्काम भेद से दो प्रकार की है। जो मनुष्य शास्त्र के नियम का पालन नहीं करते है, वे अधोगति को प्राप्त करते है और कहा है –

अथैतयोः पथोर्न कतरेणचन तानीमानि।
क्षुद्रान्यसकृदावर्तीनि भूतानि भवन्ति॥ इति।

जो लोग उपासना से इच्छा पूर्ति कार्यो में रमण करते है, वे बार –बार संसार चक्र में जीव रूप के द्वारा उत्पन्न होते है। कर्म से चित्त की शुद्धि होती है, उपासना से भक्तिभाव उत्पन्न होते है, उससे ही ब्रह्म उपलब्धि प्राप्त होती है। यहाँ गुरू उपदेश ही मुख्य प्रयोजन बताते है। देव श्रेष्ठ इन्द्र भी ब्रह्मज्ञान लाभ के लिए सौ वर्ष तक गुरु के घर में जीवन बिताया है।

छठे अध्याय में आरुणि–श्वेतकेतु के उपाख्यान से आत्म तत्त्व का विवरण प्राप्त होता है। वहाँ उद्दालक से कहा 'स आत्मा तत्त्वमसि श्वेतकेतो' इति। आरुणि ने श्वेतकेतु को उपदेश दिया है

की सच्चिदानन्द आत्मा ही ब्रह्म स्वरूप है। उससे ही सम्पूर्ण जगत चारों और से व्याप्त है। वह ही परम सत्यरूप है। सातवें अध्याय में नामब्रह्म, वाग्ब्रह्म आदि के रूप की आलोचना है। आठवें अध्याय में वर्णित ब्रह्म प्राप्ति का उपदेश है। उपनिषद् के अन्तिम अंश में ब्रह्म उपासना का वर्णन है। वहाँ कहा गया है की जो मनुष्य ब्रह्मचर्य, गृहस्थ आदि धर्मो को अच्छी प्रकार से पालन करके इन्द्रियों को संयम में करके शास्त्रों के द्वारा अनुमोदित विषय को छोड़कर सभी विषयों में हिंसा त्याग देता है, वह ही ब्रह्मलोक को प्राप्त करता है।

पाठगत प्रश्न 6.6

1. कौन प्रस्थानत्रय का उपजीव्य है?
2. प्रस्थानत्रय का नाम लिखिए?
3. गीता का दूसरा प्रस्थान होने में क्या प्रमाण है?
4. तीसरे प्रस्थान को किसने लिखा?
5. षद्लृ धातु का क्या अर्थ है?
6. उपनिषद्-शब्द की व्युत्पत्ति को लिखिए?
7. कितने प्रकार के उपनिषद् थे?
8. कौन से उपनिषद् अब प्राप्त होते है?
9. ईश केन कठ - इत्यादि श्लोक को पूरा लिखिए।
10. ऋग्वेद के उपनिषदों का नाम लिखिए।
11. यजुर्वेद के उपनिषदों का नाम लिखिए।
12. उपनिषद् लोकप्रिय कैसे है?
13. आत्मानं रथिनं विद्धि - इस श्लोक को पूर्ण कीजिए।
14. डयसन महोदय के अनुसार से उपनिषदों के कितने प्रकार के भेद है और वे कौनसे है?
15. प्राचीन गद्य उपनिषद् में कौन से उपनिषद् आते हैं?
16. उत्तरकालिक उपनिषद् में कौनसे उपनिषद् आते है?
17. ईशावास्य उपनिषद् प्राचीन पद्य उपनिषद् में स्थान युक्त नहीं है, उसका प्रमाण वाक्य लिखिए।
18. तिलक महोदय के अनुसार से उपनिषद् काल कब आरम्भ होता है?

पाठ का सार

इस पाठ में हमने आदि भाग में आरण्यकों के विषय में विस्तार से जाना है। नगर में निवास करके वेद के तत्त्व ज्ञान को जानना अत्यन्त कठिन था। इसलिए परमार्थिक स्वरूप के ज्ञान के लिए मुनि अरण्य में ही अपने आश्रम आदि का निर्माण करके शिष्यों के लिए तत्त्व ज्ञान का उपदेश दिया है। इसलिए उस कारण से ही आरण्यक ग्रन्थों की उत्पत्ति हुई। और कहते है अरण्य में अध्ययन के कारण ही इनको आरण्यक कहते है। ऐतरेय आरण्यक, शाङ्खायन आरण्यक, बृहद आरण्यक, तैत्तिरीय आरण्यकों के विषय में आपने सामान्य ज्ञान को प्राप्त किया है। और पाठ के अंतिम भाग में उपनिषदों के विषय में कहा है। भारतीय विचार शास्त्र का सर्वश्रेष्ठ उपजीव्य ग्रन्थ उपनिषद् ही है। हमारे द्वारा प्राचीन काल से उपनिषदों की पूजा की जाती है। उपनिषद् में रस, गुण, अलङ्कार आदि से गुम्फित शब्द राशि के द्वारा ब्रह्मतत्त्व का प्रतिपादन किया जाता है। केवल सन्यासी ही नहीं, अपितु संसार में स्थित सनातन लोग उस उपनिषदों का श्रद्धा से अध्ययन करके तत्त्वज्ञान को प्राप्त करना चाहते है। यहाँ मुख्य रूप से दो उपनिषद् केन उपनिषद्, छान्दोग्य उपनिषद् की संक्षेप से व्याख्या की है।

पाठांत प्रश्न

1. आरण्यक का सामान्य परिचय लिखिए।
2. शाङ्ख्यायन आरण्यक का सार लिखिए।
3. आरण्यक के भाग उनके नाम और प्रपाठक आदि का चित्र रुप से प्रकटीकरण कीजिए।
4. ऐतरेय आरण्यक के विषय में लिखिए।
5. उपनिषद् का सामान्य परिचय लिखिए।
6. छान्दोग्य उपनिषद् की व्याख्या कीजिए।
7. केन उपनिषद् की व्याख्या कीजिए।
8. तैत्तिरीय उपनिषद् की व्याख्या लिखिए।
9. उपनिषदों का सामान्य परिचय लिखिए।

पाठगत प्रश्नों के उत्तर

6.1

1. ब्राह्मणों का।

टिप्पणियाँ

2. अरण्य में अध्ययन के कारण ही इनको आरण्यक कहते है।

   'अरण्ये तदधीयीतेत्येवं वाक्यं प्रवक्ष्यते।।'

3. अरण्य का एकान्त शान्त वातावरण को।
4. आरण्यक का।
5. वेदों से, औषधी से।
6. 'वेद से आरण्यक जैसे औषधियों से अमृत।'
7. आरण्यक।
8. यज्ञ के गूढ रहस्य का।
9. ब्रह्मविद्या का।
10. आरण्यक का प्रतिपाद्य विषय प्राणविद्या, उपनिषद् का प्रतिपाद्य विषय निर्गुण ब्रह्म की प्राप्ति है यह ही उन दोनों के प्रतिपाद्य विषय में भेद है।

6.2

1. ऋग्वेद में।
2. ऐतरेय ब्राह्मण का।
3. महाव्रत का।
4. निष्कैवल्य शस्त्र, प्राणविद्या, पुरुष आदि का।
5. निष्कैवल्य शस्त्र का वर्णन है।
6. संहिता उपनिषद्।
7. पदक्रम पाठ आदि का वर्णन है।
8. यथाक्रम से ऐतरेय, आश्वलायन।
9. शौनक।
10. प्राचीन है।

6.3

1. शाङ्ख्यायन आरण्यक।
2. शाङ्ख्यायन आरण्यक के तीसरे अध्याय से छठे अध्याय तक।
3. संहितोपनिषद्।
4. वर्षा का सम्पादन करने वाला गवामयन नामक यज्ञ का जो अन्तिम दिन अथवा उसके समीप दिन में (पूर्वदिन) है।

5. शाङ्ख्यायन श्रौत सूत्र में।
6. ग्यारह सौ में।
7. बिल्व फल से मणि निर्माण की प्रक्रिया का, काल का तथा स्वरूप का।
8. तेरहवें, चौदहवें अध्याय में।
9. आचार्य का वंश वर्णन है।
10. गुणाख्य शाङ्ख्यायन है।
11. कौहल कौषीतकि है।

6.4

1. यजुर्वेद से।
2. यहाँ आत्म तत्त्व का विशेष विवेचन होने से।
3. मैत्रायणी उपनिषद्।

6.5

1. अरण यह अर्थ है।
2. यथाक्रम से भाव, शिक्षा, ब्रह्मविद्या।
3. नारायणीय।
4. सात, आठ, नौ प्रपाठक में।
5. दूसरे प्रपाठक में।
6. यज्ञ के संकेत नाम उपलब्ध है।
7. छः।
8. सूर्य।
9. संध्या में प्रयुक्त सूर्य अर्घ के जल की महिमा का वर्णन है।
10. अनुवाकों में।
11. तवलकार आरण्यक।
12. जैमिनीय उपनिषद् ब्राह्मण।
13. चौथे अध्याय के दसवें अनुवाक में।
14. शौनक।
15. शौनक से।

6.6

1. वेद।
2. उपनिद, गीता, ब्रह्मसूत्र।
3. 'सर्वोपनिषदो गावो दोग्धा गोपालनन्दनः।
   पार्थो वत्सः सुधीर्भोक्ता दुद्धं गीतामृतं महत्।।'
4. बादरायण के द्वारा।
5. विशरण, अगति, अवसादन अर्थ।
6. उप पूर्वक, नि पूर्वक से षद् धातु से क्विप करने पर उपनिषद् शब्द की उत्पति होती है।
7. अठारह सौ से भी अधिक।
8. दस।
9. 'ईश-केन-कठ-प्रश्न-मुण्ड-माण्डूक्य-तित्तिरिः।
   ऐतरेयं च छान्दोग्यं बृहदारण्यकं दश।।'
10. एतरेय-कौषीतकि।
11. तैत्तिरीय, महानारायण, कठ, श्वेताश्वतर, मैत्रायणी उपनिषद् ईशावास्य उपनिषद् बृहदारण्यक।
12. उपनिषद् अत्यधिक सरल शैली में तत्त्व को ग्रहण कराते है।
13. **'आत्मानं रथिनं विद्धि शरीरं रथमेव तु।**
    बुद्धिं तु सारथिं विद्धि मनः प्रग्रहमेव च।।
    इन्द्रियाणि हयानाहुर्विषयांस्तेषु गोचरान्।
    आत्मेन्द्रियमनोयुक्तं भोक्तेत्याहुर्मनीषिणः।।'
14. चार प्राचीन गद्य उपनिषद्, प्राचीन पद्य उपनिषद्, उत्तरकालिक गद्य उपनिषद्, अथर्वण उपनिषद्।
15. कठ उपनिषद्, ईश उपनिषद्, श्वेताश्वतर उपनिषद् और महानारायण उपनिषद्।
16. प्रश्न उपनिषद्, मैत्रायणीय उपनिषद् और माण्डूक्य उपनिषद्।
17. कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेत् शतं समाः'।
18. २५०० सौ वि. पूर्व।

।। छठा पाठ समाप्त।।

7

वेदाङ्ग साहित्य

अङ्ग शब्द की व्युत्पत्ति अत्यन्त 'उपकारक' है। 'अङ्ग्यन्ते ज्ञायन्ते अमीभिरिति अङ्गानि' अर्थात् जिससे किसी भी वस्तु के स्वरूप ज्ञान में सहायता प्राप्त होती है, उसको अङ्ग कहते हैं। वेद स्वयं ही एक अत्यधिक कठिन विषय है उसके अर्थ ज्ञान में उसके कर्मकाण्ड के प्रतिपादन में जो उपयोगी शास्त्र है वे ही वेदाङ्ग होते है। वेदाङ्गों का ज्ञान सम्पूर्ण वेद ज्ञान के लिए अत्यंत आवश्यक ही है। और उनका विवरण इस अध्याय में करते है।

उद्देश्य

इस पाठ को पढकर आप सक्षम होंगे :

- शिक्षा ग्रन्थों के विषय में विस्तार से जान पाने में;
- निघण्टु ग्रन्थों के विषय में अधिकता से जान पाने में;
- अन्य वेद के अङ्गों के विषय में जान पाने में; और
- यास्क के निरुक्त विषयक ज्ञान को ग्रहण कर पाने में।

7.1 भूमिका

'अङ्ग्यन्ते ज्ञायन्ते अमीभिरिति अङ्गानि' इति व्युत्पत्ति से अङ्ग शब्द का अर्थ होता है 'उपकारक' इति। अर्थात् जिस किसी भी वस्तु से स्वरूप ज्ञान में सहायता होती है, उस अङ्ग को इस प्रकार से कहते हैं। वेद स्वयम् ही एक कठिन विषय है। वेद अर्थ के ज्ञान के लिए उसके कर्मकाण्ड के प्रतिपादन के लिए जो उपयोगी शास्त्र हैं वे ही वेदाङ्ग होते हैं। वेद का यथार्थ ज्ञान लाभ के लिए छः विषयों का ज्ञान अपेक्षित होता है। वेद मन्त्रों का उचित प्रकार से उच्चारण

टिप्पणियाँ

ही सबसे पहली आवश्यक वस्तु है। यह शब्द मन्त्रों का यथार्थ उच्चारण के लिए प्रवर्तमान वेदाङ्ग को शिक्षा इस नाम से जाना जाता है। वेद का मुख्य प्रयोजन ही वैदिक कर्मकाण्ड का और याग का यथार्थ अनुष्ठान है। इस अर्थ में प्रवृत्त अङ्ग को कल्प इस प्रकार कहते हैं। कल्प की व्युत्पत्ति प्राप्त अर्थ होता है – **'कल्प्यते समर्थ्यते यागप्रयोगोऽत्र'** इति। व्याकरण ही वेदों का रक्षक है, वेदार्थ के जानने में सहायक है, और भी प्रकृति प्रत्यय उपदेश के पद स्वरूप का प्रतिपादक है, उससे अर्थ निर्णायक साधनों में सबसे श्रेष्ठ साधन होने से उसका प्रयोग होता है, इस कारण से ही व्याकरण नाम वेदाङ्ग नितान्त ही प्रसिद्ध है, और वेदाङ्गों में श्रेष्ठ स्थान को सुशोभित करता है। वैदिक पदों की व्युत्पति ही निरुक्त का विषय है। ''निरुच्यते निश्शेषेण उपदिश्यते तत् तदर्थावबोधनाय पदजातं यत्र तन्निरुक्तम्'' इस प्रकार कहते हैं। वेद छन्दों बद्ध होते हैं। इस कारण उनके उच्चारण के लिए छन्द का ज्ञान अत्यन्त आवश्यक है। वरुण के विषय में शुनःशेप ऋषि का यह प्रसिद्ध मन्त्र है –

'निषाद धृतव्रतो वरुणः पस्त्यास्वा।
साम्राज्याय सुक्रतुः॥'

यज्ञ भाग अनेक प्रकार का है। कुछ यज्ञ संवत्सर सम्बन्धित होते हैं और कुछ ऋतु सम्बन्धित होते हैं। और कुछ तिथि, मास, पक्ष, नक्षत्र परक होते हैं। उससे ज्योतिष-नाम के वेदाङ्ग का भी अपना वैशिष्ट्य है।

संक्षेप से वैदिक मन्त्रों का यथार्थ उच्चारण के लिए शिक्षा का, कर्मकाण्ड का, और यज्ञीय अनुष्ठान के निमित्त के लिए कल्प का, शब्दों के रूप ज्ञान के लिए, व्याकरण का अर्थ ज्ञान के लिए और निर्वचन के लिए निरुक्त का, वैदिक छन्दों का ज्ञान लाभ के लिए छन्द का तथा अनुष्ठान के उचित काल निर्णय के लिए ज्योतिष शास्त्र का प्रयोजन है।

आधुनिक इतिहासकारों का कथन है की इन छः वेदाङ्गों का निर्माण भी वैदिक युग के उत्तरार्द्ध भाग में ही हुआ था। शिक्षा, व्याकरण, कल्प, निरुक्त, छन्द, और ज्योतिष ये छः वेदाङ्गों के नाम है। पाणिनीय शिक्षा में कहा है –

शिक्षा कल्पो व्याकरणं निरुक्तं छन्दसां चयः।
ज्योतिषामयनं चैव वेदाङ्गानि षडेव तु॥
छन्दः पादौ तु वेदस्य हस्तौ कल्पोऽथ पठ्यते।
ज्योतिषामयनं चक्षुर्निरुक्तं श्रोत्रमुच्यते॥
शिक्षा घ्राणं तु वेदस्य मुखं व्याकरणं स्मृतम्।
तस्मात् साङ्गमधीत्यैव ब्रह्मलोके महीयते॥ **(पा. शि. ४१/४२)**

पतञ्जलि ने भी कहा है – 'ब्राह्मणेन निष्कारणो धर्मः षडङ्गों वेदोऽध्येयो ज्ञेयश्च' इति।

इन छः वेदाङ्गों का उल्लेख गोपथ ब्राह्मण, बौधायन धर्मसूत्र, गौतम धर्मसूत्र, रामायण के समान प्राचीन ग्रन्थों में उपलब्ध होता है। इससे उनकी प्राचीनता सिद्ध होती है। बुद्ध के अवतार से प्राचीन काल को उत्तर वैदिक काल होने का निर्धारण पण्डित लोग करते हैं। वेदों के भाषा और भाव

दोनों ही कठिन है। उससे वेद अर्थ को जानने के लिए वेदाङ्गों की अपेक्षा होती है। वेदार्थ बोध के लिए सहायक होने से उनका उपकार स्पष्ट ही है।

पाठगत प्रश्न 7.1

1. अङ्ग शब्द की व्युत्पत्ति प्राप्त अर्थ क्या है?
2. अङ्ग शब्द का विग्रह लिखो?
3. कल्प की व्युत्पत्ति प्राप्त अर्थ क्या है?
4. छ अङ्ग कौन-कौन से हैं?
5. पतञ्जलि ने वेदाङ्ग के विषय में क्या कहा है?

7.2 शिक्षा

जिससे वेद मन्त्रों के उच्चारण शुद्ध होते हो उस शास्त्र को शिक्षा कहते हैं। वेद में स्वर की प्रधानता सभी को विदित ही है, और स्वर ज्ञान शिक्षा से ही होता है। इसलिए ही यह शिक्षा शास्त्र को वेदाङ्ग कहते हैं। तैत्तिरीय उपनिषद् के आरम्भ में शिक्षा शास्त्र का प्रयोजन कहा है की - अब शिक्षा की व्याख्या करेंगे - वर्ण, स्वर, मात्रा, बल, साम, सन्तान ये शिक्षा अध्याय हैं। वहाँ अकार आदि हि वर्ण, उदात्त आदि हि स्वर, ह्रस्व आदि हि मात्रा, स्थान और प्रयत्न बल, निषाद आदि साम, और विकर्षण आदि सन्तान हैं। इसको जानने के लिए ही शिक्षा का प्रयोजन है।

जैसे वैदिक विधानों को पूर्ण करने के लिए ब्राह्मण ग्रन्थ का उपयोग करते हैं वैसे ही उच्चारण प्रयोजन के लिए शिक्षा का भी उपयोग होता है। अथवा वेदों का वैदिक साहित्य के अध्ययन-अध्यापन विषय -विधियों का निर्देश शिक्षा शास्त्र में किया है। स्वर वर्ण आदि के उच्चारण किस प्रकार से करने चाहिए इस विषय में उपदेश शिक्षा शास्त्र देते हैं। सायण के ऋग्वेद भाष्य भूमिका में कहा है - **'स्वरवर्णाद्युच्चारणप्रकारो यत्र शिक्ष्यते उपदिश्यते सा शिक्षेति।'**

वेदपाठ के समय में शुद्ध उच्चारण और स्वर विधि होनी चाहिए। अशुद्ध उच्चारण युक्त और गलत स्वर वेदपाठ अत्यधिक हानिकारक होती है। उससे महाविनाश भी होता है। इच्छित फल के लिए यज्ञ याग उपासना आदि जो कार्य करते हैं, अशुद्ध उच्चारण से उस कार्य से विशिष्ट लाभ कभी भी नहीं होता है। उस प्रकार का अशुद्ध उच्चारण युक्त कार्य तो बड़ी विपत्ति को ही उत्पन्न करता है। सुना जाता है की प्राचीन काल में 'इन्द्रशत्रुर्वर्धस्व' इस मन्त्र का अशुद्ध उच्चारण किया, उससे यजमान के लिए तो महाविनाश ही हुआ। पाणिनीय शिक्षा में कहा है -

''मन्त्रों हीनः स्वरतो वर्णतो वा, मिथ्याप्रयुक्तो न तमर्थमाह।
स वाग्वज्रो यजमानं हिनस्ति, यथेन्द्रशत्रुः स्वरतोऽपराधात्॥''

वेद उच्चारण का यथार्थत्व जैसा होना चाहिए, उससे सही स्वर ज्ञान की अपेक्षा होती है। उदात्त, अनुदात्त, स्वरित भेद से स्वर तीन प्रकार के हैं। 'उच्चैरुदात्तः', 'नीचैरनुदात्तः', 'समाहारः स्वरितः', इन सूत्रों में पाणिनि ने उन तीनों स्वरों के लक्षण कहे हैं। 'अनुदात्तपदमेकवर्ज्यम्' इस पाणिनीय सूत्र में कहा है की वेद के प्रत्येक पद में अवश्य ही कुछ उदात्त स्वर होते हैं, और शेष स्वर अनुदात्त होता है। उन अनुदात स्वरों में ही परिस्थिति विशेष होने से स्वरित दूसरा स्वर बनता है। स्वर प्रधानता का कारण वेदों में है, उन स्वरों का अर्थ नियन्त्रण है। किस प्रकार से स्वरों से अर्थ नियन्त्रणकारी होता है यह ऊपर के उदाहरण में कहा ही है। वेदों में शुद्ध उच्चारण सबसे पहले आवश्यक होता है। और उसका शुद्ध उच्चारण शिक्षा शास्त्र में उपदेश दिया है। इस कारण से ही छः वेदाङ्गों में शिक्षा नाम अङ्ग की प्रधानता बताई है। शिक्षा के अभिमत विषय प्रातिशाख्यों में देखते हैं और प्रातिशाख्य ग्रन्थ शिक्षा शास्त्र की प्राचीनता के प्रतिनिधि ही हैं। संहिता पाठ से सम्बन्धित सभी विषयों का वहाँ अङ्ग उपाङ्गों सहित प्रतिपादन किया है।

शिक्षा शास्त्र का इतिहास बहुत प्राचीन है। परन्तु उस विषयक प्राचीन ग्रन्थ उपलब्ध नहीं होते हैं। श्री वाचस्पति गैरोला अपने इतिहास में लिखते है की - सत्यकेतुविद्यालङ्कार का यह मत है की जैगीषव्य का शिष्य बाभ्रव्य शिक्षा शास्त्र का जनक हैं। महाभारत के शान्ति पर्व में आचार्य गालव द्वारा शिक्षा ग्रन्थ का उल्लेख प्राप्त होता है। पूना में भण्डारकर शोध संस्थान से भारद्वाज शिक्षा का प्रकाशन हुआ है। और वहाँ नागेश्वर भट्ट की टीका है। नागेश्वर मत के द्वारा वह ग्रन्थ भारद्वाज ने लिखा है। शिक्षासङ्ग्रह नामक ग्रन्थ में बत्तीस -शिक्षा पुस्तकों का सङ्ग्रह प्राप्त होता है। चारों वेदों की भिन्न भिन्न शाखाओं में शिक्षा का सम्बन्ध है। श्रीबलदेव-उपाध्याय ने अपने 'वैदिक साहित्य और संस्कृति' - इस नाम के ग्रन्थ में याज्ञवल्क्य शिक्षा, वासिष्ठी शिक्षा आदि बीस ग्रन्थों का उल्लेख दिया है। आजकल प्राप्त पाणिनीय शिक्षा प्राचीन शिक्षासूत्रों की सहायता से रचना की गई है ऐसा बुद्धिमानों का विचार है। आज के युग में स्वामि दयानन्द ने पाणिनीय शिक्षा का उद्धार किया है। और यह भी यहाँ स्मरण रखना चाहिए की यह शुक्ल यजुर्वेद में याज्ञवल्क्य शिक्षा, सामवेद में नारदीय शिक्षा, अथर्ववेद में माण्डूकी शिक्षा, और ऋग्वेद में पाणिनीय शिक्षा प्राप्त होती है। इनसे भिन्न अन्य कोई दूसरी शिक्षा प्राप्त नहीं होती है।

पाठगत प्रश्न 7.2

1. तैत्तिरीय उपनिषद् में शिक्षा विषय में क्या कहा है?
2. सायण ने ऋग्वेद भाष्य भूमिका में क्या कहा है?
3. जैगीषव्य का शिष्य कौन है?
4. उदात्त-अनुदात्त-स्वरित-बोध कराने वाला पाणिनीय के दो सूत्रों को लिखिए।
5. महाभारत के शान्ति पर्व में कौन से शिक्षा ग्रन्थ का उल्लेख है?
6. कुछ शिक्षा ग्रन्थों के नाम लिखिए।

7.2.1 शिक्षा साहित्य

यहाँ 'शिक्षा'-शब्द का अर्थ होता है वैदिक मन्त्रों के उच्चारण विधि को सिखाने वाले ग्रन्थ है। शिक्षा प्रातिशाख्य का परस्पर सम्बन्ध विषय में एक मत नहीं है। शिक्षा का साहित्य पर्याप्त रूप से विशाल है। प्रधान शिक्षा का संक्षिप्त परिचय देने का प्रयास किया है -

7.2.2 व्यासशिक्षा

इस ग्रन्थ के ऊपर महामहोपाध्याय-पण्डित वैङ्कटराम शर्मा द्वारा रचित वेद तैजस नाम की व्याख्या ग्रन्थ उपलब्ध है।

7.2.3 भरद्वाजशिक्षा

तैत्तिरीय संहिता के साथ इस ग्रन्थ का सम्बन्ध है। यह ग्रन्थ संहिता शिक्षा इस नाम से व्यवहार में लाया गया है। इस ग्रन्थ का प्रधान लक्ष्य ही संहिता पदों की शुद्धता ही है। उसके लिए विशिष्ट नियमों का इस ग्रन्थ में विवरण है। कुछ विशिष्ट शब्दों का सङ्कलन भी विद्यमान है। तैत्तिरीय संहिता में वृजिन् -शब्द का अर्थ उपलब्ध होता है। किन्तु जकार का उदात्त स्वर युक्त होने पर अकार युक्त वृजन इस प्रकार होता है **(वृजने 'ज' उदात्तश्चेद् अकारेण सहोच्यते)**। इस प्रकार से पर्शु-शब्द अन्तोदात्त हो तो 'परशु' इस रूप में जाना जाता है। इस प्रकार से ही यहाँ नियम प्रदर्शित है। अक्षर क्रम से ग्रन्थ का सङ्कलन है। शिक्षा के अन्य विषयों का यहाँ पर अभाव है। यह शिक्षा प्राचीन प्रतीत होती है। श्री निवास दीक्षित द्वारा रचित सिद्धान्त शिक्षा भी इस शिक्षा के विषय प्रतिपादन में ही अनुसरण करती है।

7.2.4 पाणिनीयशिक्षा

यह शिक्षा अत्यन्त प्रसिद्ध और लोकप्रिय है। लौकिक के और वैदिक के शास्त्रों के लिए यह शिक्षा नितान्त उपयोगी होने से अधिक महत्त्वपूर्ण है। इस ग्रन्थ में साठ श्लोक है। इन श्लोकों में उच्चारण विधि सम्बद्ध विषयों का संक्षिप्त किन्तु उपयोगी विवरण दिया हुआ है। इस ग्रन्थ के रचयिता का नाम आज भी अज्ञात ही है। ग्रन्थ के अन्त में पाणिनि का उल्लेख दाक्षी पुत्र नाम से किया है।

'शङ्करः शाङ्करीं प्रादात् दाक्षीपुत्राय धीमते।
वाङ्मयेभ्यः समाहृत्य देवीं वाचम् इति स्थितिः॥' **(पा. शि. ४६)**

इस उल्लेख से स्पष्ट होता है की पाणिनि इस ग्रन्थ के लेखक नहीं है। पाणिनि मत के अनुयायी किसी वैयाकरण ने इस उपयोगी ग्रन्थ का निर्माण किया है। इस ग्रन्थ के ऊपर अनेक प्रकार की टीका भी उपलब्ध होती है। परिमाण में छोटी होने पर भी सारभूत होने से इसके अनुशीलन से संस्कृत भाषा में उपयोगी विषय का सुन्दर ज्ञान प्राप्त कर सकते है। शिक्षासङ्ग्रह नाम के ग्रन्थ में इकट्ठे प्रकाशित बत्तीस शाखाओं का समूह है। ये शिक्षा चारों वेदों की विभिन्न शाखा से सम्बद्ध है। इन शिक्षाओं का ही यहाँ संक्षिप्त वर्णन देते हैं।

टिप्पणियाँ

7.2.5 याज्ञवल्क्यशिक्षा

परिमाण से यह शिक्षा बड़े आकार में है। यहाँ दो सौ बत्तीस (२३२) श्लोक हैं। इसका सम्बन्ध शुक्ल यजुर्वेद की वाजसनेयी शाखा के साथ है। इस शिक्षा में वैदिक स्वरों का उदाहरण के साथ विशिष्ट और विस्तृत वर्णन प्राप्त होता है। लोप-आगम-विकार-प्रकृतिभाव आख्यानों के चार प्रकार सन्धियों का भी यहाँ विवेचन किया है। वर्णों के विभेद-स्वरूप-साम्य-वैषम्य आदि का भी वर्णन इस शिक्षा में किया है।

7.2.6 वासिष्ठीशिक्षा

इसका भी सम्बन्ध वाजसनेयी संहिता के साथ ही है। इस संहिता में ऋग मन्त्र यजु मन्त्र के भेद का अत्यधिक विस्तार से वर्णन किया है। इस शिक्षा के अनुसार से सम्पूर्ण शुक्ल यजुर्वेद की संहिता में ऋग्वेद के १२६७ मन्त्र हैं। यहाँ यजुर्वेद की संख्या २८२३ है। यह संख्या विभाग इस वेद के अध्ययन कर्ताओं के लिए अत्यन्त उपयोगी होता है।

7.2.7 कात्यायनीशिक्षा-

इस शिक्षा में केवल तेरह श्लोक हैं। जयन्त स्वामी नाम के किसी विद्वान ने इसकी टीका को लिखा था।

7.2.8 पाराशरीशिक्षा

इस शिक्षा में एक सौ साठ (१६०) श्लोक हैं। इस ग्रन्थ में भी सन्धि-स्वर-वर्ण आदि के विषयों पर विवेचन किया है।

7.2.9 माण्डव्यशिक्षा

इस शिक्षा का सम्बद्ध शुक्ल यजुर्वेद के साथ है। इस ग्रन्थ में वाजसनेयी संहिता में प्रयुक्त नाम औष्ठ्य वर्णों का सङ्ग्रह विद्यमान है। अत्यधिक परिश्रम से समस्त संहिता का अध्ययन करके उपयोगी इस ग्रन्थ को लिखा है। सामान्य शिक्षा ग्रन्थों से इस ग्रन्थ की विशिष्टता भी स्पष्ट ही है। स्वर का और वर्ण का विचार नहीं करके केवल होठ से उच्चारित वर्णों का ही यहाँ सङ्ग्रह किया है।

7.2.10 अमोघानन्दिनीशिक्षा

इस ग्रन्थ में एक सौ तीस (१३०) श्लोक है। यहाँ स्वर का और वर्ण का सूक्ष्म विचार किया है। इस ग्रन्थ का संक्षिप्त संस्करण भी है। इस संस्करण में केवल सत्तरह श्लोक ही हैं।

7.2.11 माध्यन्दिनीशिक्षा

इस ग्रन्थ में केवल द्वित्व नियमों का ही विवेचन है। दो प्रकार का यह ग्रन्थ है, एक बड़े आकार का, दूसरा लघु आकार का। पहला गद्यात्मक है और दूसरा पद्यात्मक है।

7.2.12 वर्णरत्नप्रदीपिका

इस ग्रन्थ के रचयिता भारद्वाज वंशीय कोई अमरेश नाम का विद्वान है। इसका भी समय अज्ञात ही है। इस ग्रन्थ में दो सौ सत्ताईस (२२७) श्लोक हैं। नाम अनुरूप से ही इस ग्रन्थ में वर्ण-स्वर-सन्धि साङ्गोपाङ्ग का विवेचन है।

7.2.13 केशवीशिक्षा

इसके रचयिता आस्तिक मुनि के वंशज गोकुल दैवज्ञ का पुत्र केशव दैवज्ञ है। यहाँ दो प्रकार की शिक्षा उपलब्ध होती है। पहली शिक्षा में माध्यन्दिन शाखा से सम्बद्ध परिभाषाओं का विस्तृत विवेचन है। यहाँ प्रतिज्ञा आदि सम्पूर्ण नौ सूत्रों की विस्तृत व्याख्या उदाहरण के साथ यहाँ दी है। दूसरी शिक्षा पद्यात्मक है, यहाँ इक्कीस पद्यो में स्वर का विस्तृत विचार किया है।

7.2.14 मल्लशर्मशिक्षा

इस ग्रन्थ के रचयिता उपमन्य गोत्रीय अग्निहोत्री खगपति महोदय के पुत्र मल्लशर्मा इस नाम का कोई कान्य कुब्ज ब्राह्मण है। इस शिक्षा में चौसठ (६४) श्लोक है। लेखक के कथन अनुसार से इसकी रचना १७८१-शताब्दी है।

7.2.15 स्वराङ्कशशिक्षा

इस शिक्षा के रचयिता जयन्त स्वामी नाम का कोई विद्वान था।

7.2.16 षोडशश्लोकीशिक्षा-

श्री रामकृष्ण नाम के विद्वान ने षोडश श्लोकी शिक्षा इस नाम का एक लघु ग्रन्थ प्रणीत है, जहाँ स्वर का और व्यञ्जन का विचार किया है।

7.2.17 अवसाननिर्णयशिक्षा-

वैदिक व्याकरण सम्बन्धी पद प्रयोग नियमो के ज्ञान के लिए स्वर वर्ण आदि ज्ञान की सुलभता के लिए इस शिक्षा की रचना अनन्तदेव विद्वान ने की।

7.2.18 प्रातिशाख्यप्रदीपशिक्षा

इस पाण्डित्य पूर्ण शिक्षा शास्त्र को सदाशिव पुत्र बालकृष्ण नाम के किसी विद्वान ने की है। यह शिक्षा परिमाण में बड़ी है। यह शिक्षा शास्त्र कुछ इस प्रकार प्राचीन शास्त्र की आलोचना करके ही इसकी रचना की। इस ग्रन्थ में कुछ व्याकरण प्रयोग परक पद्य ग्रन्थ के अन्त में उद्धृत है। स्वर वर्ण आदि शिक्षा का सम्पूर्ण विषयों का सरल साङ्ग और उपाङ्ग सहित यहाँ विवेचना की है। शिक्षा शास्त्र के यथार्थ ज्ञान लाभ के लिए यह ग्रन्थ अत्यधिक उपयोगी है।

7.2.19 नारदीयशिक्षा

यह शिक्षा ग्रन्थ सामवेद से सम्बद्ध है। यह अत्यन्त विस्तृत और उपयोगी शिक्षा है। इस ग्रन्थ की शोभाकर भट्ट के द्वारा विस्तृत व्याख्या भी लिखी गई है। यह व्याख्या नितान्त प्रौढ और प्रसिद्ध है। सामवेद के स्वरों के रहस्य को जानने के लिए यह ग्रन्थ अत्यन्त उपयोगी है। सामवेद की दो दूसरी भी शिक्षा (१७) **गौतमी** (१८) और **लोमेशी शिक्षा।**

7.2.20 माण्डूकीशिक्षा

यह अथर्ववेद से सम्बद्धित शिक्षा है। इसमें एक सौ उन्नासी (१७९) श्लोक हैं। अथर्ववेद के स्वरों का और वर्णों का उचित ज्ञान के लिए यह शिक्षा अत्यन्त ही प्रशंसनीय है। कुछ अन्य भी शिक्षा ग्रन्थ प्राप्त होते हैं, जिनका नाम-निर्देश ही पर्याप्त होगा। (२०) **क्रमसन्धानशिक्षा**, (२१) **गलदृक्शिक्षा**, (२२) **मनःस्वार-शिक्षा**। इन ग्रन्थों की रचना याज्ञवल्क्य मुनि ने की है।

पाठगत प्रश्न 7.3

1. भरद्वाज शिक्षा का अन्य नाम क्या है?
2. पाणिनीय शिक्षा में कितने श्लोक है?
3. याज्ञवल्क्य शिक्षा में किसका विवेचन किया है?
4. वासिष्ठी शिक्षा का सम्बन्ध किस संहिता के साथ है?
5. कात्यायनी शिक्षा में कितने श्लोक हैं?
6. पाराशरीशिक्षा में कौन से विषयों पर विवेचना की है?
7. अमोघनन्दिनीशिक्षा में कितने श्लोक हैं?
8. केशवीशिक्षा का रचयिता कौन है?
9. मल्लशर्मशिक्षा का रचयिता कौन है?
10. माण्डूकीशिक्षा किस वेद से सम्बद्धित है?

7.3 कल्प

वेदों का दूसरा अङ्ग कल्प है। ब्राह्मण काल में याग का उतना प्रचार हुआ की उनका यथावत ज्ञान के लिए पूर्ण परिचय देने वाले ग्रन्थों की आवश्यकता अनुभव हुई। उन आवश्यकता को ही कम शब्दों के द्वारा पूरा करने के लिए कल्प सूत्रों की रचना हुई। वेद विहित कर्मों की व्यवस्था के लिए क्रम पूर्वक कल्प शास्त्र में कल्पना की। और कहा -

'कल्पो वेदविहितानां कर्मणामानुपूर्व्येण कल्पनाशास्त्रम्'। इति।

कल्पसूत्र दो प्रकार के होते हैं - **श्रौतसूत्र और स्मार्त्तसूत्र**। वेद युक्त याग विधानों के प्रकाशक ही श्रौतसूत्र है। स्मार्त्तसूत्र भी दो प्रकार के है - गृह्यसूत्र और धर्मसूत्र।

श्रौतसूत्र में अग्नित्रय आधान, अग्निहोत्र, दर्शपूर्णमास, पशुयाग और अनेक प्रकार के सोमयाग के विषयों का उल्लेख है।

मुख्य रूप से कल्प सूत्र चार प्रकार के है -**१. श्रौतसूत्र, २. गृह्यसूत्र, ३. धर्मसूत्र, ४ और शुल्वसूत्र।**

श्रौतसूत्र में उनके अनुष्ठान आचार यागों का वर्णन विद्यमान है, जिनका सम्पादन तीन वर्णों के द्वारा अवश्य करना चाहिए। सोलह संस्कारों का विशिष्ट वर्णन भी गृह्यसूत्रों में किया है। मुख्य रूप से गृह्यसूत्र में गृह्याग्नि सम्बद्ध यागों का उपनयन विवाह श्राद्ध आदि संस्कारों का विस्तृत विवरण दिया है।

धर्मसूत्रों में धार्मिक नियम, प्रजाओं और राजा के कर्त्तव्यों की चर्चा, चार वर्ण, चार आश्रम, उनका धर्म पूर्ण रूप से निरूपण किया है। धर्मसूत्र में चार वर्णों का और आश्रमों का तथा राजा के भी कर्तव्य का निर्देश है। ये तीन ही वस्तुतः प्रधान रूप से कल्पसूत्र के मत है।

चौथा शुल्वसूत्र तो विशेष रूप से वेदि निर्माण प्रकार का प्रतिपादन करता है। इस सूत्र का वैज्ञानिक महत्त्व है। मुख्य रूप से शुल्बसूत्र भी कल्पसूत्र ही है, वह श्रौतसूत्र के अन्तर्गत आता है। शुल्व माप प्रक्रिया है। यह सूत्र ही भारतीय ज्यामिति शास्त्र का प्रवर्तक है। पाश्चात्यों के द्वारा पाइथागोरस आदि ज्यामिति शास्त्र रचे हुए है, जो कल्पना की है, वे शुल्वसूत्र को देखकर दृढ़ इच्छा करते हैं की यह ज्यामिति शास्त्र भारतीयों के द्वारा पाश्चात्य ज्यामिति शास्त्र उत्पत्ति से बहुत वर्षों पहले ही प्रकट कर दी है।

कल्पसूत्र उसका इसका सम्बन्ध बन्धन भेद युक्त है। वहाँ -

ऋग्वेद के कल्पसूत्र - आश्वलायन,और शाङ्खायन। इन दोनों ही कल्पसूत्र के श्रौतसूत्र और गृह्यसूत्र सम्मिलित विद्यमान है। शुक्ल यजुर्वेद के कल्पसूत्र - कात्यायन श्रौतसूत्र, पारस्कर गृह्यसूत्र,और कात्यायन शुल्बसूत्र है।

कृष्ण यजुर्वेद के कल्पसूत्र - बौधायनसूत्र, और आपस्तम्बसूत्र है। इन दोनों कल्पसूत्र के श्रौत गृह्य धर्म शुल्वसूत्र सभी ही हैं ये दोनों ग्रन्थ पूर्ण रूप में है।

सामवेद के कल्पसूत्र - लाट्यायन श्रौतसूत्र, और द्राह्यायण। जैमिनीय शाखा का श्रौतसूत्र, जैमिनि गृह्यसूत्र, गोभिल गृह्यसूत्र, और खादिर गृह्यसूत्र है।

सामवेद में ही आर्षेयकल्प की भी गणना होती है। यह कल्प ही मशक कल्पसूत्र नाम से भी प्रसिद्ध है। यह सूत्र लाट्यायन श्रौतसूत्र से प्राचीन है। अथर्ववेद का कल्पसूत्र - वैतान श्रौतसूत्र और कौशिकसूत्र है। वैतान सूत्र अधिक प्राचीन नहीं है, और कौशिकसूत्र में अभिचारक्रिया का वर्णन है।

पाठगत प्रश्न 7.4

1. कल्पसूत्र के दो प्रकार लिखिए।
2. स्मार्तसूत्रों के दो प्रकार लिखिए।
3. मुख्य रूप से कल्पसूत्र कितने है?
4. ऋग्वेद का कल्पसूत्र क्या है?
5. सामवेद का कल्पसूत्र क्या है?

7.4 व्याकरण

वेदों के रक्षक होने से, वेद के अर्थ का ज्ञान कराने में सहायक होने से, प्रकृति प्रत्यय उपदेश के साथ पद स्वरूप का प्रतिष्ठापक होने से अर्थ निर्णय करने के साधनों में श्रेष्ठ साधन के प्रयुक्त होने से व्याकरण नाम अङ्ग नितान्त ही महान है, और वेदाङ्गों में यह श्रेष्ठ है। **'व्याक्रियन्ते व्युत्पाहान्ते शब्दाः अनेनेति व्याकरणम्'** इति व्युत्पत्तेः व्याकरण पद का अर्थ होता है पद मीमांसाकर शास्त्र के अनुसार। व्याकरण वेद के मुख के समान समझना चाहिए –

'मुखं व्याकरणं स्मृतम्।'

भाषा लोक व्यवहार में प्रवृत्त कराती है। यदि भाषा नहीं होती तो यह जगत अन्धकार रूपी रात से ढका रहता। जैसा दण्डि ने कहा –

'इदमन्धतमः कृत्स्नं जायेत भुवनत्रयम्।
यदि शब्दाह्वयं ज्योतिरासंसारं न दीप्यते॥'

भाषा की शुद्धि में व्याकरण की अपेक्षा होती ही है। व्याकरण ज्ञान से शून्य उचित शब्दों का प्रयोग नहीं कर सकता है।

स्वयं ऋक् संहिता में इस व्याकरण शास्त्र की प्रशंसा में अनेक मन्त्र भिन्न-भिन्न स्थानों में उपलब्ध होते है। ऋग्वेद के एक अत्यन्त प्रसिद्ध मन्त्र में व्याकरण को बैल के रूप में प्रतिपादन किया है –

चत्वारि शृङ्गाः त्रयोऽस्य पादा द्वे शीर्षे सप्तहस्ता सोऽस्य।
त्रिधा बद्धो वृषभो रोरवीति महोदेवो मर्त्याम् आविवेश॥ **(ऋ. ४/५८/६)**

इत्यादि शब्दों के द्वारा उसकी प्रशंसा सुनते है। इस बैल रूप व्याकरण के चार सींग हैं – नाम-आख्यात-उपसर्ग और निपात रूप है। इसके तीन पाद है भूत-भविष्य और वर्तमान। सुप् और तिङ् दो सिर है और सात विभक्ति सात हाथ है। हृदय में, सिर में और कण्ठ में तीन जगह से

बंधा हुआ बैल शब्द करता है। इस प्रकार के व्याकरण ज्ञान से जो अनजान है, वह जानता हुआ भी नहीं जानता है, देखता हुआ भी नहीं देखता है, सुनता हुआ भी नहीं सुनता है। किन्तु जो मनुष्य व्याकरण शास्त्र को जानने वाला होता है, उसके समीप वाणी सुसज्जित कामिनी के समान आकर के सम्पूर्ण भाव से समर्पित होती है –

उतत्वः पश्यन् न ददर्श उतत्वः शृण्वन् न शृणोत्येनाम्।
उतोत्वस्मै तन्वं विसस्रे जायेव पत्ये उशती सुवासाः॥

आचार्य वररुचि ने व्याकरण शास्त्र की महानता का गान किया जब उसके अध्ययन के पांच प्रयोजन का प्रतिपादन किया तब महर्षि पतञ्जलि ने उस अध्ययन के लिए तेरह प्रयोजन बताते हैं। वह व्याकरण शास्त्र हमेशा प्राचीन शास्त्र हैं, ऐसा जानते है। व्याकरण ज्ञान शून्य साधु शब्दों का प्रयोग चाहते है। वेद की रक्षा के लिए व्याकरण अध्ययन अत्यन्त आवश्यक है। वेदों की रक्षा के लिए व्याकरण पढ़ना चाहिए, लोप, आगम, वर्ण विकार को जानने वाला ही पुरुष अच्छी प्रकार से वेदों का पालन करते हैं, ऐसा पतञ्जलि ने कहा है। वेद रक्षा क्षमता ही व्याकरण के वेदाङ्ग का भी समर्थ करता है। व्याकरण के सभी प्रयोजन बताये गये महाभाष्य में – 'रक्षोहागमलघ्वसन्देहाः प्रयोजनम्।' वेदों की रक्षा के लिए व्याकरण का अध्ययन करने चाहिए। ऊह खलु भी, न सभी लिङ्गों के द्वारा, न सभी विभक्ति के द्वारा वेद में मन्त्र पढ़े गये है, यज्ञ गत पुरुष जिसको अवश्य यथा योग्य विपरिणाम करना चाहिए,उनको अवैयाकरण यथायोग्य विपरिणाम नहीं कर सकते है। इसलिए व्याकरण पढ़ना चाहिए। इसी प्रकार अन्य भी अपभाषण, दुष्ट शब्द, अर्थज्ञान, धर्मलाभ नामकरण आदि प्रयोजनों की व्याख्या महाभाष्य में की है।

व्याकरण शास्त्र तो अत्यंत प्राचीन शास्त्र है। वैदिक मन्त्रों में उपलब्ध उस उस पद विषय की व्युत्पत्ति भी ऊपर में अभिधान अथवा समर्थ करता है –

१. **'यज्ञेन यज्ञमजयन्त देवाः'** (ऋग.१/१६४/५०)। यजयाच-इत्यादि से अनङ् है।

२. **'ये सहांसि सहसा सहन्ते'** (ऋग. ६/६६/९)। सह धातू से असुन् प्रत्यय उणादि में।

३. **'धान्यमसि धिनुहि'** (यजु. १/२०)। धिनोतेर्धान्यम्, महाभारते में।

४. **'केतपूः केतं नः पुनातु'** (यजु. ११/७)। और क्विप्।

५. **'तीर्थैस्तरन्ति'** (अथर्व. १८/४/७)। पातृतुदिव... इति स्थक।

व्याकरणशास्त्र के प्रमाणभूत आचार्य पतञ्जलि ने व्याकरणशास्त्र के ऊपर निर्दिष्ट प्रयोजन वर्णन 'चार सींग', 'चार वाणी', 'उतत्वः', 'सक्तुमिव', 'सुदेवोऽसि' – इत्यादि मन्त्र पांच उद उद्धरण दिया। पतञ्जलि के भी प्राचीनतर यास्क ने भी 'चत्वारि वाक्' इत्यादि मन्त्र की व्याख्या व्याकरण शास्त्र परक ही की है। व्याकरण यह पद यस्मात् धातु से निष्पन्न होती है, उसका भी मूल अर्थ यजुर्वेद में है – 'दृष्ट्वा रूपे व्याकरोत् सत्त्वाऽनृते प्रजापतिः' इस वाक्य में प्रयुक्त प्राप्त होते है।

व्याकरणशास्त्र की उत्पत्ति अधिकृत तो निश्चितता से कुछ भी कहना असम्भव है। यह तो कह सकते है की उपलब्ध वैदिक पदपाठो से पहले ही व्याकरण शास्त्र पूर्णता को प्राप्त हुआ। प्रकृति

प्रत्यय धातु उपसर्ग और समास पदों का विभाग करने से निर्धारित होता है कि उसके बीते हुए काल को अनेक शताब्दी बीत गई। वाल्मीकि रामायण के रचना काल में व्याकरण शास्त्र का अध्ययन और अध्यापन अच्छी प्रकार से प्रचलित था जो निम्न श्लोक बता रहे है –

'नूनं व्याकरणं कृत्स्नमनेन बहुधा श्रुतम्।
बहु व्याहरताऽनेन न किञ्चिदपशब्दितम्॥'

इत्यादि श्लोकों से विदित होता है। महाभारत युद्धकाल वर्तनि यास्क निरुक्त में बहुत व्याकरण आचार्यों का उल्लेख देखते हैं। आचार्य शाकटायन ने तो अपना व्याकरण यास्क से भी पहले लिखा था। तैत्तिरीयसंहिता में इस विषय का सबसे प्रथम तथा प्राचीनतम उल्लेख प्राप्त होता है –

'वाग् वै पराच्य व्याकृताऽवदत्। ते देवा इन्द्रम् अब्रुवन् – इमां नो वाचं व्याकुर्विति। सोऽब्रवीत् – वरं वृणे, मह्यं चौवेष वायवे च सह गृह्यता इति। तस्माद् ऐन्द्रवायवः सह गृह्यते। तामिन्द्रो मव्यातोः वक्रम्य व्याकरोत्। तस्मादियं व्याकृता वामुद्यते।' (तै.सं.६।४।७।३)।

आचार्य पतञ्जलि ने अपने महाभाष्य में लिखा है –

'बृहस्पतिश्च वक्ता। इन्द्रश्च अध्येता। दिव्यं वर्षसहस्रम् अध्ययनकालः। अन्तं च न जगाम।' (महाभाष्य में पस्पशाह्निकम्)।

इस प्रकार अगाह और अनन्त शब्द वर्ण है। इसलिए ही पण्डित समाज में एक प्रचलित और प्रसिद्ध गाथा है –

'समुद्रवद् व्याकरणं महेश्वरे तदर्धकुम्भोद्धरणं बृहस्पतौ।
तद्भागभागाच्च शतं पुरन्दरे कुलाग्रबिन्दूत्पतितं हि पाणिनौ॥'

पतञ्जलि मुनि ने लिखा है –

'पुरा कल्प एतद् आसीत् संस्कारोत्तरकालं ब्राह्मणा व्याकरणं स्माधीयते।' इससे भी व्याकरण के प्रति लोक की प्रवृत्ति दीर्घ काल से थी ऐसा जाना जाता है।

जब कोई भी भाषा व्यवहार में दीर्घ काल से चली आ रही है तब उस भाषा का ज्ञान व्याकरण मन्त्र के द्वारा जाना नहीं जा सकता है। व्याकरण ही भाषा का स्वरूप सङ्घटन और सभी का ज्ञान कराता है। उस व्याकरण से ही भाषा ज्ञान लाभ के लिए सभी अष्ट शक्ति ग्राहकों के मध्य में सबसे उच्च स्थान पर बैठते है। व्याकरण का नितान्त ही उपयोग और श्रेष्ठता वहाँ वहाँ देखनी चाहिए उसकी महिमा विद्वानों के द्वारा बताई गई है –

'यद्यपि बहुनाधीषे तथापि पठ पुत्र व्याकरणम्।
स्वजनः श्वजनो मा भूत् सकलं शकलं सकृच्छकृत्॥
शब्दशास्त्रमनधीत्य यः पुमान् वक्तुमिच्छति वचः सभान्तरे।
बन्धुमिच्छति वने मदोत्कटं हस्तिनं कमलनालतन्तुना॥'

व्याकरण को अनेक वैयाकरणों व महर्षियों के द्वारा लिखा गया है। उस व्याकरण कर्ताओं में विद्वानों में - इन्द्र, चन्द्र, काशकृत्स्न, आपिशलि, शाकटायन, पाणिनि, अमर, जैनेन्द्र, ये आठ बहुत ही प्रसिद्ध हैं। केवल इन आठ ही व्याकरण कर्ताओं का व्याकरण नहीं है, अपितु अन्य आचार्यो का भी व्याकरण सुना जाता है। जैसे - कौमार सारस्वत और शाकल व्याकरण। व्याकरणकारों का और इसलिए व्याकरण को अधिकृत करके इन दो श्लोक की रचना की है। -

'इन्द्रश्चन्द्रः काशकृत्स्नापिशली शाकटायनः।
पाणिन्यमरजैनेन्द्रा जयन्त्यष्टादिशाब्दिकाः॥
ऐन्द्रं चान्द्रं काशकृत्स्नं कौमारं शाकटायनम्।
सारस्वतं चापिशलं शाकलं पाणिनीयकम्॥'

और अन्य आठ व्याकरण कर्ता -

'प्रथमं प्रोच्यते ब्राह्मं द्वितीयमैन्द्रमुच्यते।
याम्यं प्रोक्तं ततो रौद्रं वायव्यं वारुणं तथा॥
सावित्रञ्च तथा प्रोक्तमष्टमं वैष्णवं तथा।'

(भविष्यपुराण में ब्राह्मपर्वणि)

लघु त्रिमुनि कल्पतरु करने पर तो नौ व्याकरण को स्मरण करते हैं -

'ऐन्द्रं चान्द्रं काशकृत्स्नं कौमारं शाकटायनम्।
सारस्वतं चापिशलं शाकलं पाणिनीयकम्॥'

इन व्याकरणों में आठ प्रकार के नाम ही प्रसिद्ध हैं। जैसे भास्कर के द्वारा कहा गया है - 'अष्टौ व्याकरणानि षट् च भिषजां व्याचष्टा ताः संहिताः' इस प्रकार भविष्य पुराण में उक्त व्याकरण तो प्रसिद्ध है। ऐन्द्र आदि ही प्रसिद्ध है।

इनके निर्देश के द्वारा इन्द्र ने व्याकरण की रचना की यह वर्णन प्रकट ही होता है। यह व्याकरण ग्रन्थ रूप में था इसके भी प्रमाण प्राप्त होते हैं। जैसे - नन्दिकेश्वर काशिका-वृत्ति में तत्त्वविमर्शनी व्याख्या में उपमन्यु के द्वारा लिखा गया है - **'तथा चोक्तम् इन्द्रेण अन्तर्वर्णसमुद्भूता धातवः परिकीर्तिता इति।'**

वररुचि ने ऐन्द्र निघण्टु इसके आरम्भ में ही इसका निर्देश किया है -

'पूर्वं पद्मभुवा प्रोक्तं श्रुत्वेन्द्रेण प्रकाशितम्।
तदबुधेभ्यो वररुचिः कृतवानिन्द्रनामकम्॥'

वोपदेव ने संस्कृत के मान्य व्याकरण सम्प्रदायों में प्रथम स्थान इन्द्र के लिए ही दिया है -

'इन्द्रश्चन्द्रः काशकृत्स्नापिशली शाकटायनः।
पाणिन्यमर्जैनेन्द्रा जयन्त्यष्टादिशाब्दिकाः॥'

सारस्वत प्रक्रिया में अनुभूति स्वरूप आचार्य के द्वारा कहा कहा गया है –

'इन्द्रादयोऽपि यस्यान्तं न ययुः शब्दवारिधेः।
प्रक्रियां तस्य कृत्स्नस्य क्षमो वक्तुं कथं नरः॥'

डॉ. वर्नल महोदय के कथन अनुसार से तमरल भाषा का आदि व्याकरण तोलकप्पिय इस नाम वाले व्याकरण में ऐन्द्र व्याकरण से ही सहायता ली गई है। वररुचि ने 'भवन्ती', 'अद्यतनी', 'हस्तनी' इत्यादि पारिभाषिक शब्दों का उल्लेख किया है, वे पाणिनि के 'लट्, लुङ्, लिट्' इत्यादि शब्दों से प्राचीन है। इनका प्रयोग ऐन्द्र व्याकरण में भी है ऐसा अनुमान किया जाता है।

'वर्तमाने लट् (३/२/१२३)-वार्तिक-प्रवृत्तस्य विरामे शिष्या भवन्त्यावर्तमानत्वात्। भवन्तीति लटः पूर्वाचार्यसंज्ञा' (कैयट)।

गोपथ ब्राह्मण में व्याकरण विषयों का निर्देश है। स्पष्ट रूप से व्याकरण शास्त्र का इतिहास देखने से ज्ञात होता है की भारत में प्राचीन अनेक व्याकरण कर्ता आचार्य थे। वहाँ आपिशलि, शाकटायन, गालवेन्द्र आदि व्याकरण कर्ताओं का उल्लेख किया है। परन्तु आजकल तो पाणिनीय व्याकरण ही प्राप्त होता है। उनका बनाया हुआ ग्रन्थ– अष्टाध्यायी सभी अङ्गों में सुललित होकर के विराजमान है। वहाँ वैज्ञानिक पद्धति से व्याकरण का प्रतिपादन किया है। जितनी सुललित देववाणी का शास्त्रीय विवेचन वहाँ देखते हैं, अन्य जगह उस प्रकार की सुललिता दिखाई नहीं देती है। वहाँ लौकिक वैदिक दोनों प्रकार के व्याकरण को बताया गया है।

पाठगत प्रश्न 7.5

1. व्याकरण शब्द की व्युत्पत्ति को लिखिए।
2. इदमन्धतमः कृत्स्नम् इत्यादि श्लोक किसने लिखा है?
3. व्याकरण के शरीर की किस अङ्ग से तुलना की है?
4. ऋग्वेद में व्याकरण के किस रूप का प्रतिपादन किया है?
5. व्याकरण कर्ताओं में अनेक विद्वानों के अनुसार कितने वैयाकरण सुप्रसिद्ध है, और वे कौन कौन है?

7.5 निरुक्त

निरुक्त में कहते है उसे जो विशेष रूप से उपदेश देता है और उसके अर्थों का बोध कराने के लिए पदजात का जहाँ वर्णन किया है उसे निरुक्त कहते हैं। निरुक्त निघण्टु की महत्त्वपूर्ण टीका है। निघंटु में वेद के कठिन शब्दों का संकलन है। निघण्टु ग्रन्थ की सङ्ख्या विषय में पर्याप्त मतभेद है। आजकल उपलब्ध निघण्टु ग्रन्थ एक ही है, परन्तु प्राचीन परम्परा के अनुशीलन से

ज्ञात होता है की निघण्टु ग्रन्थ अनेक है। (द्रष्ट. दुर्गावृत्ति पृ. ३) निरुक्त के आरम्भ में 'निघण्टुम्' 'समाम्नाय' इस पद से ज्ञात होता है। उसके द्वारा इसकी प्राचीनता प्रमाणित होती है। महाभारत के मोक्षधर्म पर्व अनुसार से इस निघण्टु के रचयिता प्रजापति कश्यप थे –

'वृषो हि भगवान् धर्मः ख्यातो लोकेषु भारत।
निघण्टुकपदाख्याने विद्धि मां वृषमुत्तमम्॥
कपिर्वराहः श्रेष्ठश्च धर्मश्च वृष उच्यते।
तस्माद् वृषाकपिं प्राह कश्यपो मां प्रजापतिः॥'

(महा. मो. ध. प. अ. ३४२, श्लो. पृ. ८६-८७)

वर्तमान में निघण्टु ग्रन्थ में 'वृषाकपि' शब्द लिखा हुआ प्राप्त होता सङ्गृहीत है। इसलिए पहले कहे हुए कथन के अनुसार से ज्ञात होता है की महाभारत काल में इस निघण्टु ग्रन्थ के निर्माता पद से प्रजापति कश्यप ही प्रसिद्ध थे। निघण्टु में पांच अध्याय हैं। आदि के तीन अध्याय नैघण्टुक काण्ड इस नाम से जाने जाते हैं। चौथा अध्याय नैगम काण्ड नाम से, पांचवा अध्याय दैवत काण्ड इस पद से जाना जाता है। पहले तीन अध्यायों में पृथ्वी आदि बोध कराने वाले अनेक शब्दों का एक जगह ही सङ्ग्रह है। दूसरे काण्ड को एकपदी भी कहते हैं। नैगम इस पद का यह तात्पर्य है की इनकी प्रकृति प्रत्यय का यथार्थ ज्ञान नहीं होता है – अनवगतसंस्कारांश्च निगमान्। दैवत काण्ड में देवता के स्वरूप स्थान का निर्देश प्राप्त होता है।

7.5.1 निघण्टु-व्याख्याकार

अभी निघण्टु ग्रन्थ की एक ही व्याख्या उपलब्ध होती है। इस व्याख्या के रचयिता देवराजयज्वा है। इनके दादा जी का नाम भी देवराजयज्वा ही था। इनके पिता का नाम यज्ञेश्वर है। यह विद्वान रंगेशपुरी इस नाम की प्रसिद्ध नगर के पास में किसी भी गाँव के निवासी थे। नाम से प्रतीत होता है की ये विद्वान दक्षिणभारत के निवासी थे। इनके समय के विषय में दो मत प्रचलित है। कुछ विद्वानों के मत में यह विद्वान सायण से बाद में थे, किन्तु वास्तव में सायण से यह पहले ही थे। आचार्य सायण के द्वारा ऋग्वेद के मन्त्र का (१/६२/३) अपने भाष्य में निघण्टु भाष्य वचन का उल्लेख किया है। यह उल्लेख देवराजयज्वा के भाष्य में भी कुछ पाठान्तर के रूप में उपलब्ध होता है। इस भाष्य से अतिरिक्त कोई भी अन्य निघण्टु भाष्य विद्यमान नहीं है। देवराजयज्वाने अपने भाष्य के उपजीव्य के रूप में क्षीरस्वामी तथा अनन्त आचार्य की निघण्टु व्याख्या का उल्लेख किया है। जैसे – 'इदं च ..... क्षीरस्वामी अनन्ताचार्यकृतां निघण्टुव्याख्यां ..... निरीक्ष्य क्रियते।' अनन्ताचार्य का यहाँ पर ही प्रथम उल्लेख हमको प्राप्त होता है। क्षीरस्वामी के मत का उल्लेख यहाँ पर अत्यधिक किया है। क्षीरस्वामी अमरकोश के प्रसिद्ध टीकाकार हैं। यज्वा का उदाहरण 'अमरकोशोद्घाटन में' एक समान ही उपलब्ध होता है। इस कारण निघण्टु व्याख्या यज्वन का अभिप्राय इस अमरकोश की व्याख्या से प्रतीत होता है। इस भाष्य का नाम – निघण्टु-निर्वचनम् इस प्रकार है। अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार से देवराजयज्वा ने नैघण्टुक काण्ड के निर्वचनों का ही अधिक विस्तार के साथ किया है (विरचयति देवराजो नैघण्टुककाण्डनिर्वचनम् –श्लो. ६)। अन्य

टिप्पणियाँ

काण्डों की व्याख्या अत्यन्त कम आकार में है। इसकी रचना में स्कन्दस्वामी के ऋग्भाष्य टीका से, और महेश्वर की निरुक्त भाष्यटीका से सहायता ग्रहण की है। प्राचीन प्रमाण से भी सुन्दर उद्धरण और अनेक उदाहरण है। सायण से पूर्ववर्ति होने से इस व्याख्या का तथा निरुक्त में विशेष महत्त्व है।

7.5.2 निरुक्तकाल

निरुक्तयुगम् – निघण्टुकाल के बाद निरुक्त का समय प्रारम्भ होता है। दुर्गाचार्य के अनुसार से निरुक्तों की चौदह संख्या थी। ('निरुक्तं चतुर्दशप्रभेदम्'–दुर्गवृ. १/१३)। यास्क के निरुक्त में बारह निरुक्त कर्ताओं के नाम और उनके मत का निर्देश है। इनका नाम अक्षर क्रम से ही है –१. अग्रायण, २. औपमन्यव, ३. औदुम्बरायण, ४. और्णवाभ, ५. काथक्य, ६. क्रौष्टुकि, ७. गार्ग्य, ८. मालव, ९. तैटिकि, १०. वार्ष्यायणि, ११. शाकपूणी, १२. और स्थौलाष्ठिवि है। तेरहवे स्वयं यास्क ही हैं। इन तेरह आचार्यों के अतिरिक्त चौदहवां आचार्य कौन है। यह तो अज्ञात ही है। इन ग्रन्थकारों में शाकपूर्णी का मत अधिक उद्धृत है। बृहद्देवता में भी इस मत का उल्लेख प्राप्त होता है। बृहद्देवता में तथा पुराणों में शाकपूर्णी रथीतर शाकपूर्णि–नाम से जाने जाते हैं।

7.5.3 यास्क का निरुक्त

निरुक्त वेदों के छः अङ्गों में अन्यतम है। आजकल यास्क रचित निरुक्त ही इस वेदाङ्ग का प्रतिनिधि ग्रन्थ है। इस निरुक्त में बारह अध्याय हैं। अन्त में दो अध्याय परिशिष्ट रूप से हैं। इस प्रकार से सम्पूर्ण ग्रन्थ यह चौदह अध्यायों में विभक्त है। परिशिष्ट भाग भी बाद का है ऐसा कह नहीं सकते है। क्योंकि यास्क के समान उव्वट भी परिशिष्ट भाग से परिचित थे। उव्वट ने अपने यजुर्वेद भाष्य में (१८/७७), निरुक्त में (१३/१३) उपलब्ध वाक्य का निर्देश किया है। इस कारण यह अंश भोजराजा से प्राचीन अपने आप सिद्ध है। यास्ककृत निरुक्त तो निघण्टु ग्रन्थ की व्याख्या है। अतः यह वेदाङ्ग नहीं हो सकता इस आशङ्का का समाधान के लिए – 'अर्थावबोधे निरपेक्षतया पदजातं यत्रोक्तं तन्निरुक्तम्।' अन्यच्च– 'एकैकस्य पदस्य सम्भाविता अवयवार्था यत्र निःशेषेण उच्यन्ते तद् अपि निरुक्तम्।' अतः इसका वेदाङ्गत्व सिद्ध ही है।

यास्क के प्राचीन होने में लेश मात्र भी सन्देह नहीं है। पाणिनि से भी प्राचीन ये है। संस्कृत भाषा का जो विकास यास्क के निरुक्त में प्राप्त होता है, वह पाणिनि की अष्टाध्यायी में व्याख्या रूप से प्राचीनतर है। महाभारत के मोक्षपर्व अनुसार से निघण्टु कर्ता यास्क नहीं थे। इसके रचयिता कोई प्रजापति काश्यप थे –

'वृषो हि भगवान् धर्मः ख्यातो लोकेषु भारत।
निघण्टुकपदाख्याने विद्धि मां वृषमुत्तरम्।
कपिर्वराहः श्रेष्ठश्च धर्मस्य वृष उच्यते।
तस्माद् वृषाकपि प्राह कश्यपो मां प्रजापतिः॥'

(महा.मो.प.अ.३४२, श्लो. ८६–८७)

वहाँ ही निघण्टु के व्याख्याता यास्क थे, यह प्रमाण भी उपलब्ध है –

'लिपिविष्टेति चाख्यायां हीनरोमा च योऽभवत्।
तेनाविष्टं तु यत्किञ्चित् शिपिविष्टेति च स्मृतः॥
यास्को मामृषिरव्यग्रोऽनेकयज्ञेषु गीतवान्।
शिपिविष्ट इति ह्यस्माद् गुह्यनाम परोह्यहम्॥
स्तुत्वा मां शिपिविष्टेति यास्कः ऋषिरुदारधीः।
मत्प्रसादादधोनष्टं निरुक्तमधिजग्मिवान्॥'

(म.भा.शा. प. श्लो. ६९-७१)

इत्यादि प्रमाणित यास्क का क्या काल है इस विचार में प्रस्तुत किये है, क भाग में) महाभारत के ऊपर लिखे दो पद्यों का उद्धरण उस अर्वाचीन महाभारत से है, ख) पाणिनि ने अपने **वासुदेवार्जुनाभ्यां वुन्** ४/३/९८ इस सूत्र में कृष्ण अर्जुन को याद किया है उससे यह प्राचीन है। पाणिनि पाण्डुपुत्र अर्जुन से परवर्त्ती सिद्ध होते है। पाण्डुपुत्रों का समय तो राजतरङ्गिणी में ही वर्णित है –

'शतेषु षट्सु साऽर्धेषु त्र्यधिकेषु च भूतले।
कलेर्गतेषु वर्षाणामभवन् कुरुपाण्डवाः॥'

यह सभी को विचार करना चाहिए ईस्वी से नौ सौ वर्ष पहले यास्क हुए ऐसा प्रतीत होता है। यास्क के इस ग्रन्थ की आवश्यकता अत्यधिक है। ग्रन्थ के आरम्भ में यास्क ने निरुक्त के सिद्धान्त का वैज्ञानिक प्रदर्शन किया। वेद के अर्थ अनुशीलन के लिए तब अनेक पक्ष थे। जिनके नाम इस प्रकार से दिये हुए है – १) अधिदैवत, २) अध्यात्म, ३) आख्यातसमय, ४) ऐतिहासिक, ५) नैदान, ६) नैरुक्त, ७) परिव्राजक, ८) और याज्ञिक।

इस मत निर्देश से वेदार्थ अनुशीलन के इतिहास के ऊपर विशिष्ट रूप से बल दिया गया है। यास्क का प्रभाव बाद के समय के भाष्य के ऊपर है। सायण तो इस पद्धति का अनुसरण करके वेदभाष्य रचना में प्रवृत हुए। यास्क की प्रक्रिया आधुनिक भाषावेत्ता प्रधान रूप से मानते है। निरुक्त का एकमात्र प्रतिनिधि होने से निरुक्त ग्रन्थ का सबसे अधिक महत्त्व है।

पाठगत प्रश्न 7.6

1. निघण्टु में कितने अध्याय हैं?
2. निघण्टु के पांचवे अध्याय में कौन सा काण्ड है?
3. निघण्टु ग्रन्थ के एक किसी व्याख्याकार का नाम उल्लेख है?
4. क्षीर स्वामी कौन है?

टिप्पणियाँ

5. निरुक्त में किन निरुक्तकारों का नाम है?
6. शाकपूर्णि को पुराणों में किस नाम से जाना जाता है?
7. निरुक्त में कितने अध्याय है?

7.6 छन्द

छन्द वेद का पाँचवां अङ्ग है। वेद छन्दोबद्ध हैं, अतः उनके उच्चारण निमित्त के लिए छन्द का ज्ञान हमेशा अपेक्षित होता है। छन्द अभिधान इस अङ्ग से छन्दों के सभी उच्चारण विधि, उसके प्रकार और उसकी संख्या का ज्ञान होता है। उससे वैदिक मन्त्र उच्चारण के प्रयोजन के लिए छन्द का अध्ययन पहले करना उचित है। बिना छन्दोज्ञान से जो वेदों का अध्ययन, यजन, याजन आदि-कार्य करते है उनके वे सभी फल न देने वाले कार्य होते हैं।

कात्यायन ने यहाँ पर स्पष्ट रूप से कहा है –

'यो ह वा अविदितार्षेयच्छन्दो दैवतब्राह्मणेन मन्त्रेण याजयति वा अध्यापयति वा स्थाणुं वर्च्छति गर्त्ये वा पात्यते प्रमीयते वा पापीयान् भवति।' (सर्व अनुक्रमणी १।१)

संहिता ब्राह्मणों में छन्द का नाम उपलब्ध होने से छन्द अङ्ग की भी उत्पत्ति वैदिक युग में ही प्रतीत होती है। इस वेदाङ्ग का प्रतिनिधि-ग्रन्थ है पिङ्गल आचार्य द्वारा 'छन्द:सूत्रम्'। इस ग्रन्थ की रचना कब हुई। इसका पर्याप्त परिचय का अभाव है। यह ग्रन्थ सूत्र रूप में है। यह ग्रन्थ आठ अध्यायों में विभक्त है। प्रारम्भ से चौथे अध्याय के सात सूत्र तक वैदिक छन्दों का लक्षण दिया है। इस ग्रन्थ की हलायुध कृत 'मृतसञ्जीवनी' व्याख्या अत्यन्त प्रसिद्ध है।

लौकिक काव्यों में छन्द का और पादबद्धता का सम्बन्ध इस प्रकार है की पद्यों में ही छन्दों की योजना मानते हैं, तथा गद्य तो छन्दोहीन रचना रूप से स्वीकार होता है। वैदिक छन्द विषय में यह धारणा मान्य नहीं है। प्राचीन आर्य परम्परा के अनुसार से गद्य भी छन्दोबद्ध रचना ही मानते हैं। दुर्गाचार्य ने निरुक्त की अपनीवृति में (७।२) किसी भी ब्राह्मण का वाक्य उदाहरण के रूप में लिखा है, जिसका आशय है छन्द के बिना वाणी अच्छी प्रकार से उच्चारण नहीं कर सकती है- **'नाच्छन्दसि वागुच्चरति'**। भरतमुनि ने भी छन्द के बिना शब्द को स्वीकार नहीं किया है –

'छन्दहीना न शब्दोऽस्ति, न छन्दः शब्दवर्जितम्।' **(ना.शा.१४।४५)**

कात्यायन मुनि के नाम से प्रख्यात ऋग यजुर्वेद परिशिष्ट में पहले बताये तथ्य को स्वीकार किया है –

'छन्दोभूतमिदं सर्वं वाङ्मयं स्याद् विजानतः।
नाच्छन्दसि न चापृष्टे शब्दश्चरति कश्चन॥'

पहले बताये मत के अनुसार से वेद का कोई भी इस प्रकार का मन्त्र नहीं है, जो छन्द के माध्यम से निर्मित नहीं है। फल स्वरूप यजुर्वेद के मन्त्र भी निश्चय रूप से गद्यात्मक है, वह भी छन्द

से रहित नहीं है। उनके द्वारा ही प्राचीन आचार्यों ने प्रथम अक्षर से आरम्भ करके १०४ अक्षर तक छन्दों का विधान अपने -अपने ग्रन्थों में किया है (द्रष्ट०-'वैदिकछन्दोमीमांसा' पृ. ८।९, रच० युधिष्ठिरमीमांसक)।

ऋग्वेद के और सामवेद के सभी मन्त्र छन्दोंबद्ध हैं। हृदय में स्थित कोमल भावनाओं की अभिव्यक्ति का नैसर्गिक माध्यम छन्द ही है। अन्तःस्थल का मर्म स्पर्श भाव की अभिव्यक्त करने के लिए कविगण छन्दों की कोमल कलेवर का ही अन्वेषण करता है। मन्त्रों का प्रधान उद्देश्य यज्ञों में उपास्य देवता के अनुकूल कार्य में ही है, तथा यह भी निश्चय से कह सकते है की देवता के अनुकूल प्रमुख साधन मन्त्रों का गान ही हो सकता है। मन्त्रों के छन्दोबद्ध होने से छन्दों के ज्ञान के विना वेद मन्त्र का सही उच्चारण नहीं कर सकते है, अतः छन्द इस वेदाङ्ग को अवश्य जानना चाहिए। शौनक विरचित ऋक्प्रातिशाख्य में अंतिम भाग में छन्दों की पर्याप्त विवेचन विद्यमान है। इन छन्दःशास्त्र में पिङ्गल छन्दसूत्र नाम ग्रन्थ सबसे अधिक प्रसिद्ध है। 'छन्दःपादौ तु वेदस्य'।

'छन्द' इस पद की इस प्रकार की व्युत्पत्ति है - छन्दयति (पृणाति) इति छन्दों वा छन्दयति (आह्लादयति) इति छन्दः अथवा छन्द्यते अनेनेति छन्दः। छन्दांसि च्छादनात् इस यास्क कथन के होने से वेदार्थ वाचक छन्द इस पद की उत्पत्ति छद् (छादने) धातु से बनी है। वेद आवरण होने से छन्द यह पद युक्त ही है। दुर्गाचार्य ने कहा है - **'यदेभिरात्मानमाच्छादयन् देवा मृत्योर्बिभ्यतः, तत् छन्दसां छन्दस्त्वम्।'**

यह वाक्य छान्दोग्य उपनिषद् में भी पाठ भेद से प्राप्त होता है (१।४।२)। 'छन्दांसि छादनात्' (नि० ७।१९) इसके ही अर्थ की पुष्टि के लिए दुर्गाचार्य का पूर्वोक्त वाक्य है। वेदों में छन्दों की महानता के गीत बार-बार गाये। असुरों के द्वारा किये गए विघ्नों से रक्षा करने वाले उस, शक्तिशाली सैनिक के समान मत है। और कहा - **'दक्षिणतोऽसुरान् रक्षांसि त्वष्ट्रान्यपहन्ति त्रिष्टुब्जिर्वज्रो वैरविष्टुद्'।** वैदिक छन्दों में अनेक भेद, उपभेद होते है। प्रधान वैदिक छन्दों में इनकी गणना होती है - गायत्री, उष्णिक्, अनुष्टुप्, प्रकृति, बृहती, पङ्क्ति, त्रिष्टुप्, जगती, अतिजगती, शक्वरी, अतिशक्वरी, कृति, आकृति, विकृति,संस्कृति, अभिकृति, और उत्कृति। वैदिक छन्दों में यह विशिष्टता है की उनमें अक्षर गणना में निश्चित अक्षर होते हैं। वहाँ अक्षरों के गुरु लघु क्रम का कोई नियम विशेष नहीं हैं। और कात्यायन ने कहा है - **'यदक्षरपरिमाणं तच्छन्दः।'** किन्तु लौकिक संस्कृत के छन्दों में यह बात नहीं है। वहाँ तो वृत्त के अक्षरों के छोटे बड़े में निश्चित ही है। शताब्दियों के बाद लौकिक छन्दों का विकास पहले के वैदिक छन्दों से ही हुआ इस प्रकार याद रखना चाहिए। लौकिक छन्दों के चार चरण होते है, किन्तु वैदिक छन्दों में यह नियम नहीं होते हैं।

पाठगत प्रश्न 7.7

1. छन्दः शब्द की व्युत्पत्ति क्या है?
2. कात्यायन ने छन्दों के विषय में क्या कहा है?

3. छन्द की शरीर के किस अङ्ग के साथ तुलना की है?
4. लौकिक छन्दों में कितने चरण होते है?
5. छन्द शास्त्र के प्रवर्तक कौन है?

7.7 ज्योतिष

यज्ञभाग अनेक प्रकार के हैं। कुछ यज्ञ संवत्सर संबन्धित हैं। और कुछ ऋतु संबन्धित है। और कुछ तिथि-मास-पक्ष-नक्षत्र परक है। यह भाव देवों में यज्ञभाग आदि के विधान भिन्न-भिन्न कालों में प्राप्त होते हैं। तैत्तिरीय ब्राह्मण कहता है -

'वसन्ते ब्राह्मणोऽग्निमादधीत, ग्रीष्मे राजन्य आदधीत। शरदि वैश्य आदधीत'

(तै. ब्रा. १।१)।

अष्टकाय में, फाल्गुनि में और पूर्णमास में दीक्षा का विधान का वर्णन किया है ताण्ड्य ब्राह्मण में दीक्षा के बारे में कहा गया है - **'एकाष्टकायां दीक्षेरन् फाल्गुनीपूर्णमासे दीक्षेरन्'** (ताण्ड्यब्रा. ५।९।१७)। प्रातः और शाम को अग्नि में दुग्ध आज्य के साथ हवन का विधान है - **'प्रातर्जुहोति, सायं जुहोति'** (तै.ब्रा. २।१।२)। यज्ञ की सफलता में केवल उचित विधान में ही नहीं है अपितु उचित समय के नक्षत्र की भी आवश्यकता होती है। असुरों की परिभाषा का निर्देश करते हुए वेद का वचन है - **'ते असुरा अयज्ञा अदक्षिणा अनक्षत्राः। यञ्च किञ्चाकुर्वत तां कृत्यामेवाकुर्वत।'** इसके विधान के लिए वेद आज्ञा पालन के लिए ज्योतिष शास्त्र का ज्ञान होने पर ही यथायोग्य हो सकता है। उससे ज्योतिष नाम वेदाङ्ग का भी अपना वैशिष्ट्य है। यह ज्योतिष काल के विषय में बताने वाला शास्त्र है। मुहूर्त आदि का शोध करके करने योग्य यज्ञ आदि क्रिया विशेष फल के लिए कल्पना करते हैं, अन्यों की नहीं, और उस मुहूर्त ज्ञान को ज्योतिष कहते हैं, अतः इस ज्योतिष शास्त्र को वेदाङ्ग स्वीकार किया है। आर्च ज्योतिष में यह अर्थ कहा है -

'वेदा हि यज्ञार्थमभिप्रवृत्ताः कालानुपूर्वा विहिताश्च यज्ञाः।
तस्मादिदं कालविधानशास्त्रं यो ज्योतिषं वेद स वेद यज्ञान्॥'

चारों वेदों के भी अलग-अलग ज्योतिष शास्त्र थे, उनमे सामवेद का ज्योतिष शास्त्र उपलब्ध नहीं होता है, अन्य तीनों वेदों के ज्योतिष शास्त्र प्राप्त होते हैं।

१. ऋग्वेद के ज्योतिष शास्त्र है - आर्चज्योतिष, षट्त्रिंशत्पद्यात्मक।

२. यजुर्वेद का ज्योतिष शास्त्र है - याजुषज्योतिष, ऊनचत्वारिंशत्पद्यात्मक।

३. अथर्ववेद के ज्योतिष है - आथर्वणज्योतिष, द्विषष्टि-उत्तरशतपद्यात्मक।

इन तीनों ज्योतिष शास्त्रों के भी लेखक लगध नाम के आचार्य है। वहाँ याजुषज्योतिष के प्रमाण के लिए दो भाष्य भी प्राप्त होते है, एक सोमाकर द्वारा रचित प्राचीन है, दूसरा सुधाकर द्विवेदी

द्वारा नवीन रचना है। इस ज्योतिष शास्त्र के तीन वर्त्म है, जिससे इस शास्त्र को त्रिस्कन्ध कहते है। और कहा है –

'सिद्धान्तसंहिताहोरारूपं स्कन्धत्रयात्मकम्
वेदस्य निर्मलं चक्षुर्ज्योतिश्शास्त्रमनुत्तमम्॥'

लगध–प्रणीत वेदाङ्ग ज्योतिष ग्रन्थ के श्लोकों का रहस्य क्या है, इस विषय का यथार्थ जानने के लिए विद्वानों के लिए भी कठिन है। इस ग्रन्थ की रचना के विषय में ३४०० वर्ष बीत गए ऐसा शङ्कर बालदीक्षित का विचार है। लोकमान्यतिलक, सुधाकर द्विवेदि, डॉ. थीवो आदि विद्वानों ने इस ग्रन्थ के श्लोको की व्याख्या करने का प्रयत्न किया है। भारतीय ज्योतिष शास्त्र का यह आदि ग्रन्थ है। मानते है, उससे पहले ज्योति के विषय में किसी ने कभी भी कोई भी रचना नहीं लिखी थी। वेदाङ्ग ज्योतिष शास्त्र के कर्त्ता असन्दिग्ध रूप से लगध ही थे।

'प्रणम्य शिरसा कालमभिवाद्य सरस्वतीम्।
कालज्ञानं प्रवक्ष्यामि लगधस्य महात्मनः॥' **(आर्चज्योतिष श्लो.)**

किन्तु यह लगध कौन है। इस विषय में कोई भी नहीं जानते है। यज्ञ विधान के लिए ज्योतिष शास्त्र का इस महत्त्व को भास्कर आचार्य ने भी स्वीकार किया है –

'वेदास्तावत् यज्ञकर्मप्रवृत्ता यज्ञाः प्रोक्तास्ते तु कालाश्रयेण।
शास्त्रादस्मात् कालबोधो यतः स्यात् वेदाङ्गत्वं ज्योतिषशास्त्रस्योक्तमस्मात्॥'

(सिद्धन्तशिरोमणि)

वेदाङ्ग ज्योतिष के मत में ज्योतिष का स्थान वेदाङ्गों में सबसे ऊचा स्थान है –

'यथा शिखामयूराणां नागानां मणयो यथा।
तद्वत् वेदाङ्गशास्त्राणां गणितं मूर्धनि स्थितम्॥' **(वेदाङ्गज्यौ. ४)**

काल के साथ यह शास्त्र संहिता गणित जातक आख्यान तीन भागों में अपने को प्रकट किया है। आर्यभट्ट, वराहमिहिर, ब्रह्मगुप्त, भास्कर आचार्य आदि अनेक प्रतिभाशाली विद्वान, विश्व को जानने वाले ज्योतिष आचार्यो ने अद्भुत सिद्धान्तों को लिखकर इस शास्त्र को नये रूप से विभूषित किया है। ये तीन काल की वर्तनी भी स्थिति को यथावत करती है। इससे अतीत और भविष्य काल में स्थित वस्तु को प्रत्यक्ष किया जा सकता है। सत्य है इसकी महिमा के वर्णन में कहा गया है –

'वेदस्य निर्मलं चक्षुः ज्योतिःशास्त्रमकल्मषम्।
विनैतदखिलं श्रौतं स्मार्तं कर्म न सिद्ध्यति॥'

सभी दर्शन, सम्पूर्ण शास्त्र, और सभी उपनिषद् जिनका परम रहस्य भूत वेदों की सौन्दर्य सुधा को निरन्तर पीते हुए भी तृप्त नहीं होते हैं, उन वेदों का अनुशीलन करने का प्रयत्न किया है जैसे साकल्य, आत्रेय, गार्ग्य, स्कन्दस्वामि, माधवभट्ट, नारायण, उद्गीथ, वेङ्कटमाधव, आनन्दतीर्थ,

भट्टस्वामि, गुरुदेव, क्षुर, भट्टभास्करमिश्र, उव्वट, महीधर, भरतस्वामी, गुणविष्णु, सायण आदि ने प्रेम से और भक्ति से हमेशा ही प्रयास किया है, वैसे ही विदेशी विद्वानों ने भी वेद के अमृत को पीने के लिए उनकी व्याख्या करने का अथवा पढ़ने का प्रयत्न किया है।

वेद के छः अङ्गों में ज्योतिष नाम का अङ्ग निश्चित रूप से महत्त्वपूर्ण अङ्ग है। यज्ञों के प्रतिपादन के लिए ही वेद प्रवृत्त हुए हैं। उन यज्ञों का विधान उचित काल में किया जाता है तो उसका फल प्राप्त करते हैं। ज्योतिष शास्त्र यज्ञ विधान के लिए उचित काल का निर्देश करता है उससे यह शास्त्र तत्कालविधायक शास्त्र इस नाम से और ज्योतिष नाम से भूमि पर सभी जगह प्रख्यात है।

पाठगत प्रश्न 7.8

1. ऋग्वेद का ज्योतिष क्या है?
2. यजुर्वेद का ज्योतिष क्या है?
3. अथर्ववेद का ज्योतिष क्या है?
4. आर्चज्योतिष में क्या कहा है?
5. वेदाङ्ग ज्योतिष शास्त्र के कर्त्ता कौन है?
6. ज्योतिष कितने प्रकार का है?
7. वेद का निर्मल नेत्र क्या है?
8. ज्योतिष शास्त्र का अन्य नाम क्या है?

पाठ का सार

धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष – ये चार पुरुषार्थ हैं। इन पुरुषार्थों की प्राप्ति के लिए ही मनुष्य हमेशा घूमता रहता है। अङ्ग सहित वेद के अध्ययन से ये प्राप्त कर सकते हैं। इसलिए अङ्ग सहित वेद ही पढ़ने चाहिए। अन्यथा केवल वेदाध्ययन से सामूहिक ज्ञान पाठक के मन में उत्पन्न नहीं होता है। अतः शिक्षा शास्त्र से वेद मन्त्रों का शुद्ध उच्चारण पूर्वक – वेदपाठ से वेद की महिमा कीर्तन और वेद की रक्षा सम्भवता हो सकती है। कर्मज्ञान के लिए तथा यज्ञ विधान ज्ञान के लिए कल्प शास्त्र का पाठ करना चाहिए। व्याकरण ज्ञान के विना तो वेद मन्त्र का क्या कहना है। वहाँ वाङ्मय मात्र का ही ज्ञान नहीं हो सकता है। विशेष रूप से कहा की निरुक्त का ज्ञान भी अत्यन्त आवश्यक है। छन्द ज्ञान से वेद का उचित पाठ होता है, पढने वाले के मन में आनन्द उत्पन्न होता है। ज्योतिष शास्त्र यज्ञ विधान के युक्त काल का निर्देश करता है, उससे ज्योतिष शास्त्र की सभी जगह मान्यता है। इन वेदाङ्गों को सही समझ करके वेद पढ़े तो सम्पूर्ण फल को प्राप्त करते हैं।

पाठांत प्रश्न

1. छः अङ्गों में प्रधान रूप से क्या-क्या प्रतिपादन किया है?
2. वेदाङ्गों की व्याख्या कीजिए।
3. इन्द्र ने वृत्रासुर को कैसे मारा था?
4. शिक्षा शास्त्र के कुछ ग्रन्थों का निर्देश कीजिए।
5. भारद्वाज शिक्षा की व्याख्या कीजिए।
6. अपनी इच्छा अनुसार शिक्षा शास्त्र के तीन ग्रन्थ के रचयिताओं का परिचय ऊपर निर्देश के अनुसार व्याख्या कीजिए।
7. कल्प शास्त्र की व्याख्या कीजिए।
8. व्याकरण शास्त्र का विवरण दीजिए।
9. छन्द:शास्त्र की व्याख्या कीजिए।
10. ज्योतिष-शास्त्र की विस्तार से व्याख्या कीजिए।
11. यास्क के निरुक्त की व्याख्या कीजिए।

पाठगत प्रश्नों के उत्तर

7.1

1. उपकारक।
2. अङ्ग्यन्ते ज्ञायन्ते अमीभिः इति अङ्ग का विग्रह है।
3. कल्पना करते है अथवा समर्थन करते हैं याग प्रयोग का जहाँ।
4. शिक्षा, कल्प, व्याकरण, छन्द, निरुक्त, और ज्योतिष।
5. 'ब्राह्मणेन निष्कारणः धर्मः षडङ्गों वेदोंऽध्येयो ज्ञेयश्च' इति

7.2

1. अब शिक्षा की व्याख्या करेंगे - वर्ण, स्वर, मात्रा, बल, साम, सन्तान ये शिक्षा अध्याय में बताये गए है।
2. स्वर वर्ण आदि का उच्चारण प्रकार का जहाँ शिक्षा अथवा उपदेश देते है वह शिक्षा है।
3. बाभ्रव्य।

टिप्पणियाँ

4. 'उच्चैरुदात्तः', 'नीचैरनुदात्तः', और 'समाहारः स्वरितः'।
5. आचार्य गालव कृत शिक्षा ग्रन्थ।
6. व्यासशिक्षा, भारद्वाजशिक्षा, पाणिनीयशिक्षा इत्यादि।

7.3

1. संहिता शिक्षा।
2. साठ।
3. लोप, आगम, विकार, प्रकृतिभाव, आख्यानों के चार प्रकार के संधि के नाम हैं।
4. वाजसनेयी संहिता से।
5. तेरह।
6. सन्धि स्वर वर्ण आदि के।
7. एक सौ तीस (१३०)।
8. आस्तिक मुनि के वंशज गोकुलदैवज्ञ का पुत्र केशवदैवज्ञ है।
9. उपमन्यु गोत्र के अग्निहोत्री खगपति महोदय के पुत्र मल्लशर्मा इस नाम का कोई कान्यकुब्ज ब्राह्मण ने।
10. अथर्ववेद से।

7.4

1. श्रौतसूत्र और स्मार्त्तसूत्र।
2. गृह्यसूत्र और धर्मसूत्र।
3. १.श्रौतसूत्र,२. गृह्यसूत्र, ३. धर्मसूत्र, ४.और शुल्वसूत्र।
4. आश्वलायन, और शाङ्खायन।
5. लाट्यायन श्रौतसूत्र, और द्राह्यायण।

7.5

1. व्याक्रियन्ते व्युत्पाहान्ते शब्दाः अनेन इति व्याकरणम्।
2. दण्डि के द्वारा।
3. मुख से।
4. बैल रूप से।
5. आठ। इन्द्र, चन्द्र, काशकृत्स्न, आपिशलि, शाकटायन, पाणिनि, अमर, और जैनेन्द्र।

7.6

1. पांच।
2. दैवत काण्ड।
3. देवराजयज्वा ने।
4. क्षीरस्वामी अमरकोश के प्रसिद्ध टीकाकार है, और निघण्टु-निर्वचन इस ग्रन्थ के व्याख्याता हैं।
5. १. अग्रायण, २. औपमन्यव, ३. औदुम्बरायण, ४. और्णवाभ, ५. काथक्य, ६. क्रौष्टुकि, ७. गार्ग्य, ८. मालव, ९. तैटिकि, १०. वार्ष्यायणि, ११. शाकपूर्णि, १२. और स्थौलाष्ठिवि।
6. रथीतर शाकपूणि नाम से।
7. बारह।

7.7

1. छन्दयति (पृणाति) इति छन्दों वा छन्दयति (आह्लादयति) इति छन्दः अथवा छन्द्यते अनेनेति छन्दः।
2. जहाँ अक्षरों का परिमाण हो उसे छन्द कहते है।
3. पादों के साथ।
4. चार।
5. पिङ्गल ऋषि ने।

7.8

1. आर्चज्योतिष, षट्त्रिंशत्पद्यात्मक।
2. याजुषज्योतिष, ऊनचत्वारिंशत्पदात्मक।
3. आथर्वणज्योतिष, द्विषष्टि-उत्तरशतपद्यात्मक।
4. वेद ही यज्ञ अर्थ को बताते है .....इत्यादि।
5. लगध ने।
6. सिद्धान्त संहिता होरारूप स्कन्धत्रय आत्मक है।
7. ज्योतिष-शास्त्र।
8. तत्कालविधायक शास्त्र।

॥ सातवां पाठ समाप्त॥

8

साधारण स्वर-१

पाणिनीय व्याकरण में तो अन्य प्रसिद्ध व्याकरणों से स्वर विषय में चर्चा अधिक रूप से दिखाई देती है। स्वर विधायक अनेक सूत्र अष्टाध्यायी में हैं। वहाँ विद्यमान कुछ सूत्रों के द्वारा धातुस्वर का विधान है, कुछ से प्रत्यय स्वर का विधान है। अन्यों से प्रातिपदिक स्वर का विधान है। इनसे भिन्न साधारण स्वर विधायक भी अनेक सूत्र को अष्टाध्यायी में प्रयोग किया है। उन सूत्रों के द्वारा कोई विशिष्ट स्वर का विधान नहीं करते हैं, अपितु साधारणों को ही स्वरों में विधान करते हैं उन सूत्रों से वे ही सूत्र हमारे इस पाठ में संगृहीत हैं। यहाँ प्रधान रूप से कुछ उदात्त आदि स्वरों का विधान करते हैं, कुछ सूत्रों के द्वारा उन स्वरों का निषेध भी होता है। स्वर विषय का सही ज्ञान को प्राप्त करने के लिए हमारे द्वारा अवश्य ही इस साधारण स्वर प्रकरण को पढना चाहिए। इस पाठ में हम उन उदात्त, अनुदात्त, स्वरित आख्या स्वरों को और उसके विधायक सूत्रों को पढ़ेगे। इस पाठ से हम दस सूत्र पढ़ेगें।

उद्देश्य

इस पाठ को पढ़कर आप सक्षम होंगे :

- मन्त्रों के स्वर विधान के विषय में जान पाने में;
- स्वर विधायक सूत्रों को समझ पाने में;
- सूत्रों का अर्थ और उदाहरणों को समझ पाने में;
- उदाहरणों में सूत्रों के अर्थों का समन्वय कैसे होता है, इसे समझ पाने में; और
- आमंत्रित विषयों को जान पाने में।

8.1 अनुदात्तं पदमेकवर्जम्॥ (६.१.१५६)

सूत्र का अर्थ – जिस पद में जिसका उदात्त अथवा स्वरित का विधान किया जाता है, उस एक अच् को छोड़ कर शेष वे सभी पद अनुदात्त वाचक होते हैं।

सूत्र व्याख्या – छः प्रकार के पाणिनीय सूत्रों में यह परिभाषा सूत्र है। इस सूत्र में तीन पद हैं। अनुदात्तं पदम् एकवर्जम् इति सूत्र में आये पदच्छेद हैं। अनुदात्तम् यह प्रथमान्त तद्धितान्त पद है। पदम् यह प्रथमान्त पद है। एकवर्जम् यह भी प्रथमान्त पद है। अनुदात्त इसके हैं, इस अर्थ में अनुदात्त शब्द से 'अर्श-आदिभ्योऽच्' इस सूत्र से मत्वर्थीय-अच् प्रत्यय होने पर अनुदात्त यह पद निष्पन्न होता है। उसका अर्थ होता है 'अनुदात्त-अच् विशिष्ट पद है।' एकवर्जम् इस पद का 'एक को छोड़कर' यह अर्थ है। एकवर्जम्-इस पद में 'द्वितीयायां च' इस सूत्र से णमुल्-प्रत्यय होता है। परिभाषा पद उपस्थित करता है। अर्थात् परिभाषा सूत्र से अन्य सूत्र में कुछ पद को उपस्थित करते हैं, वैसे ही इस सूत्र का भी परिभाषा सूत्र होने से इस सूत्र से 'एक को छोड़कर अनुदात्त पद है'।

उस एक पद में वर्तमान अच् अनुदात्त होते हैं, एक को छोड़कर यह अर्थ प्राप्त होता है। तब जिस एक को छोड़कर अन्य अनुदात्त होते हैं ऐसा कहते हैं, वह एक अच् किस प्रकार का होता है यह शङ्का उत्पन्न होती है। वहाँ कहा जाता है कि वह अच् उदात्त अथवा स्वरित होता है। उस सूत्र का सामान्य अर्थ होता है की एक पद में जितने अच् हैं, उनमे एक उदात्त अथवा स्वरित अच् को छोड़कर अन्य सभी अच् अनुदात्त होते है।

उदाहरणम् – गोपाय नः स्वस्तये इति।

सूत्र अर्थ का समन्वय – रक्षण क्रियावाचि भ्वादिगण में पढ़ी हुई गुपू धातु से पकार के उत्तर ऊकार का 'उपदेशेऽजनुनासिक इत्' इस सूत्र से इत् संज्ञा होने पर 'तस्य लोपः' इससे लोप करने पर गुप् इस स्थिति में 'धातोः' इस सूत्र से गुप्-धातु के अन्त्य का अच् गकार के उत्तर उकार का उदात्त स्वर का विधान होता है। वहाँ गुप्-धातु से 'गुपूधूपविच्छिपणिपनिभ्य आयः' इस सूत्र से आय प्रत्यय करने पर गोपाय इस के ओकार का उकार की ही विकृत होने से उदात्तत्व होता है। गोपाय इससे आय प्रत्ययान्त होने से 'सनाद्यन्ता धातवः' इससे धातु संज्ञा में 'धातोः' इस सूत्र से गोपाय-धातु के अन्त्य अच् यकार उत्तर अकार का उदात्त स्वर का विधान है। वहाँ गोपाय धातु लोट् में मध्यम पुरुष एकवचन में सिप्-प्रत्यय करने पर प्रक्रिया कार्य में गोपाय यह रूप होता है। गोपाय यहाँ पर गकार उत्तर ओकार उदात्त है और यकार उत्तर अकार उदात्त है। उसको प्रकृत सूत्र से यकार उत्तर उदात्त अकार को छोड़कर गकार उत्तर ओकार और पकार उत्तर आकार अनुदात्त होता है। इसलिए ही गोपाय नः स्वस्तये यह प्रयोग सिद्ध होता है।

8.2 अनुदात्तस्य च यत्रोदात्तलोपः॥ (६.१.१६१)

सूत्र का अर्थ – जिस अनुदात्त के पर उदात्त का लोप होता है तो उसको उदात्त होता है।

सूत्र की व्याख्या – छः प्रकार के पाणिनीय सूत्रों में यह विधि सूत्र है। इस सूत्र से उदात्त स्वर का विधान है। इस सूत्र में चार पद विद्यमान हैं। 'अनुदात्तस्य च यत्र उदात्तलोपः' इस सूत्र में आये

टिप्पणियाँ

पदच्छेद है। वहाँ अनुदात्तस्य यह षष्ठ्यन्त पद है। च यह अव्यय पद है। यत्र यह भी अव्यय पद है। उदात्तलोपः यह प्रथमान्त समस्त पद है। उदात्त का लोप उदात्तलोप यहाँ षष्ठीतत्पुरुष समास है। 'कर्षात्वतो घञोऽन्त उदात्तः' इस पूर्वसूत्र से उदात्त इस प्रथमान्त पद की अनुवृति है। जहाँ उदात्तलोप होता है (वहाँ) अनुदात्त को उदात्त होता है इस प्रकार की पद योजना होती है। अनुदात्तस्य इस पद का जहाँ इति पद के साथ सम्बन्ध है। उससे जिस अनुदात्त के परे यह अर्थ प्राप्त होता है। इसलिए ही जिस अनुदात्त के परे होने पर उदात्त का लोप होता है, उस अनुदात्त को उदात्त होता है यह सूत्र का अर्थ प्राप्त होता है।

उदाहरण - देवीं वाचम् इति।

सूत्र अर्थ का समन्वय - पचादिगण में देवट्- इस शब्द के पाठ से दिव्-धातु को 'नन्दिग्रहिपचादिभ्यो ल्युणिन्यचः' इस सूत्र से अच्-प्रत्यय करने पर देवशब्द बनता है। अच्-प्रत्यय के चकार का 'हलन्त्यम्' इस सूत्र से इत्संज्ञा होती है, उससे अच्-प्रत्यय चित् है। उसको 'चितः' इस सूत्र से अच्-प्रत्ययान्त देव शब्द का अन्तिम अच् अकार को उदात्त स्वर की प्राप्ति होती है। इस प्रकार अन्त उदात्त देव शब्द से स्त्रीत्व की विवक्षा में 'टिड्ढाणञ्द्वयसज्दघ्नञ्मात्रच्तयप्ठक्ठञ्कञ्क्वरपः' इस सूत्र से ङीप्रत्यय होने पर देव ङीप् यह स्थिति होती है। वहाँ ङीप्रत्यय के पकार की इत संज्ञा होने से वह प्रत्यय पित् होता है। उसको 'अनुदात्तौ सुप्पितौ' इस सूत्र से ङीप्रत्यय के अवयव ईकार को अनुदात्त स्वर की विवक्षा है। वहाँ देव ई इस स्थिति में 'यचि भम्' इस सूत्र से देव इसकी भ संज्ञा होने पर 'यस्येति च' इस सूत्र से ईकार परक होने से पूर्व की भ संज्ञक देव इसके वकार के उत्तर अकार का लोप होने पर देव् ई यह स्थिति होती है। यहाँ ईकार रूप अनुदात्त के परे होने पर पूर्व अकार रूप उदात्त का लोप हुआ, उसमें प्रकृत सूत्र से उस अनुदात्त ईकार को उदात्त स्वर करने का विधान है। इसलिए देवीं वाचम् यह प्रयोग सिद्ध होता है।

४.३ चौ॥ (६.१.२२२)

सूत्र का अर्थ - अञ्चु धातु के अकार और नकार का लोप होने पर पूर्व को अन्त उदात्त होता है।

सूत्र की व्याख्या - पाणिनि के छः प्रकार के सूत्रों में यह विधि सूत्र है। इस सूत्र से उदात्त स्वर का विधान है। इस सूत्र में एक ही पद है। और उस चौ यह पद सप्तमी एकवचनान्त है। 'कर्षात्वतो घञोऽन्त उदात्तः' इस पूर्व सूत्र से 'अन्तः उदात्तः' ये प्रथमान्त के दो पदो की अनुवृति है। चौ अन्तः उदात्तः यह पद योजना होती है। चौ यहाँ पर सप्तमी है, उससे 'तस्मिन्निति निर्दिष्टे पूर्वस्य' इस परिभाषा बल से पूर्वस्य यह पद उपस्थित होता है। चौ इससे लुप्त अकार विशिष्ट अञ्चु धातु को ग्रहण करते हैं। उससे लुप्त अकार विशिष्ट होने पर अञ्चु धातु के पर होने पर पूर्व का जो अन्तिम अच् है, उसको उदात्त स्वर होता है यह सूत्र अर्थ प्राप्त होता है।

उदाहरण - देवद्रीचीं नयत देवयन्तः इति।

सूत्र अर्थ का समन्वय - देव-इस उपपद पूर्वक होने से अञ्च्-धातु को 'ऋत्विग्दधृक्स्रग्दि गुष्णिगञ्चुयुजिक्रुञ्चां च' इस सूत्र से क्विन् प्रत्यय के करने पर प्रक्रिया कार्य में देव अच् इस

स्थिति में 'विष्वग्देवयोश्च टेरद्र्यञ्चतावप्रत्यये' इस सूत्र से क्विन्प्रत्ययान्त अञ्च्-धातु से परत्व होने पर देव शब्द का अकार के स्थान में अद्रि-इस आदेश में देवद्रि अच् इस स्थिति में 'उगितश्च' इस सूत्र से स्त्रीत्व की विवक्षा में देवद्रि अच् -इस शब्द से ङीप्प्रत्यय करने पर अनुबन्ध लोप होने पर देवद्रि अच् ई इस स्थिति में 'अचः' इस सूत्र से लुप्त नकार के अञ्च धातु के अकार का लोप होने पर देवद्रि च् ई इस स्थिति में 'चौ' (६.३.१३८) इस सूत्र से लुप्त अकार अञ्च्धातु के परत्व होने से पूर्व के अणः इकार का दीर्घ होने पर देवद्रीची इस स्थिति में लुप्त अकार का अञ्च्धातु से परत्व होने पर पूर्व के देवद्री-इस अन्त्य ईकार के प्रकृत सूत्र से उदात्त स्वर की प्राप्ति होती है। उससे देवद्रीचीं नयत देवयन्तः यह प्रयोग सिद्ध होता है।

विशेष - उदात्त निवृत्ति स्वर अपवाद भूत यह सूत्र है। अर्थात् उदात्त के लोप निमित्त करने पर 'अनुदात्तस्य च यत्रोदात्तलोपः' इस सूत्र से अनुदात्त के स्थान में जो उदात्त स्वर का विधान होता है, उसका अपवाद भूत यह सूत्र है। उस देव-इस उपपद पूर्वक अञ्च्-धातु से क्विन्प्रत्यय करने पर प्रक्रिया कार्य में देव अच् इस स्थिति में 'गतिकारकोपपदात् कृत्' इससे उत्तर पद प्रकृति स्वर करने पर अञ्च्धातु का अकार उदात्त होता है। वहाँ देव शब्द के अकार के स्थान में अद्रि-यह आदेश होने पर देवद्रि अच् इस स्थिति में, वहाँ ङीप्प्रत्यय करने पर ङीप्प्रत्यय के पित्त् होने से 'अनुदात्तौ सुप्पितौ' इससे ङीप्प्रत्यय का ईकार को अनुदात्त स्वर होता है, उससे 'अचः' इससे अञ्च्धातु के उदात्त अकार का लोप होने पर 'अनुदात्तस्य च यत्रोदात्तलोपः' इस सूत्र से अनुदात्त ङीप्प्रत्यय के ईकार का उदात्त निवृत्ति स्वर प्राप्त होता है, तब उसको हटाकर प्रकृत सूत्र से उदात्त स्वर का विधान प्राप्त होता है।

पाठगत प्रश्न 8.1

1. अनुदात्तं पदमेकवर्जम् यह किस प्रकार का सूत्र है?
2. अनुदात्तं पदमेकवर्जम् इस सूत्र में अनुदात्तम् इस पद में किस अर्थ में क्या प्रत्यय है?
3. अनुदात्तं पदमेकवर्जम् इस सूत्र से किस स्वर की प्राप्ति होती है?
4. अनुदात्तस्य च यत्रोदात्तलोपः इस सूत्र का क्या अर्थ है?
5. अनुदात्तस्य च यत्रोदात्तलोपः इसका एक उदाहरण लिखिए।
6. चौ यह सूत्र किसका अपवाद है?
7. चौ इस सूत्र में चौ इस पद का क्या अर्थ है?
8. चौ इस सूत्र का एक उदाहरण लिखिए।

टिप्पणियाँ

8.4 आमन्त्रितस्य च॥ (६.१.१९८)

सूत्रार्थः – आमन्त्रित का आदि उदात्त होता है।

सूत्र की व्याख्या – छः प्रकार के पाणिनीय सूत्रों में यह विधि सूत्र है। इस सूत्र से उदात्त स्वर का विधान है। इस सूत्र में दो पद हैं। वहाँ आमन्त्रितस्य यह षष्ठी का एकवचनान्त पद है। च यह अव्यय पद है। 'कर्षात्वतो घञोऽन्त उदात्तः' इस पूर्व सूत्र से उदात्त इस प्रथमान्त पद की अनुवृति आती है। और आदिः इस प्रथमान्त पद की पूर्व सूत्र से अनुवृति आती है। उससे आमन्त्रित का आदि उदात्त होता है यह पद योजना बनाती है। आदिः इस पद को उदात्त इसका विशेषण होता है। अच् ही उदात्त आदि स्वर होते हैं। अतः इस सूत्र का अर्थ होता है की आमन्त्रित का आदि अच् उदात्त होता है।

सम्बोधन में अथवा प्रथमा, उस पद की आमन्त्रित संज्ञा होती है। 'सामन्त्रितम्' यह आमन्त्रित संज्ञा विधायक सूत्र है। जैसे देवदत्त! यह देवदत्त शब्द का सम्बोधन एकवचन का रूप है। अत देवदत्त इस पद की आमन्त्रित संज्ञा होती है।

उदाहरण – अग्नि इन्द्र वरुण मित्र देवाः इति।

सूत्र अर्थ का समन्वय – प्रस्तुत इस उदाहरण में अग्नि, इन्द्र, वरुण, मित्र, और देव ये पांच सम्बोधन पद हैं। इसलिए इन पाँच पदों की 'सामन्त्रितम्' इस सूत्र से आमन्त्रित संज्ञा होती है। वहाँ अग्नि शब्द का सम्बोधन एकवचन की विवक्षा में सु प्रत्यय होने पर अनुबन्ध लोप होने पर अग्नि स् इस स्थिति में 'एकवचनं सम्बुद्धिः' इस सूत्र से सु प्रत्यय की सम्बुद्धि संज्ञा में 'ह्रस्वस्य गुणः' इस सूत्र से सम्बुद्धि परक होने पर ह्रस्व अङ्ग संज्ञक अग्नि शब्द के अन्तिम इकार के स्थान में गुण एकार होने पर, अग्ने स् यह स्थिति होती है। वहाँ 'एङ्ह्रस्वात् सम्बुद्धेः' इस सूत्र से एङन्त अग्नि इसके पर सम्बुद्धि हल् सकार का लोप होने पर अग्ने यह पद सिद्ध होता है। वहाँ आमन्त्रित संज्ञक अग्नि इस पद के आदि अच् अकार के स्थान में प्रकृत सूत्र से उदात्त स्वर का विधान है। इसी प्रकार ही इन्द्र, वरुण, मित्र, देव, इत्यादि में भी आदि अचों को यथाक्रम इकार, अकार, इकार, और एकार को उदात्त स्वर प्रकृत सूत्र से होता है। इसलिए ही अग्ने यह प्रयोग सिद्ध होता है।

8.5 आमन्त्रितस्य च॥ (८.१.१९)

सूत्र का अर्थ – पद से उत्तर आमन्त्रित संज्ञक सम्पूर्ण पद को भी पाद के आदि मे वर्तमान न हो तो अनुदात्त होता है।

सूत्र की व्याख्या – छः प्रकार के पाणिनीय सूत्रों में यह विधि सूत्र है। इस सूत्र में दो पद हैं। आमन्त्रितस्य यह षष्ठी का एकवचनान्त पद है। च यह अव्यय पद है। 'पदस्य', 'पदात्', और 'अनुदात्तं सर्वमपादादौ' तीन सूत्रों का अधिकार आ रहा है। उस पदस्य यह षष्ठ्यन्त पद है, पदात् यह पञ्चम्यन्त पद है, अनुदात्तम् यह प्रथमान्त पद है, सर्वम् यह प्रथमान्त पद है, और अपादादौ

यह सप्तम्यन्त पद के अधिकार से प्राप्त है। अधिकार से प्राप्त अनुदात्त यह पद पुल्लिङ्ग अन्त के विपरिणाम होता है, उससे अनुदात्त होता है। इसी प्रकार ही सर्वम् यह पद षष्ठ्यन्त का विपरिणाम होता है, उससे सर्वस्य यह होता है। आमन्त्रितस्य इस पद को पदस्य इसके साथ सम्बद्ध है। पद से पाद के आदि में न हो सभी आमन्त्रित के पद को अनुदात्त होते हैं यह इस सूत्र का अर्थ होता है।

पदात् यहाँ पर पञ्चमी का निर्देश होने से 'तस्मादित्युत्तरस्य' इस परिभाषा से परस्य यह पद प्राप्त करते है। अपादादौ यहाँ पर औपश्लोषिक सप्तमी है, अत 'पाद के आदि में नहीं स्थित' का यह अर्थ प्राप्त होता है। पद से परे हो किन्तु पाद के आदि में वर्तमान नहीं है जो आमन्त्रित पद, उन सभी पद को अनुदात्त स्वर होता है यह सूत्र का अर्थ प्राप्त होता है।

उदाहरण – इमं मे गङ्गे यमुने सरस्वति शुतुद्रि स्तोमम् इति उदाहरणम्।

सूत्र अर्थ का समन्वय – इस प्रस्तुत उदाहरण में गङ्गे इति, यमुने इति, और सरस्वति इति तीन पद सम्बोधन अन्त है। इसलिए इन तीनों पदों की 'सामन्त्रितम्' इस सूत्र से आमन्त्रित संज्ञा होती है। मे इस पद से परे गङ्गे यह पद है, किन्तु वह गङ्गे पद पाद के आदि में विद्यमान नहीं है, अत: आमन्त्रित संज्ञक सम्पूर्ण गङ्गे इस पद की प्रकृत सूत्र से अनुदात्त स्वर का विधान है। इसी प्रकार ही गङ्गे इस पद से परे यमुने यह पद है, किन्तु वह यमुने पद पाद के आदि में नहीं है, अत आमन्त्रित संज्ञक सम्पूर्ण यमुने इस पद का प्रकृत सूत्र से अनुदात्त स्वर का विधान है। समान ही आमन्त्रित संज्ञक सरस्वति इस सम्पूर्ण पद का भी प्रकृत सूत्र से अनुदात्त स्वर होता है। उससे इमं मे गङ्गे यमुने सरस्वति शुतुद्रि स्तोमम् यह प्रयोग सम्भव हो सकता है।

विशेष – पद के आदि में नहीं, पद अभाव से सूत्र का अर्थ होता है की पद से पर विद्यमान सम्पूर्ण आमन्त्रित पद को अनुदात्त स्वर होता है। तब प्रस्तुत ही उदाहरण में शुतुद्रि इस पद का सम्बोधनान्त होने से 'सामन्त्रितम्' इससे आमन्त्रित संज्ञा होती है, वहाँ सरस्वति इस पद से पर आमन्त्रित संज्ञक शुतुद्रि इस सम्पूर्ण पद की प्रकृत सूत्र से अनुदात्त स्वर प्राप्त होता है, अत उसको हटाने के लिए अपादादौ यह कहा है। अत शुतुद्रि इस पद का पाद के आदि में स्थित होने से प्रकृत सूत्र से अनुदात्त स्वर नहीं होता है।

8.6 विभाषितं विशेषवचने॥ (८.१.७४)

सूत्र का अर्थ – आमन्त्रितान्त विशेषण परे होने पर पूर्व बहुवचनान्त अविद्यमान के समान विकल्प से होता है।

सूत्र व्याख्या – अतिदेश सूत्र है। इस सूत्र से अविद्यमान होने का अतिदेश देते है। इस सूत्र में दो पद विराजमान हैं। विभाषितम् यह प्रथमान्त पद है। विशेष वचन यह सप्तमी एकवचनान्त समस्त पद है। यहाँ भाष्यकार ने बहुवचनम् इस पद को जोड़कर इस सूत्र को पूर्ण किया है। 'आमन्त्रितं पूर्वमविद्यमानवत्' इस सम्पूर्ण सूत्र की यहाँ पर अनुवृति आती है। 'नामन्त्रिते समानाधिकरणे सामान्यवचनम्' इस सूत्र से समानाधिकरणे आमन्त्रिते इस सप्तमी एकवचनान्त दो पद की अनुवृति

टिप्पणियाँ

आती है। सम्बोधन में जो प्रथमा है, उस पद को वेद में आमन्त्रित कहते हैं। अतः आमन्त्रित इस पद का आक्षेप किया है। ''आमन्त्रिते समानाधिकरणे विशेषवचने'' पद में आमन्त्रित को बहुवचन पद विकल्प से अविद्यमान के समान होता है इस प्रकार की पद योजना है। विशेषवचनम् इसके विशेषण इस अर्थ में है। समानाधिकरणम् इसका समानविभक्तिकम् यह अर्थ है। आमन्त्रितं बहुवचनम् ये दोनों भी पद के विशेषण हैं। इसलिए तदन्तविधि होती है। उससे सूत्र का अर्थ आता है - आमन्त्रित अन्त में समानाधिकरण में विशेषण में पद के पर आमन्त्रित अन्त बहुवचनान्त पद विकल्प से अविद्यमान के समान होता है। इसका सामान्य अर्थ है की यदि आमन्त्रित अन्त समानाधिकरण विशेषणपद बाद में रहता है तो आमन्त्रित अन्त बहुवचन अन्त पद विकल्प से अविद्यमान के समान होता है।

यह सूत्र 'नामन्त्रिते समानाधिकरणे सामान्यवचनम्' इस पूर्व सूत्र का अपवाद है। समान अधिकरण वाले आमन्त्रित पद परे हो तो उससे पूर्ववाला आमन्त्रित पद अविद्यमान नहीं होता, किन्तु विद्यमान होता है यह उस सूत्र का अर्थ है। इस प्रकार उस सूत्र से अविद्यमानवत् का निषेध प्राप्त था। इस सूत्र से तो विशेषवाची समानाधिकरण आमंत्रित परे रहते सामान्यवचन आमन्त्रित के बहुवचन अन्त के पद को विकल्प से अविद्यमानवत्त् के समान होता है।

उदाहरण - देवीः षळुर्वीरुरु नः कृणोत।

सूत्र अर्थ का समन्वय- इस उदाहरण में देवीः यह पद सम्बोधन विभक्ति अन्त वाला है। इसलिए उसकी आमन्त्रित संज्ञा सिद्ध होती है। व्यपदेशिवद भाव को आश्रित करके देवीः इस पद की आमन्त्रित अन्तत्व होना भी सिद्ध है। और यह पद बहुवचनान्त भी है। वहाँ विद्यमान षट् इस पद को भी सम्बोधन विभक्त्यन्त होने से आमन्त्रित है। व्यपदेशिवद्भाव के आश्रित होने से षट् इस पद की भी आमन्त्रित अन्तत्व को सिद्ध करता है। और यह पद पूर्व में वर्तमान देवीः इस पद के साथ समान विभक्ति और उसका विशेषण है। इसलिए उसकी आमन्त्रित अन्त में होने से समानाधि करण विशेषण में षट्-शब्द के परे पूर्व आमन्त्रितान्त बहुवचनान्त देवीः इस पद की अविद्यमानवत्त् के समान प्रकृत सूत्र से कार्य प्राप्त हुआ। और यह अविद्यमानवत्त वैकल्पिक है। उस अविद्यमानवत्त्व पक्ष में देवीः इस पद को अविद्यमान के समान कार्य होता है। तब षट्-शब्द ही पाद के आदि में रहता है। उससे आठवें अध्याय में स्थित 'आमन्त्रितस्य च' इस सूत्र की वहाँ प्रवृति नहीं होती है। छठे अध्याय में स्थित 'आमन्त्रितस्य च' इस सूत्र से वहाँ उदात्त स्वर का विधान है। अविद्यमानवत्त्व के अभाव पक्ष में देवीः यह पद विद्यमान ही होता है। तब षट् यह पद पाद के आदि में नहीं रहता है। इसलिए आठवें अध्याय के 'आमन्त्रितस्य च' इस सूत्र से सर्वानुदात्त स्वर की प्राप्ति होती है।

8.7 सुबामन्त्रिते पराङ्गवत्स्वरे॥ (२.१.२)

सूत्र का अर्थ - आमन्त्रित संज्ञक पद के परे रहते, उससे पूर्व जो सुबन्त पद उसको पर के अंग के समान कार्य होता है स्वर विषय में।

सूत्र की व्याख्या- छः प्रकार के पाणिनीय सूत्रों में यह अतिदेश सूत्र है। इस सूत्र से अङ्ग के समान होने का आदेश है। सुप् आमन्त्रिते पराङ्गवत् स्वरे ये सूत्र में आये पदच्छेद है। इस सूत्र में चार पद है। वहाँ सुप् यह प्रथमान्त पद है। आमन्त्रिते यह सप्तमी एकवचनान्त पद है। पराङ्गवत् यह प्रथमान्त समास पद है। स्वरे यह सप्तमी एकवचनान्त पद है। सम्बोधन में जो प्रथमा है, उस पद को वेद में आमन्त्रित कहते हैं। अतः आक्षेप से इस पद की प्राप्ति होती है। सुप् आमन्त्रित पद में पराङ्गवत् स्वरे यह पदयोजना है। 'प्रत्ययग्रहणे तदन्ता ग्राह्याः' इस परिभाषा बल से सुप् इससे सुबन्त को भी ग्रहण करता है। आमन्त्रितम् यह पद का विशेषण है। अतः यहाँ तदन्तविधि होती है। पर के अङ्ग के समान 'पराङ्गवत्' यहाँ षष्ठीतत्पुरुष समास है। यहाँ अङ्ग शब्द अवयव वाचक है। कर्तव्ये इसका अध्याहार किया है। उससे आमन्त्रितान्त सुबन्त पद के परे के अङ्ग के समान कार्य होता है, स्वर करने में यह सूत्र का अर्थ आता है। इसका सामान्य अर्थ ही यदि सुबन्त से पर आमन्त्रितान्त पद रहता है, तो उस सुबन्त पद को समीप के आमन्त्रितान्त पद के अवयव के समान कार्य होता है। अर्थात् आमन्त्रित पद में जिस प्रकार का स्वर है, उसी प्रकार का ही स्वर पूर्ववर्ति सुबन्त में भी लगाना चाहिए।

यह यहाँ जानना चाहिए - यदि सुबन्त आमन्त्रितान्त दो पद पाद के आदि में रहते हैं, तो वहाँ 'आमन्त्रितस्य च' इस छठे अध्याय में स्थित सूत्र से आद्युदात्त होता है। यदि सुबन्तम् आमन्त्रितान्त दो पद पाद के आदि में नहीं रहते हैं, तो 'आमन्त्रितस्य च' इस आठवें अध्याय में स्थित सूत्र से सभी को अनुदात्त स्वर की प्राप्त होते है। किन्तु स्वर विधान करने में ही यह पराङ्गवत् सिद्ध होता है, उससे अन्य स्थलों में नहीं सिद्ध होता है।

उदाहरण- द्रवत्पाणी शुभस्पंती। यत्तें दिवो दुहितर्मर्त भोजनम्।

सूत्र अर्थ का समन्वय- शुभस्पंती यह यहाँ पर उदाहरण है। शुभ शुम्भ दीप्तौ इस धातु से भाव में क्विप् प्रत्यय करने पर शुब् यह शब्द निष्पन्न होता है। उसको ही षष्ठी विभक्ति में शुभः यह रूप सिद्ध होता है। पती यह पद सम्बोधन में है। उसके परे होने पर शुभः इस पद के विसर्ग के स्थान में 'षष्ठ्याः पतिपुत्रपृष्ठपारपदपयस्पोषेषु' इस सूत्र से सकार होता है। यहाँ शुभस् यह षष्ठी का एकवचनान्त सुबन्त पद है। वहाँ पती यह आमन्त्रित पद है। व्यपदेशिवद्भाव के आश्रित होने से इसको भी आमन्त्रितान्तत्व सिद्ध होता है। अतः प्रकृत सूत्र से शुभस् इस पद को आमन्त्रितान्त पती इस पद के अवयव के समान होता है। उसको 'आमन्त्रितस्य च' इस छठे अध्याय के सूत्र से शुभस्पती इस समुदाय के आदि स्वर उदात्त का विधान होता है। आठवें अध्याय के सूत्र से यहाँ सभी अनुदात्त स्वर हो नहीं सकते हैं। क्योंकि 'आमन्त्रितं पूर्वमविद्यमानवत्' इस सूत्र से द्रवत्पाणी यह पद अविद्यमानवत् है। उससे शुभस्पती इस पद को पाद का आदि ही होता है। पाद के आदि में विद्यमान आमन्त्रित पद को छठे अध्याय के 'आमन्त्रितस्य च' इस सूत्र से सभी को अनुदात्त स्वर हो नहीं सकते हैं। क्योंकि 'आमन्त्रितस्य च' इस सूत्र से पाद के आदि में जो नहीं है, विद्यमान आमन्त्रित उन सभी को अनुदात्त स्वर की प्राप्ति होती है।

यत्तें दिवो दुहितर्मर्त भोजनम् इस ऋग मन्त्र में दुहितः यह पद सम्बोधन में है। इसलिए यह आमन्त्रित है। व्यपदेशिवद्भाव के आश्रित होने से इसको आमन्त्रितान्तत्व भी सिद्ध होता है। उस आमन्त्रितान्त

पद के परे पूर्व में विद्यमान दिवः यह सुबन्त पद पर के अवयव के समान होता है। उससे दिवः इस पद को भी आमन्त्रित होता है। और वह यहाँ पर पद से बाद में विद्यमान है, पाद के आदि में विद्यमान नहीं हैं। इसलिए आठवें अध्याय में 'आमन्त्रितस्य च' इस सूत्र से यहाँ सभी को अनुदात्त प्राप्त होता है।

पाठगत प्रश्न 8.2

1. छठे अध्याय में स्थित 'आमन्त्रितस्य च' इस सूत्र का क्या अर्थ है?
2. आठवें अध्याय में स्थित 'आमन्त्रितस्य च' इस सूत्र में किसका अधिकार आता है?
3. आठवें अध्याय में स्थित 'आमन्त्रितस्य च' इस सूत्र का एक उदाहरण लिखो।
4. 'विभाषितं विशेषवचने' यह किस प्रकार का सूत्र है?
5. 'विभाषितं विशेषवचने' इस सूत्र में बहुवचनम् यह पद कैसे आता है?
6. 'विभाषितं विशेषवचने' यह किसका अपवाद सूत्र है?
7. क्या नाम आमन्त्रित है?
8. 'सुबामन्त्रिते पराङ्गवत्स्वरे' इस सूत्र का क्या अर्थ है?
9. क्या करने में 'सुबामन्त्रिते पराङ्गवत्स्वरे' यह सूत्र प्रवृत्त होता है?
10. शुभस्पती इस उदाहरण में शुभः यहाँ कौन सी विभक्ति है?
11. आठवें अध्याय का 'आमन्त्रितस्य च' यह सूत्र क्या प्राप्ति कराता है –

    (क) अनुदात्त (ख) अन्तोदात्त (ग) सर्वानुदात्त (घ) आद्युदात्त
12. छठे अध्याय का 'आमन्त्रितस्य च' इस सूत्र से क्या प्राप्ति होती है –

    (क) अनुदात्त (ख) अन्तोदात्त (ग) सर्वानुदात्त (घ) आद्युदात्त

8.8 उदात्तस्वरितयोर्यणः स्वरितोऽनुदात्तस्य॥ (८.२.४)

सूत्रार्थः– उदात्त स्थान में और स्वरित स्थान में जो यण्, उससे उत्तर अनुदात्त के स्थान में स्वरित आदेश होता है।

सूत्र की व्याख्या– पाणिनीय के छः प्रकार के सूत्रों में यह विधि सूत्र है। इस सूत्र से स्वरित स्वर की प्राप्ति होती है। उदात्तस्वरितयोः यणः स्वरितः अनुदात्तस्य ये सूत्र में आये हुए पदच्छेद है। इस सूत्र में चार पद है। वहाँ उदात्तस्वरितयोः यह सप्तमी का द्विवचनान्त पद है। यणः यह पञ्चमी का एकवचनान्त पद है। स्वरितः यह प्रथमान्त का विधेय पद है। अनुदात्तस्य यह षष्ठी का

एकवचनान्त पद है। उदात्तस्वरितयोः यणः अनुदात्तस्य स्वरितः पद को जोड़ने का क्रम है। उदात्तस्वरितयोः इसका अर्थ उदात्त स्थान में, स्वरित स्थान में। उससे उदात्त स्थान में और स्वरित स्थान में जो यण् है, उसके बाद अनुदात्त को स्वरित होता है इस प्रकार का सूत्र का अर्थ आता है। इसका सामान्य अर्थ ही उदात्त स्थान में जो यण् किया है उस यण् से पर वर्तमान अनुदात्त के स्थान में स्वरित होता है। और स्वरित स्थान में जो यण् विहित है, उस यण् से पर वर्तमान अनुदात्त के स्थान में स्वरित होता है।

उदाहरण- अभ्यंभि हि। खलप्व्याशा।

सूत्र अर्थ का समन्वय- अभ्यंभि इस उदात्त स्थान में यह यण् नियम का उदाहरण है। अभि अभि इस स्थिति में 'इको यणचि' इस सूत्र से अच् के परे अभि इसके इकार के स्थान में यण् आदेश होने से अभ्यभि यह रूप सिद्ध होता है। अभि शब्द में प्राप्त उदात्त का 'उपसर्गश्चाधिवर्जम्' इस सूत्र से निषेध होता है। अत 'फिषोन्त उदात्तः' इस सूत्र से अभि शब्द में अन्त उदात्त की प्राप्ति होती है। अतः अभि शब्द का अन्तिम इकार उदात्त है। अभि शब्द को 'नित्यवीप्सयोः' इस सूत्र से द्वित्व होने पर अभि अभि इस प्रकार की प्राप्ति होती है। वहाँ दोनों अभि शब्दों में पर अभि शब्द के स्थान में 'अनुदात्तं च' इस सूत्र से अनुदात्त स्वर की प्राप्ति है। इस अवस्था में पहले के अभि इस उदात्त के इकार के स्थान में यण् किया है। अतः उससे पर अनुदात्त के स्थान में प्रकृत सूत्र से स्वरित स्वर की प्राप्ति हुई।

खलप्व्याशा यह स्वरित स्थान में विहित यण् का उदाहरण है। खलपू शब्द का सप्तमी एकवचन में खलप्वि यह रूप बनता है। खलप्वि आशा इस स्थिति में 'इको यणचि' इस सूत्र से अच् पर होने पर खलप्वि इसके इकार के स्थान में यण् आदेश होने पर खलप्व्याशा यह रूप सिद्ध होता है। यदि उपपद समास के उत्तरपद में कोई कृदन्त पद रहता तो उस कृदन्त पद को प्रकृति से ही उदात्त होता है। यहाँ खलपू शब्द उपपद समास से बनता है। और इसके उत्तरपद कृदन्त है। अतः खलपू शब्द अन्त उदात्त सिद्ध होता है। उस खलपू शब्द से ङि प्रत्यय करने पर प्रक्रिया कार्य में खलपू इ ऐसा होने पर 'इको यणचि' इस सूत्र से यण् में खलप्वि यह रूप सिद्ध होता है। यहाँ जो यण् है, वह उदात्त के स्थान में विहित है। और ङि प्रत्यय का इकार सुप् होने से अनुदात्त है। अतः उदात्त स्थान में जो यण् है, उसके पर अनुदात्त के इकार का प्रकृत सूत्र से स्वरित स्वर करने का विधान है। आशा शब्द 'आशाया अदिगख्या चेत्' इस सूत्र से अन्त उदात्त है। अतः 'अनुदात्तं पदमेकवर्जम्' इस सूत्र से उसका आदि आकार अनुदात्त सिद्ध होता है। खलप्वि आशा इस स्वरित इकार के स्थान में यण् किया है। इस प्रकार स्वरित स्थान में विधान किया जो यण् है उससे पर अनुदात्त आकार का प्रकृत स्थान में स्वरित स्वर विहित है।

8.9 एकादेश उदात्तेनोदात्तः॥ (८.२.५)

सूत्र का अर्थ- उदात्त के साथ एकादेश उदात्त होता है।

सूत्र की व्याख्या- पाणिनि के छः प्रकार के सूत्रों में यह विधि सूत्र है। यह सूत्र उदात्त स्वर का विधान करता है। एकादेशः उदात्तेन उदात्तः ये सूत्र में आये पदच्छेद हैं। इस सूत्र में तीन पद हैं।

टिप्पणियाँ

एकादेशः यह प्रथमा एकवचनान्त पद है। उदात्तेन यह तृतीया एकवचनान्त पद है। उदात्तः यह प्रथमा एकवचनान्त विधायक पद है। उदात्तेन एकादेश उदात्तः इति सूत्र में आये पद योजना है। इस सूत्र में सह शब्द का उल्लेख नहीं है। किन्तु जैसे 'वृद्धो यूना तल्लक्षणश्चेदेव विशेषः' इस सूत्र में यूना यहाँ पर सह शब्द के विना भी तृतीया होती है, वैसे ही यहाँ पर भी उदात्तेन सहयोग से तृतीया है। उससे सूत्र का अर्थ होता है - उदात्त के साथ एकादेश उदात्त होता है।

उदात्त के साथ एकादेश तीन प्रकार का हो सकता है - उदात्त अनुदात्त के स्थान में एकादेश, उदात्त उदात्त के स्थान में एकादेश, और उदात्त स्वरित के स्थान में एकादेश। उदात्त उदात्त के स्थान में एकादेश होता है तो आन्तरतम्य से ही उदात्त की प्राप्ति होती है। अतः उसके लिए यह सूत्र आवश्यक नहीं है। किन्तु जब उदात्त अनुदात्त का, अथवा उदात्त स्वरित के स्थान में एकादेश होता है, तब अनुदात्त और स्वरित की प्राप्ति होती है। अतः वहाँ पर भी उदात्त विधान के लिए इस सूत्र की रचना की है।

उदाहरण- क्वं वोऽश्वाः। क्वावंरं मरुतः।

सूत्र अर्थ का समन्वय- क्वं वोऽश्वाः यहाँ पर उदात्त अनुदात्त के स्थान में एकादेश होता है। वैसे हि वस् अश्वाः इति स्थिति में 'ससजुषो रुः' इससे पदान्त के सकार को रुत्व, अनुबन्ध लोप होने पर व ँअश्वाः यह स्थिति हुई 'अतो रोरप्लुतादप्लुते' इस सूत्र से अप्लुत अकार से पर रु के अप्लुत अकार परक होने से उत्वे व उ अश्वाः इस प्रकार की स्थिति होने पर आद् गुणः इस सूत्र से पूर्व पर के उकार अकार के स्थान में ओकार रूप से गुण एकादेश वो अश्वाः ऐसा हुआ 'एकः पूर्वपरयोः' इस अधिकार में पढने से 'एङः पदान्तादति' इस सूत्र से पूर्व पर के ओकार अकार के स्थान में ओकार रूप पूर्वरूप एकादेश होता है। वस्तुतः बहुवचन में युष्मद्-शब्द के स्थान में 'बहुवचनस्य वस्नसौ' इस सूत्र से वस् यह आदेश होता है। 'बहुवचनस्य वस्नसौ' इस सूत्र में 'अनुदात्तं सर्वमपादादौ' इस सूत्र की अनुवृति आती है। अतः वस् यह आदेश अनुदात्त है। अश्-धातु से क्विन् प्रत्यय करने पर निष्पन्न अश्व शब्द आद्युदात्त है। इसी प्रकार अश्व शब्द का आदि अकार उदात्त है। इन दोनों उदात्त अनुदात्त के स्थान में यहाँ एकादेश हुआ है। अतः इन दोनों के स्थान में होने वाला ओकार रूप पूर्वरूप एकादेश प्रकृत सूत्र से उदात्त होता है।

क्वावंरं मरुतः यहाँ पर उदात्त स्वरित के स्थान में एकादेश होता है। क्व अवरम् इस स्थिति में 'एकः पूर्वपरयोः' इस अधिकार में पढ़ा हुआ 'अकः सवर्णे दीर्घः' इस सूत्र से पूर्व पर अकार अकार के स्थान में आकार रूप सवर्ण दीर्घ एकादेश होता है। किम्-शब्द से 'किमोऽत्' इस सूत्र से अद् आदेश होता है। उसके बाद अत् के तकार का अनुबन्ध लोप करने पर किम् अ इस स्थिति में अत् के परे होने पर 'क्वाति' इस सूत्र से किम् के स्थान में क्व आदेश होने पर क्व अ यह स्थिति हुई 'यचि भम्' इस सूत्र से क्व इस्की भ संज्ञा होने पर 'यस्येति च' से भ संज्ञक अकार का ल् होने पर क्व् अ यह हुआ सर्व के संयोग निष्पन्न क्व इसकी प्रातिपदिक होने सुप् उत्पत्ति में अव्यय होने से 'अव्ययादाप्सुपः' इससे सुप का लुक होने पर क्व यह रूप सिद्ध होता है। अत् यहाँ पर तकार का 'हलन्त्यम्' इस सूत्र से इत संज्ञा हुई। अतः 'तित्स्वरितम्' इस सूत्र से क्व यहाँ पर स्वरित स्वर की प्राप्ति है। अवर शब्द 'स्वाङ्गशिटामदन्तानाम्' इस सूत्र से आद्युदात्त है। अर्थात्

अवर शब्द का आदि अकार उदात्त है। इन दोनों उदात्त स्वरित के स्थान में यहाँ एकादेश हुआ है। अत: इन दोनों के स्थान में होने वाला आकार रूप सवर्ण दीर्घ एकादेश प्रकृत सूत्र से उदात्त होता है।

8.10 स्वरितो वानुदात्ते पदादौ॥ (८.२.६)

सूत्र का अर्थ- पद आदि अनुदात्त के परे रहते उदात्त के साथ में हुआ एकादेश विकल्प से स्वरित होता है।

सूत्र की व्याख्या- यह विधि सूत्र है। इस सूत्र से विकल्प से स्वरित स्वर का विधान करते हैं। स्वरित: वा अनुदात्ते पदादौ ये सूत्र में आये हुए पदच्छेद है। इस सूत्र में चार पद है। स्वरित: यह प्रथमान्त का विधान करने वाला पद है। वा यह अव्यय पद है। अनुदात्ते पदादौ ये दोनों पद सप्तमी एकवचनान्त हैं। 'एकादेश उदात्तेनोदात्त:' इस सूत्र से एकादेश: इस प्रथमा एकवचनान्त और उदात्तेन इस तृतीया एकवचनान्त पद की अनुवृति आ रही है। अनुदात्ते पदादौ उदात्तेन एकादेश स्वरितो वा इस प्रकार की पद योजना है। उदात्तेन यहाँ पर सह के योग से तृतीया है। उससे सूत्र का अर्थ आता है अनुदात्त पद आदि के परे उदात्त के साथ एकादेश विकल्प से स्वरित होता है। इसका सामान्य अर्थ है की यदि पद के आदि में अनुदात्त स्वर रहता है, और उससे पूर्व उदात्त स्वर रहता है, तो उस अनुदात्त और उदात्त के स्थान में जो एकादेश होता है, वह एकादेश विकल्प से स्वरित होता है। जिस पक्ष में स्वरित नहीं होता है, वहाँ 'एकादेश उदात्तनोदात्त:' इस पूर्व सूत्र से उदात्त स्वर होता है।

इस सूत्र में जो विभाषा है, वह व्यवस्थित विभाषा है। इस विभाषा की प्रवृत्ति में वैसे कोई भी निर्दिष्ट नियम नहीं है। यह विभाषा कहाँ पर लगेगी, कहाँ पर नहीं लगेगी। अत: इस सूत्र से कहीं पर भी स्वरित स्वर होता है, कही पर भी उदात्त स्वर होता है।

उदाहरण- वींदं ज्योतिर्हृदये। अस्य श्लोकों दिंवीयते।

सूत्र अर्थ का समन्वय:- वींदम् यह स्वरित का उदाहरण है। वि इदम् इस स्थिति में 'एक: पूर्वपरयो:' इस अधिकार में पढ़ा हुआ 'अक: सवर्णे दीर्घ:' इस सूत्र से पूर्व पर इकार, इकार के स्थान में ईकार रूप सवर्ण दीर्घ एकादेश होने पर वीदम् यह रूप सिद्ध होता है। वि इति एक निपात है। अत निपात कारण से यह आद्युदात्त है। इदम्-शब्द 'फिषोन्त उदात्त:' इस फिट् सूत्र से अन्तोदात्त है। अत: 'अनुदात्तं पदमेकवर्जम्' इस सूत्र से इसका आदि इकार अनुदात्त है। इसी प्रकार वि यहाँ पर उदात्त स्वर है। वहाँ इदम् यहाँ पर पाद के आदि में अनुदात्त स्वर है। अत इन दोनों उदात्त अनुदात्त के स्थान में जो ईकार रूप एकादेश हुआ वह प्रकृत सूत्र से विकल्प से स्वरित होता है।

दिंवीयते यह उदात्त का उदाहरण है। दिवि ईयते इस स्थिति में 'एक: पूर्वपरयो:' इस अधिकार में पढ़ा हुआ 'अक: सवर्णे दीर्घ:' इस सूत्र से पूर्व पर इकार ईकार के स्थान ईकार रूप सवर्ण दीर्घ एकादेश होने पर दिवीयते यह रूप सिद्ध होता है। दिवि यहाँ पर ङि विभक्ति है, वह 'उडिदम्पदाद्यप्पुम्रैद्युभ्य:' इस सूत्र से उदात्त है। दिवादिगण में जिस ईङ् गतौ इस धातु से लट् प्रथम

पुरुष एकवचन में ईयते यह रूप सिद्ध होता है। दिवि यह अतिङन्त पद है। और ईयते यह तिङन्त पद है। अतः 'तिङ्ङतिङः' इस सूत्र से ईयते इसका ईकार अनुदात्त है। अतः इन दोनों के उदात्त अनुदात्त के स्थान में जो ईकार रूप एकादेश हुआ, वहाँ पर प्रकृत सूत्र से स्वरित स्वर प्राप्त हुआ। किन्तु सूत्र का वैकल्पिक होने से पक्ष में 'एकादेश उदात्तेनोदात्तः' इस सूत्र से उदात्त स्वर का विधान किया है।

पाठगत प्रश्न 8.3

1. 'उदात्तस्वरितयोर्यणः स्वरितोनुदात्तस्य' इस सूत्र से किसका विधान है?
2. आशा शब्द किस सूत्र से अन्तोदात्त है?
3. अभि शब्द को द्वित्व किस सूत्र से हुआ है?
4. खलपू-शब्द में क्या समास है –

   (क) अव्ययीभावसमास (ख) उपपदसमास

   (ग) तत्पुरुषसमास (घ) कर्मधारयसमास
5. किम् के स्थान में क्व आदेश किस सूत्र से होता है?
6. अवर शब्द किस सूत्र से आद्युदात्त है?
7. 'एकादेश उदात्तेनोदात्तः' इस सूत्र में उदात्तेन यहाँ पर तृतीया किस प्रकार की है?
8. क्वं वोऽश्वाः यहाँ पर किसके स्थान में एकादेश है –

   (क) उदात्त उदात्त का (ख) उदात्त अनुदात्त का

   (ग) उदात्त स्वरित का (घ) स्वरित उदात्त का
9. क्वावरं मरुतः यहाँ पर किसके स्थान में एकादेश है –

   (क) उदात्त उदात्त का (ख) उदात्त अनुदात्त का

   (ग) उदात्त स्वरित का (घ) स्वरित उदात्त का
10. 'स्वरितो वानुदात्ते पदादौ' इस सूत्र में किस प्रकार की विभाषा है?
11. इदम्-शब्द किस सूत्र से अन्तोदात्त है?
12. ईयते यह किस धातु का रूप है?
13. वीदम् इसमे जो ईकार है, उसमे कौन सा स्वर है?

पाठ का सार

'अनुदात्तं पदमेकवर्जम्' यह परिभाषा स्वर विधि विषय है। उसका अर्थ ही एक पद में यदि एक उदात्त अथवा स्वरित अच् रहता है, तो उस एक अच् को छोड़कर अन्य सभी अच् अनुदात्त होते है। अनुदात्त परे होने पर किसी उदात्त स्वर का लोप होता है, तो उस लोप निमित्ती भूत अनुदात्त के स्थान में उदात्त होता है 'अनुदात्तस्य च यत्रोदात्तलोपः' इस सूत्र का सामान्य अर्थ है। अकार के लुप्त होने पर जो अञ्च् धातु है उस अञ्च् धातु के परे होने पर पूर्व का अन्त उदात्त होता है 'चौ' इस सूत्र का अर्थ है। सम्बोधन में जो प्रथमा विभक्ति है उसको वेद में आमन्त्रित कहते है। आमन्त्रित संज्ञक पद का आदि अच् उदात्त होता है यह छठे अध्याय में पढ़े हुए 'आमन्त्रितस्य च' इस सूत्र का अर्थ है। आठवें अध्याय में पढ़े हुए 'आमन्त्रितस्य च' इस सूत्र का अर्थ है की पद से पर किन्तु पाद के आदि में अवर्तमान जो आमन्त्रित पद है, उस सभी पद को अनुदात्तस्वर होता है। 'विभाषितं विशेषवचने' यह एक अतिदेश सूत्र है। यदि आमन्त्रितान्त समान विभक्ति विशेषण पद परे रहता है, तो आमन्त्रितान्त बहुवचनान्त पद विकल्प से अविद्यमान के समान होता है यह उस सूत्र का अर्थ है। अविद्यमानवत् होने से उसके आश्रित् बहुत से विधान सम्भव है। वहाँ 'सुबामन्त्रिते पराङ्गवत्स्वरे' इस सूत्र से आमन्त्रित पद के परे पूर्ववर्ति सुबन्त पद का अङ्गवत्त के समान कार्य होता है। उदात्त स्थान में और स्वरित स्थान में जो यण् है, उसके पर अनुदात्त के स्थान में स्वरित होता है 'उदात्तस्वरितयोर्यणः स्वरितोनुदात्तस्य' इस सूत्र का अर्थ है। 'एकादेश उदात्तेनोदात्तः' इस सूत्र से उदात्त अनुदात्त का, और उदात्त स्वरित के स्थान में जो एकादेश होता है, वह एकादेश उदात्त होता है। उसका परवर्ति 'स्वरितो वानुदात्ते पदादौ' इस सूत्र से विकल्प से स्वरित स्वर का विधान किया है। और उस सूत्र का अनुदात्त पद आदि के परे उदात्त के साथ एकादेश विकल्प से स्वरित होता है। और स्वरित के अभाव में 'एकादेश उदात्तेनोदात्तः' इस सूत्र से उदात्त होता है। इन सभी सूत्रों का यहा उदाहरण सहित व्याख्या की है।

पाठांत प्रश्न

1. 'अनुदात्तं पदमेकवर्जम्' इस सूत्र की व्याख्या कीजिए।
2. 'अनुदात्तस्य च यत्रोदात्तलोपः' इस सूत्र का उदाहरण में समन्वय कीजिए।
3. आठवें अध्याय में विद्यमान 'आमन्त्रितस्य च' इस सूत्र की व्याख्या कीजिए।
4. 'विभाषितं विशेषवचने' इस सूत्र की व्याख्या कीजिए।
5. 'सुबामन्त्रिते पराङ्गवत्स्वरे' इस सूत्र की व्याख्या कीजिए।
6. क्वं वोऽश्वाः इस रूप को सिद्ध कीजिए।
7. खलप्व्याघ्शा इस रूप को सिद्ध कीजिए।
8. व्यवस्थित विभाषा विषय पर टिप्पणी को लिखकर उसका एक उदाहरण बताइए।

पाठगत प्रश्नों के उत्तर

8.1

1. परिभाषासूत्र।
2. अनुदात्त है इसके इस अर्थ में अनुदात्त शब्द से 'अर्श-आदिभ्योऽच्' इस सूत्र से मत्वर्थीय-अच् प्रत्यय है।
3. अनुदात्त स्वर।
4. जिस अनुदात्त के परे उदात्त का लोप होता है उसको उदात्त होता है।
5. देवीं वाचम् उदाहरण है।
6. उदात्त निवृत्ति स्वर अपवाद भूत यह सूत्र है।
7. लुप्त-अकार विशिष्ट अञ्च्-धातु यह अर्थ है।
8. देवद्रीचीं नयत देवयन्तः उदाहरण है।

8.2

1. आमन्त्रित का आदि उदात्त होता है।
2. 'पदस्य', 'पदात्', और 'अनुदात्तं सर्वमापादादौ' है।
3. इमं मे गङ्गे यमुने सरस्वति शुतुद्रि स्तोमम् उदाहरण है।
4. अतिदेश सूत्र।
5. भाष्यकार के वचन से।
6. नामन्त्रिते समानाधिकरणे सामान्यवचनम् का अपवाद है।
7. सम्बोधन विभक्त्यन्त पद को वेद में आमन्त्रित कहते है।
8. सुबन्त आमन्त्रित में परे पर का अङ्गवद् होता है स्वर करने में।
9. स्वर करने में।
10. षष्ठी विभक्ति।
11. (ग)
12. (घ)

8.3

1. स्वरित स्वर।
2. आशाया अदिगख्या चेत् इस सूत्र से।
3. नित्यवीप्सयोः इस सूत्र से।
4. (ख)
5. क्वाति इस सूत्र से।
6. स्वाङ्गशिटामदन्तानाम् इस सूत्र से।
7. सह शब्द के योग से।
8. (ख)
9. (ग)
10. व्यवस्थित विभाषा है।
11. फिषोन्त उदात्तः।
12. ईङ् गतौ धातु।
13. स्वरित स्वर।

॥ आठवां पाठ समाप्त॥

9

साधारण स्वर-२

वैदिक काल से लेकर के आज भी गुरुकुलो में तथा विभिन्न प्रतिष्ठानो में गुरु शिष्य माध्यम से वेदपाठ प्रचलित है। वेदों के पाठ गुरु परम्परा के अनुसार स्वर सहित करते है। अत: वेद में स्वर का स्थान सबसे ऊपर है। केवल वेद पाठ से ही वेद में कहा पर क्या स्वर होगा ऐसा विद्वान मनुष्य जानने में समर्थ नहीं हो सकते है। अत: व्याकरण से स्वर निर्णय करने की कुशलता सभी को विदित ही है। बहुत काल पहले ही महर्षि पाणिनि ने सम्पूर्ण वैदिक वाङ्मय के स्वर निर्णय के लिए सूत्रों की रचना की। उन सूत्रों में कुछ विशिष्ट प्रयोग पाणिनि के द्वारा निर्देश नहीं किया है। अत: बाद के काल में वार्तिककार ने कुछ वार्तिकों की रचना की है। अत: इस पाठ में साधारण स्वर प्रतिपादक पाणिनीय सूत्र तथा वार्तिको की आलोचना की है।

उद्देश्य

इस पाठ को पढ़कर आप सक्षम होंगे :

- सूत्रों के द्वारा स्वर सिद्धि प्रक्रिया को समझ पाने में;
- स्वर सम्बन्धी वार्तिकों को जान पाने में;
- एकश्रुति विषय को जान पाने में;
- सूत्र अर्थ के समन्वय को समझ पाने में; और
- साधारण स्वर विषय में सम्पूर्ण ज्ञान प्राप्त कर पाने में।

9.1 उदात्तादनुदात्तस्य स्वरितः॥ (८.४.६६)

सूत्र का अर्थ – उदात्त से उत्तर अनुदात्त को स्वरित आदेश होता है।

सूत्र की व्याख्या – छः प्रकार के पाणिनीय सूत्रों में यह विधि सूत्र है। इस सूत्र से स्वरित स्वर का विधान करते हैं। उदात्ताद् अनुदात्तस्य स्वरितः ये सूत्र आये हुए पदच्छेद हैं। तीन पद वाले इस सूत्र में उदात्ताद् यह पञ्चमी का एकवचनान्त है, अनुदात्तस्य यह षष्ठी का एकवचनान्त है, स्वरितः यह प्रथमा का एकवचनान्त पद है। स्वरितः यह प्रथमान्त होने से इसका ही विधायक है। उदात्ताद् अनुदात्तस्य स्वरितः इति सूत्र में आये हुए पद योजना है। उदात्ताद् यहाँ पञ्चमी निर्देश होने से 'तस्मादित्युत्तरस्य' इस परिभाषा से उदात्त से उत्तर का यह अर्थ प्राप्त होता है। और इस प्रकार इस सूत्र का अर्थ होता है उदात्त से परे अनुदात्त को स्वरित स्वर होता है।

उदाहरण– अग्निमीळे (अग्निमींळे) इति।

सूत्र अर्थ का समन्वय– अग्निमीळे यहाँ पर गति अर्थ की अगि धातु से 'धातोः' इस सूत्र के अनुसार से अकार उदात्त है। उसके बाद 'अङ्गेर्नलोपश्च' इस सूत्र से नि-प्रत्यय होने पर इस धातु का इकार इत होने से (अगि-धातु इकार इत्संज्ञक है) इदितो नुम् धातोः इससे नुम आगम और अनुबन्ध लोप होने पर इस स्थिति में नकार का उससे ही (अङ्गेर्नलोपश्च) सूत्र से लोप होने पर अग्नि शब्द निष्पन्न होता है। यहाँ नि प्रत्यय का नकार से उत्तर इकार 'आद्युदात्तश्च' इससे उदात्त है। इस प्रकार अग्नि यहाँ पर दो उदात्त स्वर है, एक धातु का दूसरा प्रत्यय का। यहाँ अगि धातु से अकार का उदात्त स्वर धातुपाठ में निर्देश किया है, परन्तु नि-प्रत्यय के इकार का उदात्त स्वर सूत्र से उपदेश किया है, अतः 'सतिशिष्टस्वरो बलीयान्' (६.१.१५८) इस परिभाषा सूत्र से बाद में होने वाला स्वर का (पर निर्देश किया स्वर) बलवान होता है। उसको 'अनुदात्तं पदमेकवर्जम्' इस सूत्र से धातु के (अगि-इसके) अकार का अनुदात्त स्वर है प्रत्यय का नहीं है। इसी प्रकार अग्नि-यहाँ पर अकार अनुदात्त, इकार उदात्त ये सिद्ध होते है। उस अम्-प्रत्यय के करने पर 'अनुदात्तौ सुप्पिता' इससे अनुदात्त स्वर है। वहाँ अग्नि अम् इस स्थिति में 'अमि पूर्वः' इससे उदात्त-इकार का और अनुदात्त-अकार के स्थान में पूर्वरूप एकादेश इकार में 'एकादेश उदात्तेनोदात्तः' इससे उसका (इकार का) उदात्त स्वर है। ईड स्तुतौ इस धातु से लट लकार उत्तम पुरुष एकवचन में 'ईळे' यह रूप बनता है। यहाँ पर 'द्वयोश्चास्य स्वरयोर्मध्यमेत्य संपद्यते स डकारो लकारः' इस प्रातिशाख्य वचन से डकार के स्थान में लकार होता है। यहाँ अग्निम् ईळे इस स्थिति में 'तिङ्ङतिङः' इस सूत्र से सभी को अनुदात्त स्वर प्राप्त होता है। इसी प्रकार यहाँ उदात्त से (इकार से) पर अनुदात्त का (ईकार का) वर्तमान से प्रकृत सूत्र के द्वारा पर अनुदात्त के स्थान में स्वरित स्वर होता है। ईळे यहाँ पर स्वरित ईकार से परे ळे इसके एकार के अनुदात्त होने से 'स्वरितात् संहितायामनुदात्तानाम्' इस सूत्र से एकार की एकश्रुति स्वर (उदात्त अनुदात्त स्वरित का तिरोधान) होता है। इस प्रकार अग्निमीळे यह रूप सिद्ध होता है।

विशेष– यहाँ पर 'अग्निम् ईळे' उदात्त अनुदात्त के (इकार-ईकार के) मध्य में मकार की विद्यमानता होने से कैसे इकार से परे ईकार को स्वरित स्वर होता है इस प्रकार कहा है, 'स्वरविधौ

टिप्पणियाँ

व्यञ्जनमविद्यमानवद्' इस परिभाषा से यहाँ मकार के विद्यमान होने पर भी स्वर विधि के नहीं होने से उसको ग्रहण नहीं करते है, उससे यहाँ मकार से व्यवधान का अभाव होने से स्वरित का कोई तोड़ नहीं है।

प्रकृत सूत्र आठवें अध्याय के चौथे पाद में है, अतः तीन पाद में स्थित इस सूत्र से जिस स्वरित स्वर का नियम किया है, वह 'अनुदात्तं पदमेकं वर्जम्' (६.१.१५८) इस सवा सात्त अध्याय में स्थित सूत्र की दृष्टि से असिद्ध है। इसलिए ईळे यहाँ पर 'अनुदात्तं पदम् एकवर्जम्' यह सूत्र यहाँ पर नहीं लगता है। उस के द्वारा उदात्त स्वरित दोनों ही स्वर सुने जाते है।

9.2 नोदात्तस्वरितोदयमगार्ग्यकाश्यपगालवानाम्।। (८.४.६७)

सूत्र का अर्थ - उदात्त परे है जिससे एवं स्वरित परे है जिससे ऐसे अनुदात्त को स्वरित नहीं होता है। गार्ग्य आदि मत को छोड़कर।

सूत्र की व्याख्या - छ प्रकार के पाणिनीय सूत्रों में यह निषेध विधायक सूत्र है। इस सूत्र से स्वरित स्वर का निषेध होता है। न उदात्तस्वरितोदम् अगार्ग्यकाश्यपगालवानाम् ये सूत्र में आये हुए पदच्छेद है। तीन पद वाले इस सूत्र में न यह अव्ययपद है, उदात्तस्वरितोदयम् यह प्रथमा एकवचनान्त है, अगार्ग्यकाश्यपगालवानाम् यह षष्ठी बहुवचनान्त पद है। उदात्तस्वरितोदयं न अगार्ग्यकाश्यपगालवानाम् यह सूत्र में आये पद का अन्वय है। 'उदात्तादनुदात्तस्य स्वरितः' इस सूत्र से अनुदात्तस्य इस षष्ठ्यन्त पद की और स्वरितः इस प्रथमान्त पद की अनुवृति आती है। उदात्तश्च स्वरितश्च उदात्तस्वरितौ उदयौ यस्माद् इति उदात्तस्वरितोदयम् इति बहुव्रीहिसमासः। उदय शब्द पर शब्द से समान अर्थ है ऐसा प्रातिशाख्यों में प्रसिद्ध है। उदात्त स्वर परे जिसका उस प्रकार के, अथवा स्वरित स्वर परे जिसका उस प्रकार के अनुदात्त स्वर का यह अर्थ है। न गार्ग्यकाश्यपगालवानाम् इति अगार्ग्यकाश्यपगालवानाम् इति नञ्समासः। गार्ग्य-काश्यप-गालव ऋषियों के मत में तो नहीं होता है यह अर्थ है। 'उदात्तादनुदात्तस्य स्वरितः' इस सूत्र का ही यहाँ निषेध है। उससे सूत्र का अर्थ होता है, उदात्त परे और स्वरित परे जो अनुदात्त, उसको 'उदात्तादनुदात्तस्य स्वरितः' इस सूत्र से प्राप्त स्वरित स्वर नहीं होता है, गार्ग्य-काश्यप-गालव ऋषियों के मत में तो होता ही है।

उदाहरण- वोश्वाः क्वां १ भीशवः (ऋ.५।६१।१२) इति। प्र य आ रुः इति।

सूत्र अर्थ का समन्वय- यहाँ पर क्व शब्द से उत्तर 'किमोऽत्' इस सूत्रे से अत्-प्रत्यय करने पर तथा 'क्वाति' इससे किमः के स्थान में क्व- यह आदेश होने पर क्व-यह रूप सिद्ध होता है। अत्-प्रत्यय के तकार की इत्संज्ञक होने से 'तित्स्वरितम्' इस सूत्र से अत्-प्रत्ययान्त के क्व-शब्द का अकार का स्वरित स्वर है। युष्मद् के स्थान में वस् यह आदेश होने पर सकार को रुत्व होने पर 'अतो रोरप्लुतादप्लुते' इससे रु के उत्व होने पर 'आद्गुणः' इससे अकार-उकार के स्थान में गुण ओकार होकर के वो-यह रूप सिद्ध होता है। यहाँ वस्-यह आदेश 'अनुदात्तं सर्वमपादादौ' इसके अधिकार में होता है अतः वकार से उत्तर अकार अनुदात्त है। अशू-धातु से 'अशूप्रुषिलटिकनिखटिविशिभ्यः क्वन्' इस उणादि सूत्र से क्वन्-प्रत्यय करने पर बहुवचन प्रक्रिया में अश्वाः यह रूप सिद्ध होता है। क्वन्-प्रत्यय के नकार की इत् संज्ञा होती है, अतः क्वन् प्रत्ययान्त

अश्व शब्द 'त्रिनत्यादिर्नित्यम्' इस सूत्र के अनुसार से आद्युदात्त होता है। उसके बाद में 'वो अश्वाः' इस स्थिति में 'एङः पदान्तादति' इस सूत्र से ओकार-अकार के स्थान में पूर्वरूप होने पर 'एकादेश उदात्तेनोदात्तः' इस सूत्र से वकार से उत्तर उकार उदात्त है, 'अनुदात्तं पदमेकवर्जम्' इस सूत्र के अनुसार से श्वा- यहाँ पर आकार अनुदात्त है। यहाँ वोऽश्वाः (वः अश्वाः) क्व इस वकार से उत्तर उकार उदात्त है, श्व से उत्तर आकार अनुदात्त तथा क्व से उत्तर अकार स्वरित है। इस प्रकार यहाँ उदात्त से परे अनुदात्त के होने से 'उदात्तादनुदात्तस्य स्वरितः' इस पूर्वसूत्र से अनुदात्त को स्वरित स्वर की प्राप्ति होने पर उसका स्वरित परे होने से इस प्रकृत सूत्र से, पूर्व सूत्र से प्राप्त स्वरित स्वर का निषेध होता है। उससे जैसे पहले अनुदात्त स्वर था वैसे ही रहेगा।

प्र य आ रुः यहाँ पर ये यह यत् शब्द का प्रथमा बहुवचन फिट् स्वर से 'फिषोऽन्त उदात्तः' इस सूत्र से अन्त उदात्त है। 'अतेर्लिटि' प्रथमा बहुवचन में झि प्रत्यय करने पर आरुः यह रूप बनता है। यहाँ पर 'परस्मैपदानां णलतुसुस्थलथुसणल्वमाः' इससे उस्-प्रत्यय का नियम किया है और वह प्रत्यय स्वर से उदात्त है। आरुः यहाँ पर आकार का 'उदात्तस्वरितपरस्य सन्नतरः' इससे अनुदात्त स्वर है। इस प्रकार यहाँ यकार से उत्तर अकार उदात्त है, आकार अनुदात्त है, और रुः का उकार उदात्त है। उससे यहाँ उदात्त से परे अनुदात्त के होने से 'उदात्तादनुदात्तस्य स्वरितः' इस पूर्व सूत्र से अनुदात्त के स्थान में स्वरित की प्राप्ति, उसका उदात्त परे होने पर प्रकृत सूत्र से पूर्व सूत्र से प्राप्त स्वरित स्वर का निषेध होता है। उससे जैसे पूर्व अनुदात्त स्वर था वैसे ही रहेगा। इससे प्र य आ रुः यह सिद्ध होता है।

गार्ग्य-काश्यप-गालव ऋषियों के मत में तो स्वरित का निषेध नहीं होता है, अपितु पूर्व सूत्र से प्राप्त स्वरित स्वर ही होता है।

विशेष- निश्चित रूप से 'अर्धमात्रालाघवेन पुत्रोत्सवं मन्यन्ते वैयाकरणाः' (आदि मात्रा के कम होने पर भी पुत्र उत्सव के समान वैयाकरण उत्सव मनाते है) वह यहाँ पर कैसे उदय शब्द के प्रयोग उस स्थल में पर शब्द के प्रयोग से तो लघु होता तो यहाँ कहते है की उदय शब्द मङ्गलार्थ है। 'मङ्गलादीनि मङ्गलमध्यानि मङ्गलान्तानि च शास्त्राणि प्रथन्ते वीरपुरुषाणि भवन्त्यायुष्मत्पुरुषाणि च' इस प्रकार वृद्धिरादैच् इस सूत्रभाष्य में पतञ्जलि ने कहा है। यहाँ उदय शब्द के प्रयोग से पाणिनि के द्वारा मङ्गल किया है, ये एक समाधान है।

दूसरा समाधान होता है की पर्यायवाची के ग्रहण करने में लघु गुरु की चिन्ता नहीं करते है इस नियम से यहाँ पर-पर्याय का उदय शब्द के ग्रहण करने में कोई हानि नहीं है।

पाठगत प्रश्न 9.1

1. उदात्तादनुदात्तस्य स्वरितः इस सूत्र से किस स्वर का विधान है?
2. 'अग्निमीळे' यहाँ पर मकार से उत्तर ईकार का क्या स्वर है?
3. 'ईळे' यहाँ पर 'अनुदात्तं पदमेकवर्जम्' यह सूत्र कैसे नहीं लगा?

टिप्पणियाँ

4. उदात्त परे का, स्वरित परे का अनुदात्त का स्वरित निषेध किससे होता है?
5. किनके मत में उदात्त के परे स्वरित के परे अनुदात्त को स्वरित होता है?
6. 'नोदात्तस्वरितोदयमगार्ग्यकाश्यपगालवानाम्' इस सूत्र में उदय शब्द का क्या अर्थ है?

9.3 एकश्रुति दूरात्संबुद्धौ॥ (१.२.३३)

सूत्र का अर्थ - दूर से बुलाने में वाक्य एकश्रुति हो जाता है।

सूत्र की व्याख्या - छः प्रकार के सूत्रों में यह विधि सूत्र है। इस सूत्र से वाक्यों की एकश्रुति होने का विधान है। एकश्रुतौ दूरात् सम्बुद्धौ ये सूत्र में आये पदच्छेद हैं। यहाँ पर दूरात् इसमें 'दूरान्तिकार्थेभ्यो द्वितीया च' इस सूत्र से पञ्चमी, सम्बुद्धौ यहाँ पर सप्तमी एकवचन है। और भी एकश्रुति यहाँ नपुंसक लिङ्ग प्रथमा एकवचनान्त पद वाक्य है प्रथमा एकवचनान्त पद का विशेषण है। अतः वहाँ नपुसंक लिङ्ग में प्रथमा एकवचन है। और इस प्रकार दूरात् सम्बुद्धौ वाक्यम् एकश्रुति ये यहाँ सूत्र में आये पदो का अन्वय है।

सूत्र में सम्बुद्धौ इस पद से 'एकवचनं सम्बुद्धिः' इस सूत्र से निर्दिष्ट पारिभाषिक सम्बुद्धि शब्द का बोध नहीं करना है, अपितु सम्बुद्धिः- भली प्रकार से किसी को बुलाना यह अर्थ लिया है। वैसे ही दूरात् इस पञ्चम्यन्त पद का यहाँ वर्तमान सम्बुद्धि से इस शब्द का यहाँ अन्वर्थ रूप से ग्रहण किया है। 'एकवचनं सम्बुद्धिः' इस सूत्र में निर्दिष्ट सम्बुद्धि शब्द का सम्बन्ध तो दूर से है, प्रकृत सूत्र स्थित पद से नहीं हो सकता है। अतः जिस वाक्य से सम्बोधन करते हैं, वह संबोधन है, अर्थात् सम्बुद्धि यह अर्थ यहाँ जानना चाहिए। और उस प्रकार के वाक्य का प्रकृत सूत्र से एकश्रुति होने का विधान है।

यहाँ एकश्रुतिः इस पद में विग्रह क्या है? क्या 'एकस्य श्रुतिः इति', अथवा एका चासौ श्रुतिः' च इति। इस प्रश्न के होने पर कहा जाता है, एकश्रुतिः इस पद में 'एका चासौ श्रुतिः चेति' इस विग्रह में एकश्रुति है, एकश्रुति है इस वाक्य की इति एकश्रुति है। यहाँ श्रुतिः यह वेद का पर्यायवाची शब्द नहीं है। यहाँ श्रवण अर्थ में श्रु-धातु से क्तिन्-प्रत्यय करने पर और विभक्ति कार्य में श्रुतिः यह प्रथमा एकवचनान्त पद है। और उसका सुनना यह अर्थ है। एक ही श्रुति अर्थात् एक श्रवण यह ही अर्थ है। जिस वाक्य में श्रवण का भेद नहीं है, अर्थात् जहाँ भिन्न श्रुति न हो वह ही वाक्य एकश्रुति कहलाता है। यहाँ किसका अभेद है? इस जिज्ञासा में कहते हैं, उदात्त आदि के स्वरो का। और इस प्रकार प्रकृत सूत्र से वाक्यों का उदात्त आदि स्वरों के अभेद का विधान है। उसके द्वारा सूत्र का अर्थ होता है - दूर से बुलाने के अर्थ में अर्थात् सम्बोधन वाक्य में एकश्रुति होती है।

उदाहरण - आगच्छ भो माणवक देवदत्त।

सूत्र अर्थ का समन्वय -यहा वाक्य आगच्छ भों माणवक देववत्त यह है। यह वाक्य जब दूर से किसी को सम्बोधन करने में प्रयोग करते हैं, तब प्रकृत सूत्र यहाँ उदात्त अनुदात्त आदि स्वर गत

भेद को दूर करने से तथा एक का ही उदात्त स्वर का विधान करने से आगच्छ भो माणवक देवदत्त यहाँ एकश्रुति में उदात्त स्वर का ही समावेश होता है।

यहाँ दूर से सम्बोधन होता है, तो ही प्रकृत सूत्र से उस सम्बोधन बोधक पद में एकश्रुति करने का विधान है, अन्यथा एक श्रुति नहीं होती है। जैसे - आगच्छ भों माणवक देवदत्त इस वाक्य को जब पास से ही बुलाने का विधान है, तब उदात्त अनुदात्त आदि स्वर वहाँ होते है।

विशेष- यहाँ दूरं नाम कितने दूर को इस प्रकार की जिज्ञासा स्वाभाविकता से होती ही है। उसका समाधान कहते है की जितने स्थान में स्वाभाविक प्रयत्न से उच्चारण करने पर सम्बोध्य मान व्यक्ति को नहीं सुनाई देता है, उस स्थान को ही दूर शब्द से ग्रहण करते है। इसी प्रकार 'दूराद्धूते च' इत्यादि सूत्र में भी जानना चाहिए।

9.4 यज्ञकर्मण्यजपन्यूङ्खसामसु॥ (२.१.३४)

सूत्र का अर्थ - यज्ञकर्म में मन्त्र एकश्रुति हो जाते है, जप न्यूङ्ख साम को छोड़कर।

सूत्र की व्याख्या - संज्ञा-परिभाषा-विधि-नियम-अतिदेश-अधिकार छः प्रकार के पाणिनीय सूत्रों में यह विधि सूत्र है। इससे जप आदि से भिन्न प्रयोगो में वाक्यो के एकश्रुति होने का विधान है। यज्ञकर्मणि अजपन्यूङ्खसामसु यह सूत्र में आये पदच्छेद है। वहाँ यज्ञकर्मणि यह सप्तमी एकवचनान्त पद है, और अजपन्यूङ्खसामसु ये सप्तमी बहुवचनान्त पद है। 'एकश्रुति दूरात्सम्बुद्धौ' इस सूत्र से यहाँ एकश्रुति इस नपुसंक लिङ्ग प्रथमा एकवचनान्त विधेय बोध पद की अनुवृति है। यज्ञ का कर्म यज्ञकर्म यहाँ षष्ठी तत्पुरुष समास है, उस यज्ञकर्म में। जप, न्यूङ्ख और साम जपन्यूङ्खसामानि, न जपन्यूङ्खसामानि अजपन्यूङ्खसामानि, उन अजपन्यूङ्खसामसु यहाँ द्वन्द्वगर्भ नञ्तत्पुरुष समास है। और इस प्रकार यहाँ पर अजपन्यूङ्खसामसु यज्ञकर्मणि एकश्रुति ये सूत्र में आया अन्वय है। और उससे यहाँ सूत्र का अर्थ होता है - यज्ञकर्म में उदात्त अनुदात्त स्वरित स्वरो की एकश्रुति होती है, जप न्यूङ्ख साम को छोड़कर। इस सूत्र का मन्त्र एकश्रुति होता है यह इसका सार है।

जप अनुकरण मन्त्र अथवा उपांशु प्रयोग, न्यूङ्ख सोलह प्रकार का ओंकार, उससे यहाँ मन्त्र उच्चारण का प्रकार विशेष जानना चाहिए। साम वाक्य विशेष में स्थित गीत है। वहाँ जप में, न्यूङ्ख में और साम में उदात्त अनुदात्त आदि स्वर युक्त मन्त्रों का उच्चारण है। यहाँ कहते हैं की यदि इनसे भिन्न यज्ञ सम्बन्धी कर्म में मन्त्रों का प्रयोग होता है, तो उनके मन्त्रों की एकश्रुति होती है। अर्थात् उन यज्ञकर्म में प्रयुङ्क्त मन्त्रों में उदात्त, अनुदात्त आदि भेद नहीं रहता है।

उदाहरण - अग्निर्मूर्द्धा दिवः ककुत्पतिः पृथिव्या अयम्। अपां रेतांसि जिन्वतो३म् (ऋ. ८.४४.१६)।

सूत्र अर्थ का समन्वय - उदाहरण रूप में दिया यह मन्त्र यज्ञकर्म में प्रयुङ्क्त है। अतः प्रकृत सूत्र से इस मन्त्र में एकश्रुति का विधान है। उससे यहाँ उदात्त आदि स्वरों का भेद नहीं दिखाई देता है। अतः यहाँ उदात्त स्वरो का ही समावेश दिखाई देता है।

टिप्पणियाँ

यहाँ यह जानना चाहिए की जब जप में, न्यूङ्ख में, और साम में मन्त्रों का प्रयोग होता है, तब प्रकृत सूत्र से यह एकश्रुति नहीं होती है। जैसे - यहाँ उदाहरण रूप से दिए मन्त्र का जब सपाठ में अर्थात् स्वाध्यायकाल में प्रयोग होता है, तब एकश्रुति नहीं होती है। इसी प्रकार जप में प्रयुङ्क्त मन्त्रों की भी एकश्रुति नहीं होती है। न्यूङ्ख सोलह प्रकार के ओकार, उनमे कुछ उदात्त और कुछ अनुदात्त है। अथ वहाँ पर भी प्रकृत सूत्र से एकश्रुति नहीं होती है। साम में भी वैसे ही एकाश्रुति नहीं होती है। जैसे वहाँ उदाहरण है - ए३ विश्वं समन्त्रिणं दह३ इति।

9.5 उच्चौस्तरां वा वषट्कारः॥ (१.२.३५)

सूत्र का अर्थ - यज्ञकर्म में वौषट्- शब्द उदाततर विकल्प से होता है पक्ष में एकश्रुति है।

सूत्र की व्याख्या - छ प्रकार के सूत्रों में यह विधि सूत्र है। इससे वौषट्- शब्द की विकल्प से उदात्ततर, और एकश्रुतिका विधान है। उच्चौस्तरां वा वषट्कारः ये तीन पद यहाँ है। वहाँ उच्चौस्तराम् इति और वा इति ये दो अव्ययपद हैं, वषट्कारः यह प्रथमा एकवचनान्त पद है। यज्ञकर्मण्यजपन्यूङ्खसामसु इस सूत्र से यहाँ यज्ञकर्मणि इस सप्तमी एकवचनान्त पद की, एकश्रुति दूरात्संबुद्धौ इस सूत्र से एकश्रुति इस प्रथमा एकवचनान्त पद की यहाँ अनुवृति आ रही है। उच्चौस्तराम् इसका अर्थ उदात्ततर है। स्वरित स्वर से यदि अनुदात्त स्वर होता है, तब स्वरित स्वर का आधा भाग उदात्ततर स्वर विशिष्ट होता है। वषट्कार- इस शब्द से यहाँ वौषट् इस अव्यय का ग्रहण है। और इस प्रकार यहाँ यज्ञकर्मणि वषट्कारः उच्चौस्तराम् एकश्रुतिः वा ये सूत्र में आये पद अन्वय होते है। और उससे यहाँ सूत्र का अर्थ होता है - यज्ञकर्म में वषट्कारः अर्थात् वौषट्- शब्द एकश्रुति उदात्ततर विकल्प से होता है।

यहाँ वषट्कारः इसमें कार शब्द का कैसे ग्रहण किया है इस विषय में अनेक मत हैं। यहाँ कार शब्द से वौषट् इस अव्यय का ग्रहण किया है ऐसा कुछ का मत है। वौषट्- शब्द से अन्य शब्दों का भी जैसे विकल्प से उदात्ततर और एकश्रुति हो उसके लिए कार शब्द का ग्रहण है ऐसा कुछ मत है। और इनके मत के अनुसार 'अस्तु श्रौषट्' यहाँ पर भी श्रौषट्- शब्द उदात्ततर स्वर विशिष्ट होता है। और अन्यो के मत से यहाँ कार ग्रहण अवर्ण से भी कार प्रत्यय होता है, यह इसका ज्ञापक है, इनके मत के अनुसार ही एवकार इत्यादि पद सिद्ध होते है। और अन्यों के मत से पाणिनि के सूत्र विचित्र होते हैं इसको बताने के लिए यहाँ कार शब्द का ग्रहण किया है। इस कारण से ही पाणिनीय सूत्रों में कही पर कम अक्षरों की प्रधानता होती है, और कही पर ज्ञान लाघव प्रधान होता है। और यहाँ वषट्कार वौषट् इस शब्द में निरूढ यह यहाँ प्रधान रूप से जानना चाहिए।

उदाहरण - सोमस्याग्ने वीहि वौ३षट्। सोमस्याग्ने वीहि३ वौ३षट् (ऐतरेय. ३.५.४.६)।

सूत्र अर्थ का समन्वय -उदाहरण से दिया यह मन्त्र यज्ञकर्म में प्रयुङ्क्त है। अतः वहाँ वर्तमान वौषट्-शब्द विकल्प से उदात्ततर होता है, और उसके अभाव पक्ष में एकश्रुति होती है।

विशेष - स्वरित स्वर से यदि अनुदात्त स्वर होता है, तब स्वरित स्वर का आधा भाग उदात्ततर स्वर विशिष्ट होता है यह तो सभी को ज्ञात ही है, परन्तु यहाँ विधीयमान उदात्ततर स्वर का उस

समय क्या स्वरूप है इस जिज्ञासा में कहते है - उच्चैः इससे उदात्त का ग्रहण करते हैं, यह उदात्त है, यह उदात्त है, यह इन दोनों में उससे अधिक उदात्त है उच्चैस्तराम् अर्थात् उदात्ततर है। वैसे ही उदात्त स्वर का जिस स्थान से उच्चारण करते हैं, उस उच्चतर स्थान से भी जब किसी स्वर का उच्चारण करते है, तब वह स्वर उदात्ततर है ऐसा कहलाता है। और उस प्रकार के उदात्ततर का ही यहाँ प्रकृत सूत्र से विकल्प का विधान है।

9.6 विभाषा छन्दसि॥ (१।२।३६)

सूत्र का अर्थ - वेद विषय में तीनो स्वरों को विकल्प से एकश्रुति हो जाती है।

सूत्र की व्याख्या - संज्ञा-परिभाषा-विधि-नियम-अतिदेश-अधिकार छः प्रकार के पाणिनीय सूत्रों में यह विधि सूत्र है। इस छन्द में अर्थात् वेद में विकल्प से एकश्रुति का विधान है। इस सूत्र में विभाषा छन्दसि ये दो पद हैं। वहाँ विभाषा यह अव्ययपद है, और 'छन्दसि' ये सप्तमी एकवचनान्त पद है। 'एकश्रुति दूरात्संबुद्धौ' इस सूत्र से यहाँ पर 'एकश्रुति' इस प्रथमा एकवचनान्त पद की अनुवृति आती है। छन्दसि यहाँ पर विषय सप्तमी है, अतः छन्द विषय में ऐसा अर्थ प्राप्त होता है। यहाँ पर पदों का अन्वय - छन्दसि एकश्रुतिः विभाषा है। और उससे सूत्र का अर्थ इस प्रकार होता है - छन्द विषय में उदात्त, अनुदात्त, स्वरित स्वरों की एकश्रुति विकल्प से होती है। छन्द में मन्त्रों की उदात्त अनुदात्त स्वरित स्वरों की विकल्प से एकश्रुति होती है यह इस सूत्र का निष्कर्ष निकला है। यहाँ एकश्रुतिः यह विशेषण पद नहीं है, अपितु विशेष्य पद ही है। अतः उदात्त अनुदात्त स्वरित स्वरों की एक अभिन्न श्रुति होती है ऐसा अर्थ यहाँ पर समझना चाहिए।

यहाँ यह जानना चाहिए की 'यज्ञकर्मण्यजपन्यूङ्खसामसु' इस सूत्र से जप, न्यूङ्ख, साम से भिन्न यज्ञकर्म में एकश्रुति का विधान सम्भव होने से प्रकृत सूत्र का प्रयोग स्थलों में छन्दों में भी एकश्रुति सम्भव है, परन्तु यहाँ एकश्रुति विकल्प से चाहिए है, अतः सूत्र में विभाषा यह पद दिया है। और भी यहाँ सूत्र में 'वा' इस पद के प्रयोग करने से ही कार्य सम्भव होने पर, विभाषा इस पद के ग्रहण करने से यज्ञकर्मणि इस पद की निवृत्ति हो जाती है। वैसे ही यज्ञकर्मण्यजपन्यूङ्खसामसु इस सूत्र से जप, न्यूङ्ख, साम से भिन्न यज्ञकर्म में ही नित्य एकश्रुति का विधान है, अतः जप, न्यूङ्ख, साम से भिन्न में, और यज्ञकर्म से भिन्न स्थलों में छन्द में भी विकल्प से एकश्रुति हो उसके लिए इस नये सूत्र की रचना की है। उस प्रकृत से सूत्र से यज्ञकर्म भिन्न में स्वाध्याय काल में भी वेदों में विकल्प से एकश्रुति होती है।

उदाहरण - 'इषे त्वोर्जे त्वा। इषे त्वोर्जे त्वा' (वाज. सं. १.१.१)। 'अग्न आया हि वीतये। अग्न आया हि वीतये' (ऋ. ६.१६.१०)

सूत्र अर्थ का समन्वय - 'इषे त्वोर्जे त्वा। अग्न आया हि वीतये' इन दोनों मन्त्रों का प्रयोग छन्द में देखते है। अतः प्रकृत सूत्र से इन दोनों मन्त्र में उदात्त अनुदात्त स्वरित स्वरों का विकल्प से एकश्रुति होती है। तथा एकश्रुति होने पर इन दोनों मन्त्रों में सभी जगह एक ही उदात्त स्वर का विधान होने पर 'इषे त्वोर्जे त्वा। अग्न आया हि वीतये' ये दोनों वैकल्पिक प्रयोग सिद्ध होते हैं।

विशेष – यहाँ विभाषा इस पद के ग्रहण से यज्ञकर्मणि इसकी निवृत्ति भी होती है, अलग से छन्दसि इस पद के ग्रहण से छन्द रूप में, यज्ञकर्म में, विकल्प से एकश्रुति प्राप्त होती ही है, परन्तु यहाँ कोई दोष नहीं है, उस 'यज्ञकर्मण्यजपन्यूङ्खसामसु' इस सूत्र में यज्ञकर्मणी यहाँ पर कर्म शब्द के ग्रहण से यज्ञकर्म में, छन्द में उस सूत्र से नित्य ही एकश्रुति होती, प्रकृत सूत्र से वैकल्पिक एकश्रुति नहीं होती है। इस प्रकृत सूत्र के वैकल्पिक होने से 'यज्ञकर्मण्यजपन्यूङ्खसामसु' इस सूत्र से वहाँ निषेध जप, न्यूङ्ख, और साम में प्रकृत सूत्र से विकल्प में एकश्रुति प्राप्त होती है। परन्तु उन जप आदि पदों का यहाँ ग्रहण के अभाव होने से और 'छन्दसि' इस पद का ही उल्लेख होने से उन जप आदि में प्रकृत सूत्र से वैकल्पिक एकश्रुति नहीं होती है।

पाठगत प्रश्न 9.2

1. वाक्य कब एकश्रुति होता है?
2. सम्बुद्धि क्या है?
3. जप क्या है?
4. न्यूङ्ख क्या?
5. वषट् कार से किस शब्द का ग्रहण होता है?
6. उच्चैस्तराम् इसका क्या अर्थ है?
7. विकल्प से एकश्रुति कहाँ पर होती है?

9.7 न सुब्रह्मण्यायां स्वरितस्य तूदात्तः॥ (१.२.३७)

सूत्र का अर्थ – सुब्रह्मण्या नामवाले निगद में 'यज्ञकर्मणि' इससे और 'विभाषा छन्दसि' इससे प्राप्त एकश्रुति नहीं होती है, किन्तु स्वरित को उदात्त हो जाता है।

सूत्र की व्याख्या – छः प्रकार के पाणिनीय सूत्रों में यह निषेध सूत्र है, और विधि सूत्र भी है। इससे एकश्रुति का निषेध होता है, और स्वरित के स्थान में उदात्त होता है। 'न सुब्रह्मण्यायां स्वरितस्य तु उदात्तः ये सूत्र में आये पदच्छेद है। वहाँ 'न' और 'तु' ये अव्ययपद है, सुब्रह्मण्यायाम् यह सप्तमी एकवचनान्त पद है, स्वरितस्य यह षष्ठी एकवचनान्त पद है, और उदात्तः यह प्रथमा एकवचनान्त पद है। 'एकश्रुति दूरात्संबुद्धौ' इस सूत्र से यहाँ 'एकश्रुति' इस प्रथमा एकवचनान्त पद की अनुवृति आ रही है। यहाँ पर भी एकश्रुतिः यह विशेषण पद नहीं है, अपितु विशेष्य पद ही है। अतः उदात्त अनुदात्त स्वरित स्वरों की एक अभिन्न श्रुति है यह उसका अर्थ है। यहाँ 'सुब्रह्मण्यायाम् एकश्रुतिः न, स्वरितस्य तु उदात्तः' यह सूत्र में आये पद का अन्वय है। सुब्रह्मण्या यह नाम विशेष है। और उससे सुब्रह्मण्या नाम वाले निगद को जानना चाहिए। अथ यह निगद क्या है? इस जिज्ञासा में कहते है निगद शब्द में वर्तमान गद् – धातु से अपाद बन्ध अर्थक है, नि पूर्वक से गद् – धातु

हमेशा गद्यते इस कर्म अर्थ में 'नौ गदनदपठस्वनः' इस सूत्र से अप् – प्रत्यय होता है। और उसके बाद प्रक्रिया कार्य में निगदः यह रूप सिद्ध होता है, यहाँ नि शब्द प्रकर्ष अर्थ में है। ऊँचे से अपादबन्ध यजुरात्मक जो मन्त्र वाक्य पढ़ते हैं, वह निगद होते है। उस निगद में पाद व्यवस्था नहीं है, और न ही अर्द्ध ऋचा की व्यवस्था है। इस प्रकार यहाँ सूत्र का अर्थ होता है – सुब्रह्मण्या नामवाले निगद में एकश्रुति नहीं होती है, और सूत्र से प्राप्त स्वरित के स्थान में उदात्त होता है।

उदाहरण – 'सुब्रह्मण्योऽ३म् इन्द्रागच्छ, ह रिव आगच्छ, मेधातिथेर्मेष वृ षणश्वस्य मेने गौरावस्कन्दिन्नहल्यायै जार कौशिकब्राह्मण गौतमब्रुवाण श्वः सु त्यागमागच्छ मघवन्' (शत. ब्रा. ३.३.११९)।

सूत्र अर्थ का समन्वय – यहाँ उदाहरण मन्त्र का यज्ञकर्म में विहित होने से और छन्द में होने से 'यज्ञकर्मणि' इस और 'विभाषा छन्दसि' इन दो सूत्रों से प्राप्त एकश्रुति का प्रकृत सूत्र से निषेध प्राप्त होता है। और सुब्रह्मण्योऽ३म् यहाँ पर स्वरित के स्थान में उदात्त होने का उपदेश है। वैसे ही यत् प्रत्ययान्त सुब्रह्मण्य शब्द की स्त्रीत्व विवक्षा में वहाँ 'अजाद्यतष्टाप्' इस सूत्र से टाप् में टाप् के टकार की 'चुटू' इस सूत्र से टकार की और 'हलन्त्यम्' इस सूत्र से पकार की इत् संज्ञा में और 'तस्य लोपः' इससे उन दोनों इत् संज्ञा के लोप होने पर और विभक्ति कार्य होने पर सुब्रह्मण्य यह रूप बनता है। सुब्रह्मण्य शब्द का यत् प्रत्ययान्त होने से और उस यत् प्रत्यय के तित् होने से 'तित् स्वरितम्' इस सूत्र से यहाँ अन्त्य अकार को स्वरित स्वर होता है। टाप् के आकार के स्थान में और सुब्रह्मण्य शब्द के अकार के स्थान में विहित आकार 'स्थानेऽन्तरतमः' इस सूत्र से अन्तरतम होने से स्वरित ही होता है। यहाँ टाप् प्रत्यय के पित् होने से 'अनुदात्तौ सुप्पितौ' इस सूत्र से आकार का अनुदात्त स्वर विशिष्ट होने पर भी उन दोनों में स्वरित अनुदात्त के स्थान में स्वरित ही होता है, 'स्वरितानुदात्तसन्निपाते स्वरितम्' इस सूत्र से स्वरित के और अनुदात्त के स्थान में स्वरित का ही निर्देश होने से। अतः पर सुब्रह्मण्या + ओम् इस अवस्था में 'ओमाङोश्च' इससे पररूप ओंकार होने पर 'सुब्रह्मण्योम्' इस शब्द का निपात अन्त होने से और उस निपात का 'निपाता आद्युदात्ताः' इस सूत्र से आद्युदात्त होने से और वहाँ आकार के और ओकार के स्थान में विहित ओंकार का ही स्वरित स्वर होता है। इस प्रकार 'सुब्रह्मण्योम्' यहाँ पर अन्तिम ओंकार स्वरित सिद्ध है। और उसके बाद प्रकृत सूत्र से ओकार के स्थान में सूत्र से प्राप्त स्वरित स्वर के स्थान में उदात्त स्वर का विधान है।

विशेष – यहाँ सुब्रह्मण्या + ओम् इस अवस्था में स्वरित के और उदात्त के स्थान में 'एकादेश उदात्तेनोदात्तः' इस सूत्र से एकादेश में उदात्त स्वर नहीं होता है, उस सूत्र में 'अनुदात्तस्य च यत्रोदात्तलोपः' इस सूत्र से अनुदात्तस्य इस पद की अनुवृति होने से उस सूत्र से उदात्त के और अनुदात्त के स्थान में ही उदात्त एकादेश होता है।

9.7.1 असावित्यन्तः॥ (वा. ६५१)

वार्तिक का अर्थ – उस निगद में ही प्रथमान्त का अन्त उदात्त होता है।

टिप्पणियाँ

वार्तिक की व्याख्या – यह वार्तिक 'न सुब्रह्मण्यायां स्वरितस्य तूदात्तः' इस सूत्र में पढ़ा हुआ है। इससे उदात्त स्वर का विधान है। असौ इति अन्तः ये वार्तिक में आये पदच्छेद हैं। वहाँ असौ यह प्रथमा एकवचनान्त पद है, इति यह अव्ययम है, और अन्तः यह प्रथमा एकवचनान्त पद है। 'सुब्रह्मण्योम् सुब्रह्मण्योम् सुब्रह्मण्योम् इन्द्रागच्छ हरिव आगच्छ ..... वासुदेवस्य पुत्रः पशुपतेः पौत्रो नारायणस्य नप्ता रामभद्रस्य पिता महेन्द्रस्य पौत्रः कमलाकस्य प्रपौत्रो देवदत्तो यजते सुत्याम्' – निगद में इस प्रकार का विधान होने से जाना जाता है की मन्त्र में यजमान के नाम प्रथमान्त से प्रयोग करने चाहिए, और उससे पूर्व पुरूषों के नाम षष्ठ्यन्त से प्रयोग करने चाहिए। यहाँ वार्तिक में 'असौ' इस पद से उस यजमान का ही प्रथमान्त नामवाचक पद को ग्रहण किया है। अथ इस वार्तिक से उस यजमान नामवाचक के प्रथमान्त पद के अन्त का उदात्त स्वर करने का नियम है।

उदाहरण – गार्ग्यो यजते।

वार्तक अर्थ का समन्वय – गार्ग्यः यहाँ पर 'गर्गादिभ्यो यञ्' इस सूत्र से यञ् प्रत्यय का विधान है। और उस यञ्प्रत्यय का ञित होने से गार्ग्य शब्द का 'ञ्नित्यादिर्नित्यम्' इस सूत्र से आद्युदात्त की प्राप्ति में प्रकृत वार्तिक से यहाँ अन्त के उदात्त स्वर का विधान किया है।

9.7.2 अमुष्येत्यन्तः॥ (वा. ६५२)

वार्तिक का अर्थ – षष्ठ्यन्त का भी अन्त उदात्त होता है।

वार्तिक की व्याख्या – यह वार्तिक 'न सुब्रह्मण्यायां स्वरितस्य तूदात्तः' इस सूत्र में पढ़ा गया है। इससे उदात्त स्वर का विधान है। यहाँ अमुष्य इति अन्तः ये वार्तिक में आये पदच्छेद है। यहाँ अमुष्य यह षष्ठी एकवचनान्त पद है, इति यह अव्यय है, अन्तः यह प्रथमा एकवचनान्त पद है। यहाँ पर भी 'वासुदेवस्य पुत्रः पशुपतेः पौत्रो नारायणस्य नप्ता रामभद्रस्य पिता महेन्द्रस्य पौत्रः कमलाकस्य प्रपौत्रो देवदत्तो यजते सुत्याम्' – इस रूप से मन्त्र में षष्ठ्यन्त से विहित पद का अमुष्य इस पद से ग्रहण किया है। अतः इस वार्तिक से उस षष्ठ्यन्त से विहित पद के अन्त को उदात्त स्वर का विधान है।

यहाँ यह जानना चाहिए की स्यान्त के विना अन्य षष्ठ्यन्त पदो की यहाँ विवक्षा है। यहाँ स्यान्त षष्ठ्यन्त का तोड़ा हुआ पद है, 'स्यान्तस्योपोत्तमं च' इस वार्तिक में 'स्यान्तस्य' इस पद ग्रहण से।

उदाहरण – दाक्षेः पिता यजते।

सूत्र अर्थ का समन्वय – दाक्षेः यहाँ पर दाक्षि – शब्द का षष्ठी एकवचन का रूप है। दक्ष शब्द से 'अत इञ्' इस सूत्र से इञ्प्रत्यय करने पर इञ्प्रत्यय के ञकार की 'हलन्त्यम्' इस सूत्र से इत् संज्ञा करने पर 'तस्य लोपः' इस सूत्र से उस ञकार का लोप होने पर और प्रक्रिया कार्य में दाक्षेः यह रूप सिद्ध होता है। यहाँ इञ्प्रत्यय के ञित्त्वाद होने से 'ञ्नित्यादिर्नित्यम्' इस सूत्र से आद्युदात्त की प्राप्ति में प्रकृत वार्तिक से यहाँ अन्त को उदात्त स्वर करने का विधान है।

9.7.3 स्यान्तस्योपोत्तमं च॥ (वा. ६५३)

वार्तिक का अर्थ – स्यान्त के और उपोत्तम के अन्त्य को उदात्त स्वर होता है।

वार्तिक की व्याख्या – यह वार्तिक 'न सुब्रह्मण्यायां स्वरितस्य तूदात्तः' इस सूत्र में पढ़ा गया है। इससे उदात्त स्वर का विधान है। स्यान्तस्य उपोत्तमं च ये वार्तिक में आये पदच्छेद है। वहाँ स्यान्तस्य यह षष्ठी एकवचनान्त पद है, उपोत्तमम् यह प्रथमा एकवचनान्त पद है, च यह अव्ययपद है। यहाँ स्यान्त पद से निगद में षष्ठ्यन्त से प्रयुज्यमान स्यान्त पदों का ग्रहण है। और इस प्रकार प्रकृत वार्तिक से उस पद के ही और उपोत्तम अर्थात् अन्त्य से पूर्व अन्त्य को उदात्त स्वर का विधान है। यहाँ चकार से अन्तः इस पद की अनुवृति आ रही है। उस प्रकृत वार्तिक से स्यान्त पद के अन्त्य का, और अन्त्य से पूर्व का उदात्त स्वर करने का विधान है।

उदाहरण – गार्ग्यस्य पिता यजते।

वार्तिक अर्थ का समन्वय – गार्ग्यस्य यहाँ पर गार्ग्यस्य यह स्यान्त पद है, उससे यहाँ ग्य – इस उपोत्तम अकार का और स्य – यहाँ अकार का प्रकृत वार्तिक से उदात्त स्वर का विधान है।

9.7.4 वा नामधेयस्य॥ (वा. ६५४)

वार्तिक का अर्थ – स्यान्त नामधेय का उपोत्तम उदात्त विकल्प से होता है।

वार्तिक की व्याख्या – यह वार्तिक भी 'न सुब्रह्मण्यायां स्वरितस्य तूदात्तः' इस सूत्र में पढ़ा गया है। इससे विकल्प से उदात्त स्वर का विधान है। यह दो पद वाला वार्तिक है। यहाँ वा यह अव्ययपद है, और नामधेयस्य यह षष्ठी एकवचनान्त पद है। 'स्यान्तस्योपोत्तमं च' इस वार्तिक से यहाँ स्यान्तस्य इस षष्ठी एकवचनान्त पद, उपोत्तमम् इस प्रथमा एकवचनान्त पद की यहाँ अनुवृति आ रही है। स्यान्तस्य यह नामधेय इस पद का विशेषण है। यहाँ नामधेयस्य इस पद से निगद में षष्ठ्यन्त से प्रयोग किये गये नामवाचक स्यान्त पदो का ग्रहण करते हैं। अतः प्रकृत वार्तिक से उस नामवाचक स्यान्त पद के उपोत्तमस्य अर्थात् अन्त्य से पूर्व का उदात्त स्वर करने का विधान है। यहाँ वा इस पदग्रहण से वह उदात्त स्वर विकल्प से होता है। इस वार्तिक से जिस पक्ष में उपोत्तम के उदात्त स्वर का अभाव है उस पक्ष में स्यान्त के अन्त का उदात्त स्वर होता है। यह भी अन्त स्थानीय उदात्त स्वर इस वार्तिक से ही होता है।

उदाहरण – देवदत्तस्य पिता यजते।

वार्तिक अर्थ का समन्वय – देवदत्तस्य यह नामवाचक पद है, किन्तु यहाँ यह पद स्यान्त है। अतः प्रकृत वार्तिक से यहाँ नामवाचक देवदत्तस्य इस पद के उपोत्तमस्य अर्थात् अन्त्य से पूर्व का विकल्प से उदात्त स्वर होता है। उसके अभाव पक्ष में अन्तस्य इसके स्य – इसके अकार को उदात्त स्वर होता है।

पाठगत प्रश्न 9.3

1. विभाषा छन्दसि इस सूत्र में विभाषा इस पद का ग्रहण कैसे किया है?
2. निगद क्या है?
3. निगद में यजमान के नामवाचक प्रातिपदिक में कौन सी विभक्ति होती है?
4. अमुष्येत्यन्तः इस वार्तिक से कैसे स्यान्तस्य षष्ठ्यन्त पद का अन्त उदात्त नहीं होता है?
5. उपोत्तमं नाम क्या है?

9.8 देवब्रह्मणोरनुदात्तः॥ (१.२.३८)

सूत्र का अर्थ- देव ब्रह्मन् शब्दों को स्वरित के स्थान में अनुदात्त होता है, सुब्रह्मण्या निगद में।

सूत्र की व्याख्या - छः प्रकार के पाणिनीय सूत्रों में यह विधि सूत्र है। इस सूत्र में दो पद हैं। देवब्रह्मणोः अनुदात्तः ये सूत्र में आये पदच्छेद हैं। वहाँ देवब्रह्मणोः ये सप्तमी द्विवचनान्त पद है। और अनुदात्तः यह प्रथमा एकवचनान्त पद है। पूर्व 'न सुब्रह्मण्यायां स्वरितस्य तूदात्तः' इस सूत्र से स्वरितस्य इस षष्ठ्यन्त तथा सुब्रह्मण्यायाम् इस सप्तम्यन्त पद की यहाँ अनुवृति है। सुब्रह्मण्यायां देवब्रह्मणोः स्वरितस्य अनुदात्तः यह पद का अन्वय है। देवब्रह्मणोः यहाँ पर 'देवश्च ब्रह्मा च इत्यनयोः द्वन्द्व समास में 'देवब्रह्माणौ, तयोः देवब्रह्मणोः। इस देव शब्द में, ब्रह्मन् शब्द मे परे इस अर्थ में है। अनुदात्तः यह प्रथमान्त विधीयमान पद है। सुब्रह्मण्यायाम् इसके सुब्रह्मण्य नाम यजुर्वेद के मन्त्र विशेष में इस अर्थ में। इस प्रकार सूत्र अर्थ होता है - सुब्रह्मण्य नाम यजुर्वेद के मन्त्र विशेष में देव ब्रह्मन् शब्द के स्वरित के स्थान में अनुदात्त स्वर होता है। 'न सुब्रह्मण्यायां स्वरितस्य तूदात्तः' इस सूत्र से उदात्त प्राप्ति प्रकृत सूत्र से उसको अनुदात्त स्वर होता है ऐसा जानना चाहिए।

उदाहरण- देवा ब्रह्माण आगच्छत् इति।

सूत्र अर्थ का समन्वय - सुब्रह्मण्यनाम यजुर्वेद के मन्त्र विशेष में देवशब्द तथा ब्रह्मण्-शब्द का प्रयोग है। अतः देवा ब्रह्माण आगच्छत् इस उदाहरण में देवा यहाँ पर वकार से उत्तर आकार का तथा ब्रह्माण यहाँ ह्मा से उत्तर आकार का 'न सुब्रह्मण्यायां स्वरितस्य तूदात्तः' इससे उदात्त की प्राप्ति है इस प्रकृत सूत्र से उसको अनुदात्त स्वर का विधान है।

9.9 स्वरितात्संहितायामनुदात्तानाम्॥ (१.२.३९)

सूत्र का अर्थ- स्वरित से उत्तर संहिता विषय में अनुदातों को एकश्रुति होती है।

सूत्र की व्याख्या - छः प्रकार के पाणिनीय सूत्रों में यह विधिसूत्र है। इस सूत्र में तीन पद हैं। वहाँ स्वरिताद् यह पञ्चमी एकवचनान्त पद है, संहितायाम यह सप्तमी एकवचनान्त तथा अनुदात्तानाम यह षष्ठी बहुवचनान्त पद है। 'एकश्रुति दूरात्सम्बुद्धौ' इस सूत्र से यहाँ एकश्रुतिः इस

एकवचनान्त पद की अनुवृति आती है। स्वरिताद् यह पञ्चम्यन्त पद है, अतः तस्मादित्युत्तरस्य इस परिभाषा से स्वरित से परे इस अर्थ को जानना चाहिए। एकश्रुतिः यह प्रथमान्त पद है, अतः उसका विधायक पद है। अनुदातों का यहाँ जाति में बहुवचन है। उससे एक दो और बहुतों की विधि समझनी चाहिए। अतः अनुदात्तानाम् इसका अर्थ है, अनुदात्त का, दो अनुदातों का, अथवा अनेक अनुदात्तों का। संहितायाम् यहाँ पर विषय सप्तमी है। 'एका श्रुतिः यस्य तत् एकश्रुति' इति बहुव्रीहि समास है। श्रवण को श्रुति कहते है। दूर से बुलाने पर, उदात्त-अनुदात्त-स्वरित स्वरों की एकश्रुति होती है। जहाँ उदात्त अनुदात्त स्वरित के पृथक् कोई भी स्वर सुनाई नहीं देता है, वह एकश्रुति स्वर है। संहितायां स्वरिताद् अनुदात्तानाम् एकश्रुतिः स्याद ये सूत्र में आये पदों का अन्वय है। सम्पूर्ण रूप से सूत्र का अर्थ होता है - संहिता के होने पर स्वरित स्वर से परे विद्यमान अनुदात्त स्वरों की एकश्रुति होती है, अर्थात् कोई भी विशिष्ट स्वर सुनाई नहीं देता है यह भाव है।

उदाहरण- इमं मे गङ्गे यमुने सरस्वति।

सूत्र अर्थ का समन्वय- इस उदाहरण में 'मे' इस शब्द में स्वरित स्वर है। उससे परे गङ्गे-यमुने इत्यादि शब्द है। और ये अनुदात्त है। स्वरित स्वर से परे विद्यमान होने से अनुदातो की उन गङ्गे यमुने इत्यादि शब्दों की एकश्रुति सिद्ध होती है।

9.10 उदात्तस्वरितपरस्य सन्नतरः॥ (१.२.४०)

सूत्र का अर्थ- उदात्तस्वरितौ परौ यस्मात्तस्य अनुदात्तस्य सन्नतरः स्यात्।

सूत्र की व्याख्या - छः प्रकार के पाणिनीय सूत्रों में यह विधिसूत्र है। इस सूत्र में दो पद विद्यमान है। वहाँ 'उदात्तस्वरितपरस्य' यह षष्ठी एकवचनान्त पद है, सन्नतरः यह प्रथमा एकवचनान्त पद है, किन्तु अनुदात्तानाम् यह षष्ठी बहुवचनान्त पद है। अनुदात्त ग्रहण की अनुवृति आती है। उदात्तस्वरितपरस्य यहाँ पर 'पर' शब्द का प्रत्येक के साथ अभिसम्बन्ध है। उदात्त परे है जिससे वह उदात्तपरः, स्वरित परे है जिससे वह स्वरितपरः। उदात्त परे और स्वरित परे अनुदात्तके स्थान में अनुदात्तर आदेश हो जाता है। सन्न शब्द का नीचे के इस अर्थ में प्रयोग है। अतः सन्नतर इसका अर्थ अनुदात्ततर है। और इस प्रकार सूत्र का अर्थ होता है - उदात्त स्वर और स्वरित स्वर जब परे रहते है, तब पूर्व के अनुदात्त स्वर को अनुदात्तर आदेश होता है।

उदाहरण- इमं मे गङ्गे सरस्वति शुतुद्रि व्यचक्षयत्स्वः, माणवक जटिलकाध्यापक क्व गमिष्यसि इति च।

सूत्र अर्थ का समन्वय- वेद में सम्बोधन पद को आमन्त्रित शब्द से कहते हैं। और अनुदात्त स्वर निघात शब्द को कहते है। यहाँ 'मे' शब्दको आश्रित करके सरस्वति यहाँ पर आमन्त्रित निघात है। शुतुद्रि शब्द का तो पाद आदि होने से निघात नहीं होता है। पाद के आदि में विद्यमान होने से, आमन्त्रित होने से षष्ठी से और आमन्त्रित के स्थान से शुतुद्रि शब्द के शकार से उत्तर उकार उदात्त होता है, अतः उसके परे होने पर पूर्व सरस्वति शब्द की इकार के स्थान से अनुदात्त के स्थान में अनुदात्तर आदेश होता है। व्यचक्षयत्स्वः यहाँ पर 'वि-इति' उपसर्ग होने से आद्युदात्त है।

टिप्पणियाँ

वि इससे परे अचक्षयत्स्व इस तिङन्त की तिङ् इससे निघात है। स्व: यहाँ 'न्यङ्स्वरौ स्वरितौ' इससे स्वरित है। उस स्वरित स्वर परे होने पर ऊपर के सूत्र से यकार उत्तर अकार को सन्नतर (अनुदात्ततर) स्वर सिद्ध होती है।

द्वितीय उदाहरण में क्व इस शब्द में स्वरित स्वर विद्यमान है। अत: उससे परे होने पर अध्यापक शब्द के ककार से उत्तर अकार अनुदात्त है, उसका इस सूत्र से सन्नतर आदेश होता है।

9.11 अनुदात्तं च॥ (८.१.३)

सूत्र का अर्थ- जिसकी आम्रेडित संज्ञा होती है वह अनुदात्त भी होता है।।

सूत्र की व्याख्या - छ: प्रकार के पाणिनीय सूत्रों में यह विधिसूत्र है। इस सूत्र में दो पद विद्यमान है। वहाँ अनुदात्तम् यह प्रथमा एकवचनान्त पद है। च यह अव्ययपद है। पूर्व से 'तस्य परमाम्रेडितम्' इस सूत्र में आम्रेडित संज्ञा करते है। 'सर्वस्य द्वे' इस अधिकार में यह सूत्र है। इस अधिकार में कहे हुए शब्दों को द्वित्व होता है। द्वित्व करने पर उन दोनों शब्दों के मध्य में जो दूसरा शब्द है, उसकी 'तस्य परमाम्रेडितम्' इस सूत्र से आम्रेडितसंज्ञा होती है। आम्रेडित का उदाहरण है- चौर चौर, वृषल वृषल, दस्यो दस्यो घातयिष्यामि त्वा, बन्धयिष्यामि त्वा इत्यादि। उस आम्रेडित संज्ञक की इस सूत्र से अनुदात्त स्वर होता है। और इस प्रकार सम्पूर्ण सूत्र का अर्थ होता है की दो कहे हुए शब्दों के मध्य में जो पर है, उसको अनुदात्त हो।

उदाहरण- दिवेदिवे इति।।

सूत्र अर्थ का समन्वय- इस उदाहरण में दिवे दिवे यहाँ पर दो बार दिवे-शब्द का प्रयोग है। अत: दूसरे दिवे-शब्द का इस सूत्र से अनुदात्त स्वर होता है।

विशेष- प्रकृति स्वर में प्राप्त पर के स्थान में अनुदात्त कहा है। अनुदात्त शब्द यहाँ पर शास्त्रीय अनुदात्त नहीं है, तो क्या है? इसका यहाँ अन्वर्थ ही ग्रहण किया है। उसका विग्रह होता है अविद्यमान उदात्त को अनुदात्त को। शास्त्रीय अनुदात्त की यदि विवक्षा होती तो वहाँ सम्बन्ध अर्थ में षष्ठी का उच्चारण होता है यह विशेष है।

पाठगत प्रश्न 9.4

1. 'सुब्रह्मण्यायाम्' इसका क्या अर्थ है?
2. 'देवब्रह्मणोरनुदात्त:' इस सूत्र का क्या अर्थ है?
3. 'सुब्रह्मण्यायाम् उदात्तस्वरितपरस्य सन्नतर:' इस सूत्र में विधीयमान एकश्रुति स्वर क्या है?
4. 'स्वरितात्संहितायामनुदात्तानाम्' इस सूत्र का क्या अर्थ है?

5. सन्नतर नाम क्या है?

6. वेद में आमन्त्रित शब्द का अर्थ क्या है?

7. 'उदात्तस्वरितपरस्य' का विग्रह लिखिए।

8. 'उदात्तस्वरितपरस्य सन्नतरः' इस सूत्र का अर्थ लिखिए।

9. 'अनुदात्तं च' इस सूत्र का अर्थ लिखिए।

10. 'अनुदात्तं च' इस सूत्र में अनुदात्त शब्द का अर्थ क्या है?

पाठ का सार

उदात्त से परे अनुदात्त को स्वरित होता है, परन्तु यदि अनुदात्त के परे उदात्त अथवा स्वरित हो तो पूर्व अनुदात्त के स्थान में स्वरित नहीं होता है। गार्ग्य आदि ऋषियों के मत में तो स्वरित ही होता है उसका निषेध नहीं होता है। दूर से सम्बोधन वाक्य की एकश्रुति का विधान है। यहाँ एकश्रुति विषय में विग्रह सहित उदाहरण का भी वर्णन है। उदात्त, अनुदात्त, स्वरित स्वरों के लोप को ही एकश्रुति कहते हैं। 'यज्ञकर्मण्यजपन्यूङ्खसामसु' इस सूत्र से जप, न्यूङ्ख और साम से भिन्न यज्ञकर्म के मन्त्र में एकश्रुति होती है। जप अनुकरण मन्त्र को कहते है, न्यूङ्खा नाम सोलह प्रकार के ओकार को कहते है, और साम वाक्य विशेषस्थ गीत को कहते है। यहाँ वषट्कारः इस पद से वौषट् इस अव्ययपद को ग्रहण करते है। यहाँ कार शब्द के ग्रहण करने के विषय में अन्य भी अनेक मत है। 'विभाषा छन्दसि' इस सूत्र से छन्द में विकल्प से एकश्रुति का विधान है। 'न सुब्रह्मण्यायां स्वरितस्य तूदात्तः' इस सूत्र से सुब्रह्मण्य नामवाले निगद में 'यज्ञकर्मण्यजपन्यूङ्खसामसु' इस सूत्र से विभाषा छन्दसि इस सूत्र से प्राप्त एकश्रुति का निषेध होता, और स्वरित स्वर के स्थान में उदात्त स्वर का विधान है। जिस मन्त्र वाक्य में पाद व्यवस्था नहीं होती है, उसे निगद कहते है। सुब्रह्मण्या+ओम् इत्यादि स्थलों में स्वरित स्वर का और उदात्त स्वर के स्थान में एकादेश उदात्तेनोदात्तः इस सूत्र से एकादेश में उदात्त स्वर नहीं होता है, उस सूत्र में अनुदात्तस्य च यत्रोदात्तलोपः इस सूत्र से अनुदात्तस्य इस पद की अनुवृति आती है, किन्तु उस एकादेश विधायक सूत्र से उदात्त अनुदात्त के स्थान में ही एकादेश उदात्त होता है, उदात्त स्वरित के स्थान में एकादेश नहीं होता है। असावित्यन्तः इस वार्तिक से निगद में प्रथमान्त पद का अन्त उदात्त होता है। स्यान्तस्योपोत्तमं च इस वार्तिक से स्यान्त पद के अन्त के और अन्त से पूर्व उदात्त स्वर होता है। वा नामधेयस्य इस सूत्र से नामवाचक स्यान्त पद के अन्त से पूर्व को विकल्प से उदात्त स्वर होता है, जिस पक्ष में वहाँ अन्त से पूर्व उदात्त नहीं होता है, वहाँ अन्त के स्थान में उदात्त स्वर होता है। देव ब्रह्मण शब्दों के स्वरित के स्थान में अनुदात्त हो। किन्तु स्वरित से परे अनुदात्त की एकश्रुति हो। दोबार कहे हुए शब्दों में बाद वाला आम्रेडित संज्ञक शब्द अनुदात्त होता है।

पाठांत प्रश्न

1. 'अग्निमीळे' इस रूप को स्वर सहित सिद्ध कीजिए।
2. 'नोदात्तस्वरितोदयमगार्ग्यकाश्यपगालवानाम्' इस सूत्र की व्याख्या कीजिए।
3. 'एकश्रुति दूरात्संबुद्धौ' इस सूत्र की व्याख्या कीजिए।
4. 'यज्ञकर्मण्यजपन्यूङ्खसामसु' इस सूत्र की व्याख्या कीजिए।
5. 'उच्चैस्तरां वा वषट्कार:' इस सूत्र की व्याख्या कीजिए।
6. 'विभाषा छन्दसि' इस सूत्र की व्याख्या कीजिए।
7. 'न सुब्रह्मण्यायां स्वरितस्य तूदात्त:' इस सूत्र का एक उदाहरण लिखिए।
8. 'असावित्यन्त:' इस वार्तिक की व्याख्या कीजिए।
9. 'देवब्रह्मणोरनुदात्त:' इस सूत्र की व्याख्या कीजिए।
10. 'उदात्तस्वरितपरस्य सन्नतर:' इस सूत्र के उदाहरण के प्रकारों को लिखिए।

पाठगत प्रश्नों के उत्तर

9.1

1. स्वरित स्वर का विधान है।
2. स्वरित स्वर।
3. 'उदात्तानुदात्तस्य स्वरित:' इसके असिद्ध होने से।
4. 'नोदात्तस्वरितोदयमगार्ग्यकाश्यपगालवानाम्' इससे।
5. गार्ग्य-काश्यप-गालव ऋषियों के मत में।
6. पर इस अर्थ में।

9.2

1. दूर से संबोधन करने वाले वाक्य में एकश्रुति होती है।
2. संबोधन करता है, जिस वाक्य से वह सम्बुद्धि है।
3. अनुकरण मन्त्र अथवा उपांशु प्रयोग जप है।
4. न्यूङ्ख नाम सोलह ओकार का है।
5. वौषट् - यह शब्द है।

6. अतितर उदात्त है।
7. छन्द में।

9.3

1. यज्ञकर्मणि इस पद की निवृत्ति के लिए।
2. उच्चै अपाद बन्ध यजुरात्मक है क्योकि जो मन्त्र वाक्य पढ़ते है वे निगद होते है।
3. प्रथमा विभक्ति।
4. 'स्यान्तस्योपोत्तमं च' इस वार्तिक से स्यान्तस्य इस पद ग्रहण से।
5. अन्त्य से पूर्व।

9.4

1. सुब्रह्मण्य नाम यजुर्वेद के मन्त्र विशेष में यह अर्थ है।
2. देव ब्रह्मण शब्द में स्वरित के स्थान में अनुदात्त हो यह अर्थ है।
3. जहाँ उदात्त, अनुदात्त, स्वरित का पृथक् से कोई भी स्वर सुनाई नहीं देता है वह एकश्रुति स्वर है।
4. स्वरित से परे अनुदात्तों की संहिता में या एकश्रुति हो यह अर्थ है।
5. अनुदात्ततर है।
6. सम्बोधन पद को।
7. उदात्त परे है जिससे वह उदात्तपरः, स्वरित परे है जिससे वह स्वरितपरः।
8. उदात्त स्वरित के परे जिससे उस अनुदात्त के स्थान में अनुदात्तर हो।
9. दो बार कहे हुए शब्दों के पर रूप को अनुदात्त हो।।
10. अविद्यमान उदात्त को, अनुदात्त को।

।। नौंवाँ पाठ समाप्त।।

10

धातु स्वर और प्रातिपदिक स्वर

वैदिक वाङ्मय में स्वर प्रकरण की अत्यधिक महानता का वर्णन है। भगवान पाणिनि के द्वारा रचित जो अष्टाध्यायी है, वहाँ वैदिक स्वर विषयक सूत्रों की प्रधानता छठे अध्याय से आरम्भ करके ग्रन्थ की समाप्ति तक इनका वर्णन है। इस पाठ में तो धातु से विहित स्वरों का और प्रातिपदिक से विहित स्वरों के विषय में आलोचना की है। और वहाँ भी उदात्त स्वर विषय में ही प्रधान रूप से आलोचना की है। उदाहरण में कहाँ पर उदात्त स्वर होता है इसकी प्रक्रिया आगे दिखाई गई है।

उद्देश्य

इस पाठ को पढ़कर आप सक्षम होंगे :

- धातु से विहित स्वरों के विषय में जान पाने में;
- प्रातिपदिक से विहित स्वरों को जान पाने में;
- उदात्त स्वर विषय में जान पाने में;
- स्वर प्रक्रिया को समझ पाने में;
- स्वर विषय में दक्ष हो पाने में;
- सूत्रों के अर्थ निर्णय करने में समर्थ हो पाने में;
- सूत्रों की व्याख्या कर पाने में;
- अनुवृत्ति आदि से सूत्र के अर्थ का निर्णय कर पाने में।

अथ धातु के स्वर

10.1 धातोः॥ (६.१.१६२)

सूत्र का अर्थ – धातु का अन्त उदात्त होता है।

सूत्र की व्याख्या – यह विधिसूत्र है। इस सूत्र में उदात्त स्वर का विधान किया है। इस सूत्र में षष्ठ्यन्त का एक ही पद है 'धातोः'। इस सूत्र में 'कर्षात्वतो घञोऽन्त उदात्तः' इस सूत्र से अन्तः उदात्तः इन दो पद की अनुवृति आती है। उदात्त अनुदात्त आदि अच् को ही सम्भव होते हैं, अतः अन्तिम अच् यह अर्थ प्राप्त होता है। उससे सूत्र का अर्थ होता है, धातु का अन्त अच् उदात्त होता है।

उदाहरण– अस्य उदाहरणं भवति गोपायर्त नः इति, असिं सत्यः इति च।

सूत्र अर्थ का समन्वय– गुप् धातु से पकार से उत्तर ऊकार की इत् संज्ञा और 'तस्य लोपः' इससे लोप होने पर गुप् इस स्थिति में इस धातु का एक ही अच् विद्यमान है, उससे जैसे किसी का यदि एक ही पुत्र होता है, तो वह ही आदि, वह ही अन्त है, उसी प्रकार यहाँ भी गुप् धातु के गकार से उत्तर उकार ही आदि उकार ही अन्त है, अतः इस अकार का प्रकृत सूत्र से उदात्त स्वर होता है। उस गुप्-इस धातु से आय प्रत्यय करने पर उससे निष्पन्न गोपाय इस पकार से उत्तर आकार की 'आद्युदात्तश्च' इससे आद्युदात्त स्वर होता है। 'सनाद्यन्ता धातवः' इससे गोपाय- इसकी धातु संज्ञा है, अतः उस अन्त अकार की भी प्रकृत सूत्र से उदात्त स्वर होता है। उसके बाद गोपाय धातु लोट् लकार मध्यम पुरुष एकवचन में थस् प्रत्यय करने पर गोपाय थस् इस स्थिति में गोपाय-धातु को शप् आदेश अनुबन्ध लोप होने पर गोपाय अ थस् इस स्थिति में शप् के अकार की 'अनुदात्तौ सुप्पितौ' इससे अनुदात्त स्वर होता है। यकार से उत्तर अकार का और शप् से उत्तर अकार का 'अतो गुणे' इससे पररूप एकादेश होता है, और उसको 'एकादेश उदात्तेनोदात्तः' इससे उदात्त स्वर होता है। उसके बाद थसः तम् यह आदेश होते हैं, उसका अत् उपदेश परे होने से 'तास्यानुदात्तेन्ङिदुपदेशात्' इससे अनुदात्त स्वर होता है, वहाँ 'उदात्तानुदात्तस्य स्वरितः' इससे तकार से उत्तर अकार को स्वरित स्वर इस प्रकार गोप्पाध्यतम् यह रूप सिद्ध होता है। असिं सत्यः यहाँ पर अस्-धातु से मध्यम पुरुष एकवचन में सिप् प्रत्यय करने पर अनुबन्ध लोप होने पर अस् सि इस स्थिति में 'तासस्त्योर्लोपः' इससे सकार के लोप होने पर अकार को उदात्त स्वर, और उससे परे स्वरित स्वर होता है। सकार के लोप होने पर 'उदात्तस्वरितपरस्य.' इससे अनुदात्त स्वर होता है।

10.2 स्वपादिहिंसामच्यनिटि॥ (६.१.१८८)

सूत्र का अर्थ – स्वपादि धातुओं को तथा हिंस धातु के अजादि अनिट् सार्वधातुक परे हो, तो विकल्प से आदि को उदात हो जाता है।

सूत्र की व्याख्या– विधिसूत्र है। इस सूत्र से उदात्त स्वर का नियम किया है। इस सूत्र में तीन पद है, स्वपादिहिंसाम् अचि अनिटि ये सूत्र में आये पदच्छेद हैं। स्वपादिसहिंसाम् यह षष्ठी बहुवचनान्त

टिप्पणियाँ

है, अचि यह सप्तम्यन्त है, अनिटि यह सप्तम्यन्त पद है। इट् नहीं अनिट् उस अनिट् में इट् से भिन्न में यह अर्थ है। स्वप्-धातुः आदि में जिसके वह स्वपादि, स्वपादि और हिंस् स्वपादिहिंसः छन्द में बहुवचन है, उन स्वपादि हिंसा को। स्वपादिगण अदादिगण के अन्तर्गत एक गण है, वहाँ पढ़ी हुई धातुओं को और हिंस्-धातु को यह अर्थ है। इस सूत्र में 'कर्षात्वतो घञोऽन्त उदात्तः' इस सूत्र से उदात्तः इस प्रथमान्त पद की अनुवृति आ रही है। तास्यनुदात्तेन्ङिदुपदेशाल्लसार्व धातुकमनुदात्त -मन्ङ्वङोः इस सूत्र से सार्वधातुकम् इस पद की अनुवृति आ रही है। वह यहाँ सप्तम्यन्त से विपरीत का ग्रहण किया है। सार्वधातुकम् इस लकार के स्थान में हुआ यह अर्थ है। उससे तिङ्, शतृ-शानच् ये ग्रहण करते है। आदिः सिचोऽन्यतरस्याम् इससे आदिः इस पद की और अन्यतरस्याम् इस अव्यय पद की अनुवृति आती है। अचि यहाँ पर लसार्वधातुक में इसका विशेषण है उससे 'यस्मिन् विधिस्तदादावल्ग्रहणे' इस परिभाषा से उसके आदि में विधि होती है, उससे अजादि में लसार्वधातुक यह प्राप्त होता है। उससे इस सूत्र का अर्थ होता है- स्वपादि धातुओं को और हिंस्-धातु को इट् से भिन्न में अजादि लसार्वधातुक परे आदि उदात्त विकल्प से होता है।

उदाहरण- अस्य उदाहरणानि- स्वपन्ति, श्वसन्ति, हिंसन्ति इत्यादीनि।

सूत्र अर्थ का समन्वय- स्वप्-धातु और श्वस्-धातु स्वपादिगण में पढ़ी हुई हैं। रुधादिगण की हिंस्-धातु भी प्रकृत सूत्र में ग्रहण की है। उससे इन धातुओं के प्रथमपुरुष, बहुवचन की विवक्षा में झि प्रत्यय करने पर झि को अन्त आदेश होने पर प्रक्रिया कार्य में स्वप् अन्ति, श्वस् अन्ति, हिंस् अन्ति इस प्रकार होने से इट् भिन्न का अजादि लसार्वधातुक परे होने पर प्रकृत सूत्र से धातुओं का आदि अच् विकल्प से उदात्त होता है। यहाँ उदात्त स्वर के विकल्प होने से उसके अभाव पक्ष में प्रत्यय स्वर निमित्त करने पर मध्य में उदात्त स्वर होता है।

विशेष- वृत्तिकार के अनुरोध से कित् और ङित् के परे ही यह आद्युदात्त स्वर होता है। सूत्र में अचि इस पद ग्रहण से स्वप्यात्, हिंस्याद् इत्यादि में आद्युदात्त स्वर नहीं होता है अजादि लसार्वधातुक के अभाव होने से। सूत्र में अनिट्-इसके ग्रहण से इट् सहित लसार्वधातुक के परे यह सूत्र कार्य नहीं करता है। जैसे स्वपितः, श्वसितः इत्यादि में इट् आगम के विद्यमान होने से आद्युदात्त स्वर नहीं होता है।

10.3 अभ्यस्तानामादिः॥ (६.१.१८९)

सूत्र का अर्थ- अजादि लसार्वधातुक परे हो, तो अभ्यस्त संज्ञको के आदि को उदात्त होता है।

सूत्र की व्याख्या- विधिसूत्र है। इस सूत्र से अभ्यस्तनाम् आदि में उदात्त स्वर का विधान है। इस सूत्र में दो पद है, अभ्यस्तानाम् आदिः ये सूत्र में आये पदच्छेद है। अभ्यस्तानाम् यह षष्ठी बहुवचनान्त है, आदिः यह प्रथमा एकवचनान्त पद है। धातु को जब द्वित्व होता है, तब वह समुदाय अभ्यस्त संज्ञक होता है। इस सूत्र मे 'कर्षात्वतो घञोऽन्त उदात्तः' इस सूत्र से उदात्तः इस प्रथमान्त पद की अनुवृति आती है। उदात्त अनुदात्त आदि अच् ही सम्भव होते हैं इसलिए अच् ही प्राप्त होता है। 'स्वपादिहिंसामच्यनिटि' इससे अचि अनिटि इन दो सप्तम्यन्त पद की अनुवृति आती है। जो

इट् नहीं है वह अनिट् उस अनिट् में इट् से भिन्न में यह अर्थ है। 'तास्यनुदात्तेन्ङिददुपदेशाल्लसार्वधातुकम - नुदात्तमन्ङ्वडोः' इस सूत्र से लसार्वधातुकम् इस पद की अनुवृति आती है और वह यहाँ सप्तम्यन्त से विपरीत आती है। लसार्वधातुकम् यहाँ लकार के स्थान में हुआ है यह अर्थ है। उससे तिङ्- शतृ-शानच्-इत्यादि का ग्रहण करते है। अचि यह सार्वधातुक इसका विशेषण है, उससे 'विधिस्तदादावल्ग्रहणे' इस परिभाषा से उसके आदि में विधि होती है, उससे अजादि लसार्वधातुक में यह अर्थ प्राप्त होता है। उससे सूत्र का अर्थ होता है इट् से भिन्न में अजादि लसार्वधातुक परे अभ्यस्त संज्ञको के आदि अच् उदात्त होते हैं।

उदाहरण- इसका उदाहरण है - बिभ्रंती जराम्।(तै.सं-४-३-११-५)। यदाहवनी जुह्वघति। (तै.ब्रा.१-१-१०-५)।

सूत्र अर्थ का समन्वय- बिभ्रंती यहाँ पर 'डुभृञ् धारणपोषणयोः' इस धातु से शतृ प्रत्यय करने पर व अनुबन्ध लोप करने पर 'कर्तरि शप्' इससे शप् प्रत्यय करने पर 'जुहोत्यादिभ्यः श्लुः' इससे शप् का लोप होने पर 'श्लौ' इस सूत्र से धातु को द्वित्व होता है। उस समुदाय की अभ्यस्त संज्ञा होती है। उसके बाद 'पूर्वोऽभ्यासः' इससे पूर्व की अभ्यास संज्ञा होने पर 'भृञामित्' इससे अभ्यस्त अच् ऋकार के इकार में 'अभ्यासे चर्च' इससे भकार के जश्त्व होने पर वकार में बिभृ अत् इस स्थिति में 'इको यणचि' इससे ऋकार के रकार में निष्पन्न बिभ्रत् इसके शत्रन्त होने से 'स्त्रियाम्' 'उगितश्च' इससे ङीप् में अनुबन्ध लोप ईकार करने पर बिभ्रती यह रूप बनता है। यहाँ इस धातु के अभ्यस्त होने से प्रकृत सूत्र से आदि स्वर उदात्त होता है।

जुह्वति यहाँ पर 'हु दानादानयोः' इस धातु से लट्-लकार में प्रथम पुरुष का बहुवचन में झि प्रत्यय करने पर पूर्व के समान श्लु प्रत्यय करने पर पूर्व के समान द्वित्व होता है। उससे यह धातु अभ्यस्त संज्ञक है। और उस अभ्यास संज्ञा में हु हु झि इस स्थिति में 'कुहोश्चुः' इससे हकार के स्थान में झकार करने पर 'अभ्यासे चर्च' इससे झकार के स्थान में जकार करने पर 'जु हु झि 'इस स्थिति में 'अदभ्यास्तात्' इससे झकार के स्थान में अद आदेश होने पर जुहु अति इस स्थिति में 'हुश्नुवोः सार्वधातुके' इससे हु-इसके उकार के स्थान में वकार करने पर जुह्वति यह रूप सिद्ध होता है। यहाँ पर प्रकृत सूत्र से इस धातु के आदि अच् को उदात्त होता है।

ये ददति प्रिया वसु इति दधाना इन्द्रे इत्यादीन्यपि ये इसके उदाहरण है। यहाँ दधाना यहाँ पर 'चितः' इससे अन्त को उदात्तस्वर किया है। परन्तु आठवे अध्याय में 'चितः' इस सूत्र की अपेक्षा से इस सूत्र के परे होने से अन्त उदात्त स्वर को बांधकर इस सूत्र से आद्युदात्त स्वर होता है।

विशेष- 'आदिः सिचोऽन्यतरस्याम्' इस सूत्र से इस सूत्र में 'आदिः' इस पद की अनुवृति आती है, फिर भी यहाँ आदि इस पद को ग्रहण करने से आद्युदात्त स्वर का नित्य विधान किया है, अन्यथा आदि ग्रहण अभाव में उस सूत्र से ही (आदिः सिचोऽन्यतरस्याम्) अन्यतरस्याम् इसकी अनुवृति आयेगी, उससे इस सूत्र को आद्युदात्त स्वर विकल्प से होगा, वैसा न हो इसलिए यहाँ पर आदि ग्रहण किया है ऐसा जानना चाहिए।

टिप्पणियाँ

10.4 अनुदात्ते च॥ (६.१.१९०)

सूत्र का अर्थ- जिसमे उदात्त अविद्यमान हो ऐसे लसार्वधातुक के परे रहते भी अभ्यस्त संज्ञको के आदि को उदात्त होता है।

सूत्र की व्याख्या- यह विधिसूत्र है। इस सूत्र से उदात्त स्वर का विधान है। इस सूत्र में दो पद है। अनुदात्ते यह सप्तम्यन्त पद है। च यह अव्ययपद है। उदात्त नहीं है अनुदात्त है, उस अनुदात्त में यहाँ अविद्यमान उदात्त में यह अर्थ है। 'अभ्यस्तानामादिः' इस सूत्र से अभ्यस्तानाम् यह षष्ठी बहुवचनान्त पद है, और आदिः यह प्रथमान्त पद की यहाँ पर अनुवृति आती है। धातु को जब द्वित्व होता है, तब उस समुदाय की अभ्यस्त संज्ञा होती है। इस सूत्र में 'कर्षात्वतो घञोऽन्त उदात्तः' इस सूत्र से उदात्तः इस प्रथमान्त पद की अनुवृति आती है। उदात्त अनुदात्त आदि अच् को ही सम्भव है, अतः अच् ही प्राप्त होते हैं। 'तास्यनुदात्तेन्ङिदुपदेशाल्लसार्वधातुकमनुदात्तमन्ङ्वडोः' इस सूत्र से लसार्वधातुकम् इस पद की अनुवृति यहाँ आती है, और वह यहाँ पर सप्तम्यन्त से विपरीत है। लसार्वधातुकम् इसके लकार के स्थान में हुआ यह अर्थ है। उससे तिङ्-शतृ-शानच्-इनका ग्रहण होता है। लसार्वधातुकम् यहाँ पर सप्तमी निर्देश होने से 'तस्मिन्निति निर्दिष्टे पूर्वस्य' इससे उसके परे होने पर पूर्व का कार्य भी जाना जाता है। इस प्रकार इस सूत्र का अर्थ होता है यहाँ पर जहाँ उदात्त स्वर नहीं है, उस प्रकार के लसार्वधातुक के परे अभ्यस्त संज्ञक धातुओं के आदि अच् उदात्त होता है।

उदाहरण- इसका उदहरण होता है - दधासि रत्नं द्रविणं च दाशुषे इति।

सूत्र अर्थ का समन्वय- यहाँ दधासि इसमें धा धातु से मध्यमपुरुष एकवचन में सिप् प्रत्यय करने पर धा सिप् इस स्थिति में शप् और उसका 'जुहोत्यादिभ्यः श्लुः' इससे लोप करने पर 'श्लौ' इससे धा धातु को द्वित्व होता है, उससे इस धातु को द्वित्व होने से यह धातु अभ्यस्त संज्ञक है। वहाँ पूर्व के समान इस अभ्यास संज्ञा में 'ह्रस्वः' इससे अभ्यास के अच् को ह्रस्व करने पर और उसके बाद जश्त्व करने पर दधा सिप् इस स्थिति में सिप् के पित् होने से 'अनुदात्तौ सुप्पितौ' इससे सकार से उत्तर इकार की अनुदात्त संज्ञा होती है। उससे 'ति' इसकी उदात्त भिन्न की लसार्वधातुक के परे होने से पूर्व अभ्यस्त संज्ञक धा धातु के आदि अच् दकार से उत्तर अकार की प्रकृत सूत्र से उदात्त स्वर सिद्ध होता है।

10.5 भीह्रीभृहुमदजनधनदरिद्राजागरां प्रत्ययात्पूर्व पिति॥ (६.१.१९२)

सूत्र का अर्थ - भी आदि के अभ्यस्त को पित लसार्वधातुक के परे रहते प्रत्यय से पूर्व को उदात्त होता है।

सूत्र की व्याख्या- यह विधिसूत्र है। इस सूत्र से उदात्त स्वर होता है। इस सूत्र में चार पद है। भीह्रीभृहुमदजनधनदरिद्राजागराम् यह षष्ठी बहुवचनान्त है, प्रत्ययात् यह पञ्चमी एकवचनान्त है, पूर्वम् यह प्रथमा एकवचनान्त है, पिति यह सप्तमी एकवचनान्त पद है। इस सूत्र में 'कर्षात्वतो घञोऽन्त उदात्तः' इस सूत्र से उदात्तः इस प्रथमान्त पद की अनुवृति आती है। अभ्यस्तानामादिः

इस सूत्र से अभ्यस्तानाम् इस षष्ठी बहुवचनान्त पद की यहाँ अनुवृति आ रही है। धातु को जब द्वित्व होता है, तब द्वित्व विशिष्ट धातु अभ्यस्त संज्ञक होती है। तास्यनुदात्तेन्ङिदुपदेशाल्लसार्वधातुकमनुदात्तमन्ङ्वडोः इस सूत्र से लसार्वधातुकम् इस पद की अनुवृति आती है और वह यहाँ पर सप्तम्यन्त से विपरिणाम है। लसार्वधातुकम् इसके लकार के स्थान हुआ है। उससे तिङ्- शतृ-शानच्-इन पदों का ग्रहण होता है। लसार्वधातुके यहाँ पर और पिति यहाँ पर सप्तमी निर्देश होने से 'तस्मिन्निति निर्दिष्टे पूर्वस्य' इससे उसके परे होने पर पूर्व के कार्य होता है ऐसा जाना जाता है। उससे इस सूत्र का अर्थ होता है- भी, ह्री, भृहु, मद, जन, धन, दरिद्रा, और जागृ धातु के अभ्यस्तो को पित लसार्वधातुक के परे रहते प्रत्यय से पूर्व को उदात्त होता है।

उदाहरण- इसका उदाहरण होता है - योऽग्निहोत्रं जुहोति।

सूत्र अर्थ का समन्वय- हु धातु से लट् लकार में प्रथमपुरुष एकवचन में तिप् प्रत्यय करने पर पकार की 'हलन्त्यम्' इस सूत्र से इत्संज्ञा होने पर 'तस्य लोपः' इससे लोप करने पर द्वित्व आदि कार्य करने पर 'जुहो ति' इस स्थित्ति में तिप् का तिङ्प्रत्ययो में पाठ होने से 'तिङ्शित्सार्वधातुकम्' इससे तिप् की सार्वधातुक संज्ञा सिद्ध होती है। और इस प्रकार पित् में सार्वधातुक संज्ञक में तिप् प्रत्यय के परे होने पर पूर्व के हकार से उत्तर ओकार की प्रकृत सूत्र से उदात्त स्वर सिद्ध होता है।

10.6 लिति॥ (६.१.१९३)

सूत्र का अर्थ- ल जिसका इत् सज्ञक हो, ऐसे प्रत्यय से पूर्व को उदात्त होता है।

सूत्र की व्याख्या- यह विधिसूत्र है। इस सूत्र से उदात्त स्वर होता है। इस सूत्र में लिति यह सप्तम्यन्त एक ही पद है। लकार है इत् जिसका वह लित्, उस अर्थ में। लिति यहाँ पर सप्तमी निर्देश होने से 'तस्मिन्निति निर्दिष्टे पूर्वस्य' इससे लित के परे पूर्व के कार्य को जानना चाहिए। इस सूत्र में 'कर्षात्वतो घञोऽन्त उदात्तः' इस सूत्र से उदात्तः इस प्रथमान्त पद की अनुवृति आती है। प्रथमान्त होने से यह विधान करने वाला पद है। 'भीह्रीभृहुमदजनधनदरिद्राजागरां प्रत्ययात् पूर्वं पिति' इस सूत्र से प्रत्ययाद् इसोंपञ्चम्यन्त, और पूर्वम इस प्रथमान्त पद की अनुवृति आती है। उससे सूत्र का अर्थ होता है - लित प्रत्यय के परे पूर्व स्वर को उदात्त होता है।

उदाहरण- इसका उदाहरण होता है - चिकीर्षकः इति, यत्र बाणाः (तै.सं.-४-६-४-५) इति च।

सूत्र अर्थ का समन्वय- कृ धातु को सन् प्रत्यय करने पर द्वित्वादि कार्य करने में 'चिकीर्ष' इस स्थिति में, वहाँ ण्वुल् प्रत्यय करने पर तथा अनुबन्ध लोप करने पर 'चिकीर्ष वु' इस स्थत्ति में 'युवोरनाकौ' इस सूत्र से वु को अक् आदेश करने पर षकार से उत्तर अकार के लोप होने पर 'चिकीर्ष्अक' इस स्थिति में ण्वुल् प्रत्यय के लित् होने से, उसके परे पूर्व के ककार से उत्तर ईकार की प्रकृत सूत्र से उदात्त स्वर का विधान है। वहाँ सभी के संयोग करने पर और विभक्ति आदि कार्य करने पर चिकीर्षक यह रूप सिद्ध होता है। यत् शब्द से 'सप्तम्यास्त्रल्' इससे त्रल् प्रत्यय करने पर त्रल् प्रत्यय का लित् होने से उससे पूर्व के यकार से उत्तर अकार की प्रकृत सूत्र से उदात्त स्वर सिद्ध होता है।

पाठगत प्रश्न 10.1

1. धातु के अन्त में क्या स्वर होता है?
2. स्वपादिगण किस गण के अन्तर्गत गण है?
3. अभ्यस्तानामादिः इस सूत्र का क्या अर्थ है?
4. अनुदात्ते च इसका क्या अर्थ है?
5. जुहोति यहाँ पर हकार से उत्तर ओकार का क्या स्वर है?
6. यत्र यहाँ पर यकार से उत्तर अकार का उदात्त स्वर किस सूत्र से होता है?

अथ प्रातिपदिक स्वर

10.7 कर्षात्वतो घञोऽन्त उदात्तः॥ (६.१.१५९)

सूत्र का अर्थ- कृष विलेखने धातु तथा आकारवान जो घञन्त शब्द उनके अन्त को उदात होता है।

सूत्र की व्याख्या- यह विधिसूत्र है। इस सूत्र से उदात्त स्वर का विधान होता है। इस सूत्र में चार पद विद्यमान है। कर्षात्वतः यह षष्ठी एकवचनान्त पद है, घञः यह भी षष्ठी एकवचनान्त है, अन्तः यह प्रथमा एकवचनान्त है, उदात्तः यह भी प्रथमा एकवचनान्त पद है। कर्षात्वतः यहाँ पर 'कर्षश्च आत्वतश्च, इस प्रकार का विग्रह है। कर्ष धातु को और आकार युक्त धातु को यह अर्थ है। घञः यह कर्षात्वतः इसका विशेषण है, उससे तदन्त विधि से घञन्त कर्ष तथा आकार धातु से यह अर्थ प्राप्त होता है। उदात्त अनुदात्त आदि अच् ही हो सकते हैं, अतः अच् इसका भी यहाँ संयोग है। उससे इस सूत्र का अर्थ होता होता है- घञन्त कर्ष धातु और घञन्त आकार युक्त ध ातु से अन्त अच् उदात्त होता है।

उदाहरण- इसका उदाहरण है- कर्षः इति, दायः इति च।

सूत्र अर्थ का समन्वय- कृष् विलेखने इस धातु से घञ् प्रत्यय करने पर कर्षः यह रूप बनता है। यहाँ घञन्त कर्ष-इसके अन्त के षकार से उत्तर अकार का प्रकृत सूत्र से उदात्त स्वर होता है।

दा दाने इस आकार युक्त धातु से 'आतो युक्चिण्कृतोः' इससे घञ् प्रत्यय करने पर दायः यह रूप बनता है। यहाँ आकार होने से घञन्त दाय-इसके अन्त यकार से उत्तर अकार को प्रकृत सूत्र से उदात्त स्वर सिद्ध होता है।

विशेष- घञन्त शब्दो को 'ञ्नित्यादिर्नित्यम्' इससे आदि अच् को उदात्त स्वर होता है। परन्तु इस सूत्र को उसको अवरुद्ध करके घञन्त कर्ष धातु को और घञन्त आकार युक्त धातु को प्रकृत सूत्र से अन्त अच् उदात्त होता है।

प्रकृत सूत्र में 'कर्ष' यहाँ पर शप् प्रत्यय करने से (कृ+शप्) घञ् प्रत्यय से निर्देश नहीं होने से, उस तुदादि गण में जो कृ धातु है, उससे घञ् प्रत्यय करने पर तदन्त शब्द के अन्त अच् का प्रकृत सूत्र से उदात्त स्वर ही नहीं होता है, और भी 'ञ्नित्यादिर्नित्यम्' इससे आदि अच् को उदात्त स्वर होता है।

10.8 उञ्छादीनाञ्च॥ (६.१.१६०)

सूत्र का अर्थ- उच्छादि शब्दों को भी अन्तोदात्त होता है।

सूत्र की व्याख्या- यह विधिसूत्र है। इस सूत्र से उदात्त स्वर का विधान है। इस सूत्र में दो पद है, उञ्छादीनाम् यह षष्ठी बहुवचनान्त है, च यह अव्यय पद है। इस सूत्र में 'कर्षात्वतो घञोऽन्त उदात्तः' इस सूत्र से अन्तः इस प्रथमान्त, और उदात्तः इस प्रथमान्त पद की अनुवृति आती है। उदात्त और अनुदात्त आदि अच् को ही सम्भव है, अतः अच् इस पद को जोड़ा जाता है। उञ्छः आदि है जिसका वह उञ्छादिः और उन उञ्छादियो का समूह। उञ्छादि एक गण है वहाँ - उञ्छ-म्लेच्छ-जञ्ज-जल्प-जप-वध-युग-वेग-वेद-इत्यादि शब्द है। इस गण में आठ गणसूत्र भी है। इस प्रकार इस सूत्र का अर्थ होता है, उञ्छादिगण में पढ़े हुए शब्दों के अन्त अच् उदात्त होता है।

उदाहरण- इस सूत्र के उदाहरण है - सत्यं ब्रवीमि वध इत् स तस्य (तै. ब्रा.२-८-८-७) इति। वैश्वानरः कुशिकेभिर्युगेयुगे इति, गावः सोमस्य प्रथमस्य भक्षः इति च।

सूत्र अर्थ का समन्वय- वध-यह शब्द उञ्छादिगण में पढ़ा हुआ है, अतः यहाँ प्रथम वाक्य में उस वध यहाँ पर धकार से उत्तर अकार को उदात्त स्वर होता है। युग शब्द उञ्छादिगण में पढ़े होने से उस 'कुशिकेभिर्युगेयुगे' यहाँ गकार से उत्तर एकार का प्रकृत सूत्र से उदात्त स्वर सिद्ध होता है। घञन्त भक्ष शब्द भी उञ्छादिगण में पढ़ा हुआ है, उससे 'गावः प्रथमस्य भक्षः यहाँ पर षकार से उत्तर अकार का प्रकृत सूत्र से उदात्त स्वर है।

विशेष - युञ्ज् धातु से घञ् प्रत्यय करने पर सिद्ध हुआ युग- यह शब्द उञ्छादिगण में पढ़ा हुआ है। यहाँ घञ् प्रत्यय के परे पूर्व 'पुगन्तलघूपदस्य च' इससे गुण प्राप्त था, परन्तु गणपाठ में इसी प्रकार के पाठ के होने से गुण का निषेध निपातन से किया है।

10.9 ञ्नित्यादिर्नित्यम्॥ (६.१.१९७)

सूत्र का अर्थ- ञकार और नकार इत् संज्ञक है जिनका ऐसे प्रत्ययों के परे रहते नित्य ही आदि उदात्त होता है।

टिप्पणियाँ

सूत्र की व्याख्या- यह विधिसूत्र है। इस सूत्र से उदात्त स्वर का विधान है। इस सूत्र में तीन - तीन पद है। यहाँ ञ्निति यह सप्तमी एकवचनान्त, आदिः यह प्रथमा एकवचनान्त, नित्यम् यह प्रथमा एकवचनान्त पद है। ञ्निति इसके सप्तम्यन्त होने से 'तस्मिन्निति निर्दिष्टे पूर्वस्य' इससे पूर्व के कार्य को जानना चाहिए। ञ्निति यहाँ पर 'ञ् च न् च ञ्नौ', ञ्नौ इत् है जिसके वह ञ्नित् उस ञ्नित में यहाँ पर ञित् में और नित् में यह अर्थ है। इस सूत्र में 'कर्षात्वतो घञोऽन्त उदात्तः' इस सूत्र से उदात्तः इस प्रथमान्त पद की अनुवृति आती है। उदात्तः इसके प्रथमान्त होने से इस विधायक पद को जाना जाता है। उससे इस सूत्र का अर्थ होता है - ञित् और नित् के परे तदन्त शब्द को नित्य आदि उदात्त होता है।

उदाहरण- इसका उदाहरण है - यस्मिन् विश्वानि पौंस्या (ऋ.१.६.९) इति, सुते दधिष्व नश्चनः (ऋ.१-३-६) इति।

सूत्र अर्थ का समन्वय- पुंसः कर्म इस अर्थ में 'गुणवचनब्राह्मणादिभ्यः ष्यञ्कर्मणि च' इससे पुंस्-शब्द से ष्यञ् प्रत्यय करने पर 'पौंसानि' यह पद निष्पन्न होता है। ष्यञ् प्रत्यय के ञकार की इत्संज्ञा तथा 'तस्य लोपः' इससे लोप होता है, अतः शेष जो 'ष्य' उसको ञिद् कहते है। इस प्रकार ञित् के परे उस पौंस्यानि इसके आदि अच् औकार की प्रकृत सूत्र से उदात्त स्वर होता है। वेद में पौंस्यानि यहाँ पर 'सुपां सुलुक् पूर्वसवर्णाच्छेयाडाड्यायाजालः' इससे प्रथमा बहुवचन में डा प्रत्यत्य करने पर और प्रक्रिया कार्य में पौंस्या यह रूप बनता है।

चायृ पूजानिशामनयोः इस धातु को 'चायतेरन्ने ह्रस्वश्च' इस उणादिक सूत्र से असुन् प्रत्यय करने पर आकार के अकार में नुडागम अनुबन्ध लोप करने पर 'चय् न् अस्' इस स्थिति में 'लोपो व्योर्वलि' इससे यकार का लोप करने की प्रक्रिया में 'चनः' यह रूप बनता है। यहाँ असुन् प्रत्यय के नकार की इत्संज्ञा होती है, अतः असुन् प्रत्यय नित् होता है, उस नित में असुन्प्रत्यय के परे उस चनः इसके आदि अच् अकार की प्रकृत सूत्र से उदात्त स्वर होता है।

विशेष- पुंस्-शब्द का यद्यपि ब्राह्मणादिगण में पाठ नहीं है, फिर भी ब्राह्मणादेराकृतिगण होने से पुंस्-शब्द का यहाँ ही ग्रहण है। आकृति के स्वरूप से यहाँ शब्दों का ग्रहण होता है वह आकृतिगण है।

10.10 अन्तश्च तवै युगपत्॥ (६.१.२००)

सूत्र का अर्थ- तवै-प्रत्ययान्त शब्द का अन्त और आदि को एक साथ उदात्त होता है।

सूत्र की व्याख्या- यह विधिसूत्र है। इस सूत्र से उदात्त स्वर होता है। इस सूत्र में चार पद है। अन्तः यह प्रथमा एकवचनान्त, च यह अव्ययपद, तवै यहाँ पर लुप्त प्रथमान्त निर्देश है, युगपद् यह अव्यय पद है। यहाँ तवै- इस प्रत्यय विशेष का ग्रहण है, उस प्रत्यय ग्रहण में 'तदन्ताः ग्राह्याः' इस परिभाषा से तवै-प्रत्ययान्त की यहाँ पर प्राप्ति होती है। 'ञ्नित्यादिर्नित्यम्' इस सूत्र से आदि इसकी अनुवृति आती है। इस सूत्र में 'कर्षात्वतो घञोऽन्त उदात्तः' इस सूत्र से उदात्तः इस प्रथमान्त पद की अनुवृति आती है। यहाँ पर उदात्तः प्रथमान्त होने से यह विधायक पद है ऐसा जाना जाता

है। उससे इस सूत्र का अर्थ होता है तवै-प्रत्ययान्त के आदि और अन्त दोनों को एक साथ उदात्त होता है।

उदाहरण- इसका उदाहरण है - नानंसे यातवै (तै. सं ६-२-६-१)। इति।

सूत्र अर्थ का समन्वय- यहाँ या धातु से 'कृत्यार्थे तवैकेन्केन्यत्वन:' इससे तवै-प्रत्यय होने से यातवै यह रूप हुआ। इस प्रकार यातवै इसके तवै-प्रत्ययान्त होने से उसका आदि स्वर यकार से उत्तर अकार और अन्त स्वर वकार से उत्तर ऐकार की एक साथ इस सूत्र से उदात्त संज्ञा हुई।

विशेष- इस सूत्र में युगपद् ग्रहण पर्याय की निवृत्ति के लिए है। उससे यहाँ एक पक्ष में आदि उदात्त अन्य पक्ष में अन्त उदात्त का क्रम से यहाँ विधान नहीं होगा, और भी युगपत से ही आदि और अन्त में उदात्त स्वर का विधान होगा।

10.11 क्षयो निवासे॥ (६.१.२०१)

सूत्र का अर्थ- क्षय शब्द आद्युदात्त होता है निवास अभिधेय होने पर।

सूत्र की व्याख्या- यह विधिसूत्र है। इस सूत्र से उदात्त स्वर का विधान है। इस सूत्र में दो पद है। क्षय: प्रथमा एकवचनान्त, निवासे यह सप्तमी एकवचनान्त पद है। क्षय इस शब्द स्वरूप का ग्रहण है। निवास यह अर्थ निर्देश है। 'ञ्नित्यादिर्नित्यम्' इस सूत्र से आदि इसकी अनुवृति आती है। इस सूत्र में 'कर्षात्वतो घञोऽन्त उदात्त:' इस सूत्र से उदात्त: इस प्रथमान्त पद की अनुवृति आती है। उदात्त: यह यहाँ पर प्रथमान्त होने से विधायक पद है ऐसा जाना जाता है। उससे इस सूत्र का यह अर्थ होता है- क्षय शब्द का आदि उदात्त होता है निवास अर्थ में।

उदाहरण- स्वे क्षयें शुचिव्रत। (तै.ब्रा. १-४-१-७)।

सूत्र अर्थ का समन्वय- क्षि निवासगत्यो: इस क्षि धातु के दो अर्थ है। वहाँ निवास अर्थ में क्षियन्ति निवसन्ति इस प्रकार के विग्रह में अधिकरण क्षि धातु को 'पुंसि संज्ञायां घ: प्रायेण' इससे घ प्रत्यय की प्रक्रिया में क्षय शब्द सिद्ध होता है। यहाँ क्षय शब्द का निवास अर्थ में विद्यमान होने से प्रकृत सूत्र से आदि में षकार से उत्तर अकार का उदात्त स्वर सिद्ध होता है।

10.12 वृषादीनां च॥ (६.१.२०३)

सूत्र का अर्थ- वृषादि शब्दों के भी आदि उदात्त होता है वृषादि गण एक आकृतिगण है।

सूत्र की व्याख्या- यह विधिसूत्र है। इस सूत्र से उदात्त स्वर होता है। इस सूत्र में दो पद है। वृषादीनाम् यह षष्ठी बहुवचनान्त है, च यह अव्ययपद है। वृष: आदि में है जिसके वह वृषादि, उन वृषादि का समूह। वृषादि एक गण है।

वृषादिगण में उन वृष-जन-त्वर-हय-गय-नय-तय-अंश-वेद-सूद-पद-गुहा: इत्यादि शब्द है। 'ञ्नित्यादिर्नित्यम्' इस सूत्र से आदि इसकी अनुवृति आती है। इस सूत्र में 'कर्षात्वतो घञोऽन्त

टिप्पणियाँ

उदात्तः' इस सूत्र से उदात्तः इस प्रथमान्त पद की अनुवृति आ रही है। उदात्तः यह यहाँ पर प्रथमान्त होने से इसको विधायक पद जाना जाता है। उससे इस सूत्र का अर्थ होता है - वृषादिगण में पढ़े हुए शब्दों का आदि स्वर उदात्त होता।

उदाहरण- इसका उदाहरण है - वृषो अग्निः समिध्यते। (तै.ब्रा. २-४-६-१०)।

सूत्र अर्थ का समन्वय- वृषु सेचने इति धातोः इगुपधज्ञाप्रीकिरः कः इत्यनेन सूत्रेण कप्रत्यये वृषशब्दः निष्पद्यते। अत्र प्रत्ययस्वरः अर्थात् आद्युदात्तश्च इत्यनेन ककारोत्तस्य अकारस्य उदात्तः प्राप्तः आसीत् तेन वृषशब्दः अन्तोदात्तः अभवत्। परन्तु तं बाधित्वा वृषशब्दस्य वृषादिगणे पाठात् वृषादीनां च इत्यनेन अस्य आदेः वकारोत्तरस्य ऋकारस्य आद्युदात्तस्वरः भवति।

विशेष- वृषदिगण एक आकृतिगण है। उससे जिस शब्द का यहाँ पाठ नहीं है, और भी किसी भी सूत्र से आद्युदात्त स्वर नहीं किया है। फिर भी आद्युदात्त स्वर है। अत उस आकृति की भी इस वृषादिगण में पाठ स्वीकार करना चाहिए।

पाठगत प्रश्न 10.2

1. कर्षात्वतः यहाँ पर कर्ष शब्द से कैसे तुदादिगण की धातु का ग्रहण नहीं है?
2. 'उञ्छादिगण' में कितने गणसूत्र है?
3. पुंस्-शब्द का ब्राह्मण आदि गण में पाठ कैसे हैं?
4. अन्तश्च तवै युगपद् यहाँ पर युगपद् ग्रहण किस लिए किया है?
5. क्षय शब्द किस अर्थ में आदि उदात्त होता है?
6. 'वृषो अग्निः समिध्यते' यहाँ पर वकार से उत्तर ऋकार का किस सूत्र से उदात्त स्वर है?

10.13 संज्ञायामुपमानम्॥ (६.१.२०४)

सूत्र का अर्थ- उपमानवाची शब्द को संज्ञा विषय में आदि उदात्त होता है।

सूत्र की व्याख्या- यह विधिसूत्र है। इस सूत्र में दो पद है। संज्ञायाम् यह सप्तमी एकवचनान्त, उपमानम् यह प्रथमा एकवचनान्त पद है। इस सूत्र में 'ञ्नित्यादिर्नित्यम्' इस सूत्र से आदिः इसकी अनुवृति आ रही है। यहाँ 'कर्षात्वतो घञोऽन्त उदात्तः' इस सूत्र से उदात्तः इस प्रथमान्त पद की अनुवृति आती है। उदात्तः यहाँ पर प्रथमान्त पद होने से यह विधायक पद है ऐसा जाना जाता है। उससे इस सूत्र का अर्थ होता है - संज्ञा में उपमान शब्द का आदि अच् उदात्त होता है।

उदाहरण- चञ्चेव चञ्चा इति।

सूत्र अर्थ का समन्वय- चञ्चा-शब्द का अर्थ घास से निर्मित पुरुष के लिए है। चञ्चा के समान पुरुष भी चञ्चा ही होता है। वहाँ चञ्चा-शब्द से 'इवे प्रतिकृतौ' इस सूत्र से किये गए कन् प्रत्यय का 'लुम्मनुष्ये' इस सूत्र से लोप होता है। इस प्रकार यहाँ चञ्चा-शब्द की उपमानवाचक और संज्ञावाचक होने से प्रकृत सूत्र से उसके आदि में अच् चकार से उत्तर अकार को उदात्त स्वर होता है।

विशेष- चञ्चा-शब्द से कन् प्रत्यय करने पर और अनुबन्ध लोप करने पर चञ्चा क(कन्) इस स्थित्ति में कन्प्रत्यय के नकार की इत् संज्ञा होने से और उसका लोप होने पर 'प्रत्ययलोपे प्रत्ययलक्षणम्' इससे कन्प्रत्यय नित् होता है। उस नित् के परे पूर्व के चकार से उत्तर अकार की तो 'ञ्नित्यादिर्नित्यम्' इससे ही आद्युदात्त स्वर सिद्ध होता है, उस प्रकृत-सूत्र से आद्युदात्त स्वर विधान की क्या आवश्यकता है यदि कोई ऐसा कहता है तो - यह ही ज्ञापक है की वेद में कुछ स्वर विधि में प्रत्यय के लोप होने पर 'प्रत्ययलक्षणम' से ग्रहण नहीं करते है। इसी प्रकार यहाँ प्रत्यय के लोप होने पर 'प्रत्ययलक्षणम्' इसके ग्रहण अभाव में 'चञ्चा क' यहाँ पर नित्त् के अभाव से चकार से उत्तर अकार की 'ञ्नित्यादिर्नित्यम्' इससे आद्युदात्त स्वर सिद्ध नहीं होता है। उस आद्युदात्त स्वर के विधान के लिए प्रकृत सूत्र की रचना की है।

इस सूत्र में संज्ञायाम् कहने से जहाँ पर संज्ञा नहीं है, वहाँ पर इस सूत्र की प्रवृति नहीं होती है, जैसे- अग्निर्माणवकः। यहाँ पर उपमान के होने पर भी संज्ञा नहीं है, अतः मकार से उत्तर अकार को उदात्त स्वर नहीं हुआ। और जहाँ उपमान नहीं है, वहाँ पर भी इस सूत्र की प्रवृति नहीं होती है, जैसे- चौत्रः इति, यहाँ पर संज्ञा के होने पर भी उपमान नहीं है। अतः यहाँ चकार से उत्तर ऐकार को उदात्त स्वर नहीं होता है।

10.14 अशितः कर्ता॥ (६.१.२०७)

सूत्र का अर्थ- कर्तृवाची अशित शब्द को आदि उदात्त होता है।

सूत्र की व्याख्या- यह विधिसूत्र है। इस सूत्र से उदात्त स्वर होता है। इस सूत्र में दो पद है। अशितः यह प्रथमा एकवचनान्त, कर्ता यह भी प्रथमा एकवचनान्त पद है। इस सूत्र में 'ञ्नित्यादिर्नित्यम्' इस सूत्र से आदिः इसकी अनुवृति आती है। यहाँ पर 'कर्षात्वतो घञोऽन्त उदात्तः' इस सूत्र से उदात्तः इस प्रथमान्त पद की अनुवृति आती है। उदात्तः यहाँ पर प्रथमान्त होने से यह विधायक पद जाना जाता है। उससे इस सूत्र का अर्थ होता है- अशित शब्द जब कर्ता है, तब इस शब्द के आदि अच् को उदात्त होता है।

उदाहरण- कृषन्नित्फाल आशितम् इत्यस्य उदाहरणम्।

सूत्र अर्थ का समन्वय- आङ् पूर्वक अश् धातु से कर्ता में क्त प्रत्यय करने पर आशितम् यह रूप बनता है। यहाँ आशित शब्द कर्तृवाचक है। अतः उसके आदि में अच् अकार की प्रकृत सूत्र से उदात्त स्वर होता है।

टिप्पणियाँ

विशेष- आङ् पूर्वक अश्-धातु से कर्ता में क्त प्रत्यय विधान का कोई सूत्र नहीं है, तो कैसे क्त प्रत्यय है, यदि ऐसा कहते हैं तो यहाँ पर क्त प्रत्यय निपातन से है।

यहाँ अन्य वैयाकरण आचार्य - अश्-धातु से कर्ता में क्त प्रत्यय करने पर अशित शब्द को निष्पन्न करते है। तब तो क्त प्रत्यय और उपधा को दीर्घ दोनों ही निपातन से सिद्ध करते है।

10.15 युष्मदस्मदोर्ङसि॥ (६.१.२११)

सूत्र का अर्थ- युष्मद् अस्मद् शब्दों के आदि को ङस् परे रहते उदात्त होता है।

सूत्र की व्याख्या- यह विधिसूत्र है। इस सूत्र से उदात्त स्वर का विधान है। इस सूत्र में दो पद है। युष्मदस्मदो: यह षष्ठी एकवचनान्त, ङसि यह सप्तमी एकवचनान्त पद है। ङसि का यहाँ पर सप्तमी निर्देश होने से 'तस्मिन्निति निर्दिष्टे पूर्वस्य' इस परिभाषा से षष्ठी एकवचन के परे होने पर पूर्व का कार्य जानना चाहिए है। इस सूत्र में 'ञ्नित्यादिर्नित्यम्' इस सूत्र से आदि: इसकी अनुवृति आती है। यहाँ 'कर्षात्वतो घञोऽन्त उदात्त:' इस सूत्र से उदात्त: इस प्रथमान्त पद की अनुवृति आती है। उदात्त: का यहाँ प्रथमान्त पद होने से यह विधायक पद है, ऐसा जाना जाता है। उससे इस सूत्र का अर्थ होता है- ङस् के परे होने पर पूर्व के युष्मद् अस्मद् का आदि अच् उदात्त होता है।

उदाहरण- इस सूत्र का उदाहरण है - नहिषस्तव नो मम इति।

सूत्र अर्थ का समन्वय- युष्मद् शब्द से और अस्मद् शब्द से ङस्-प्रत्यय करने पर 'युष्मदस्मद्भ्यां ङशोऽश्' इससे ङश् को अश् आदेश होने पर 'तवममौ ङसि' इससे युष्मद् के म पर्यन्त को तव आदेश और अस्मद् के मपर्यन्त भाग को मम आदेश करने पर प्रक्रिया कार्य में 'तव मम' ये दो रूप सिद्ध होते है। यहाँ तव मम इन दोनों के ङस् अन्त में होने से उसके परे तकार से उत्तर अकार को और मकार से उत्तर अकार को प्रकृत सूत्र से उदात्त स्वर सिद्ध होता है।

10.16 ङयि च॥ (६.१.२११)

सूत्र का अर्थ- ङे विभक्ति के परे भी युष्मद् अस्मद् को आदि उदात्त होता है।

सूत्र की व्याख्या- यह विधि सूत्र है। इस सूत्र से उदात्त स्वर का विधान है। यह सूत्र दो पद में है। ङयि यह सप्तमी एकवचनान्त। च यह अव्यय पद है। ङयि यहाँ पर सप्तमी का निर्देश होने से 'तस्मिन्निति निर्दिष्टे पूर्वस्य' इस परिभाषा से चतुर्थी एकवचन के परे होने पर पूर्व का कार्य जानना चाहिए। इस सूत्र में 'ञ्नित्यादिर्नित्यम्' इस सूत्र से आदि: इसकी अनुवृति आती है। यहाँ पर 'कर्षात्वतो घञोऽन्त उदात्त:' इस सूत्र से उदात्त: इस प्रथमान्त पद की अनुवृति आती है। उदात्त: यहाँ पर प्रथमान्त होने से इसको विधायक पद जाना जाता है। उससे इस सूत्र का अर्थ होता है - ङयि के परे होने पर पूर्व के युष्मद् अस्मद् का आदि अच् उदात्त होता है।

उदाहरण- इस सूत्र का उदाहरण है - तुभ्यं हिन्वान: इति। मह्यं वात: पवताम् इति च।

सूत्र अर्थ का समन्वय- युष्मद् शब्द से और अस्मद् शब्द से ङे इस प्रत्यय के परे रहने पर 'ङे-प्रथमयोरम्' इससे ङे इसको अम आदेश होने पर 'तुभ्यमह्यौ ङयि' इससे युष्मद् के म पर्यन्त भाग को तुभ्य और अस्मद् के म पर्यन्त भाग को मह्य आदेश होने पर प्रक्रिया कार्य में 'तुभ्यं मह्यम्' ये दो रुप सिद्ध होते है। यहाँ 'तुभ्यं, मह्यम्' इन दोनों से ङे प्रत्ययान्त है। ङे इसके परे तुभ्यम् यहाँ तकार से उत्तर आदि अच् उकार को और मह्यम् यहाँ पर मकार से उत्तर आदि अच् अकार की प्रकृत सूत्र से उदात्त स्वर सिद्ध होता है।

10.17 यतोऽनावः॥ (६.१.११३)

सूत्र का अर्थ- यत् प्रत्ययान्त जो दो अचों वाले शब्द उनको आद्युदात्त होता है नौ शब्द को छोड़कर।

सूत्र की व्याख्या- यह विधिसूत्र है। इस सूत्र से उदात्त स्वर का विधान है। इस सूत्र में दो पद है। यतः, अनावः ये सूत्र में आये पदच्छेद हैं। यतः यह षष्ठी एकवचनान्त है। अनावः यह पञ्चमी एकवचनान्त पद है। यहाँ यत् यह प्रत्यय है। उस प्रत्यय ग्रहण करने से 'तदन्तग्रहण' इससे उसका ग्रहण होगा। उससे यत् प्रत्ययान्त का यह अर्थ है। अनावः इसका नौ इस शब्द को छोड़कर यह अर्थ है। इस सूत्र में 'निष्ठा च द्व्यजनात्' इस सूत्र से द्व्यच् इसकी अनुवृत्ति आती है। वह यहाँ पर पञ्चम्यन्त से विपरीत है। इस प्रकार इस सूत्र का अर्थ होता है- यत्प्रत्ययान्त का दो अचो से युक्त शब्द का आदि अच् उदात्त होता है, नौ शब्द को नहीं होता है।

उदाहरण- युञ्जन्त्यस्य काम्या इति।

सूत्र अर्थ का समन्वय- कमु कान्तौ इस धातु से 'कमेर्णिङ्' इससे स्वार्थ में णिङ् प्रत्यय तथा अनुबन्ध लोप करने पर 'अत उपधायाः' इससे कम्-धातु के ककार से उत्तर अकार के स्थान में वृद्धि करने पर आकार में निष्पन्न कामि इसकी 'सनाद्यन्ता धातवः' इससे धातु संज्ञा सिद्ध होती है। उसके बाद अजन्त कामि-धातु से 'अचो यत्' इससे यत्प्रत्यय तथा अनुबन्ध लोप करने पर 'णेरनिटि' इससे मकार से उत्तर णिङः के इकार का लोप करने पर प्रथमा द्विवचन प्रक्रिया कार्य में काम्या यह रूप सिद्ध होता है। यहाँ काम्या इसका यत् प्रत्ययान्त होने से और यत्प्रत्यय के तकार की इत् संज्ञा होने से 'तित्स्वरितम्' इससे स्वरित स्वर की प्राप्ति थी। परन्तु उसको बाध करके प्रकृत सूत्र से दो अचों से युक्त काम्या इसका आदि अच् ककार से उत्तर आकार को उदात्त स्वर होता है।

नवतिं; नाव्यानाम् इत्यादि में नावा तार्यम् यह विग्रह करने पर 'नौवयोधर्मविषमूलमूल सीतातुलाभ्यस्तार्यतुल्यप्राप्य-वध्यानाम्यसमसमितसम्मितेषु' इससे यत्प्रत्यय करने पर निष्पन्न नाव्य शब्द का षष्ठी बहुवचनान्त रूप है। परन्तु प्रकृत सूत्र में अनावः कहने से नाव्यानाम इसके आदि अच् नकार से उत्तर आकार को प्रकृत सूत्र से उदात्त स्वर नहीं होता है।

विशेष- आठवें अध्याय में 'निष्ठा च द्व्यजनात्' इससे परे सात सूत्र है, उसके बाद 'यतोऽनावः' यह प्रकृत सूत्र है। इस प्रकार मध्यवर्ति सूत्रों में 'निष्ठा च द्व्यजनात्' इस सूत्र से 'द्व्यच्' इसकी अनुवृत्ति नहीं है, परन्तु इस सूत्र में 'द्व्यच्' इसकी अनुवृत्ति कैसे यदि कोई ऐसा कहता है तो

'मण्डूकप्लुत' (मेंढक की) गति से यहाँ अनुवृत्ति है। मेंढक जैसे उछल-उछल कर कुछ-कुछ स्थान को छोड़कर जाता है, वैसे ही यह भी कुछ-कुछ सूत्रों को छोड़कर उत्तर उत्तर के सूत्रों में प्रवृत्त होता ऐसा जानना चाहिए।

पाठगत प्रश्न 10.3

1. उपमान शब्द कब आद्युदात्त होता है?
2. किस प्रकार का अशित शब्द आद्युदात्त है?
3. मम यहाँ पर मकार से उत्तर अकार को उदात्त स्वर किससे सिद्ध होता है?
4. ङयि च इस सूत्र का क्या अर्थ है?
5. यतोऽनावः इस सूत्र में अनावः यहाँ पर कौनसी विभक्ति है?

पाठ का सार

धातु का और प्रातिपदिक के स्वरों को अवलम्बन करके इस पाठ की रचना की है। धातु से विहित स्वरों के विषय में कुछ सूत्रों की आलोचना की है। और इसी प्रकार प्रातिपदिक से विहित स्वरों के विषय में कुछ सूत्रों की आलोचना है। धातु से विहित स्वरों के विषय में सूत्र है, जैसे - धातोः, स्वपादिहिंसामच्यनिटि इत्यादि सूत्र है। धातोः इस सूत्र से धातु अन्त उदात्त है। इसका उदाहरण है - गोपायर्त नः इति, असिं सत्यः इति। यहाँ गुप्-इस धातु से आय प्रत्यय करने पर उससे निष्पन्न गोपाय इसके पकार से उत्तर आकार को 'आद्युदात्तश्च' इससे आद्युदात्त स्वर है। 'सनाद्यन्ता धातवः' इससे गोपाय इसकी धातु संज्ञा है, अतः उसके अन्त अकार की भी प्रकृत सूत्र से उदात्त स्वर होता है। प्रातिपदिक से विहित स्वरों के विषय में सूत्र है, जैसे - 'कर्षात्वतो घञोऽन्त उदात्तः, उञ्छादीनाञ्च इत्यादि सूत्र है। इसका उदाहरण है, कर्षः इति, दायः इति च। कृष विलेखने इस धातु से घञ्प्रत्यय करने पर कर्षः यह रूप बनता है। यहाँ घञन्त कर्ष-इसके अन्त का षकार से उत्तर अकार को प्रकृत सूत्र से उदात्त स्वर होता है। दा दाने इस आकार युक्त धातु से 'आतो युक्चिण्कृतोः' इससे घञ्प्रत्यय करने पर दायः यह रूप बनता है। यहाँ आकारान्त घञन्त के होने से दाय-इसके अन्त का यकार से उत्तर अकार का प्रकृत सूत्र से उदात्त स्वर सिद्ध होता है।

पाठांत प्रश्न

1. स्वपादिहिंसामच्यनिटि इस सूत्र की व्याख्या कीजिए।
2. अभ्यस्तानामादिः इस सूत्र की व्याख्या कीजिए।
3. कर्षात्वतो घञोऽन्त उदात्तः इस सूत्र की व्याख्या कीजिए।

4. ञ्नित्यादिर्नित्यम् इस सूत्र की व्याख्या कीजिए।
5. वृषादीनां च इस सूत्र की व्याख्या कीजिए।
6. संज्ञायामुपमानम् इससे उदात्त स्वर विधान के फल का वर्णन कीजिए।
7. यतोऽनावः इसका एक उदाहरण को प्रदर्शित करके समन्वय कीजिए।

पाठगत प्रश्नों के उत्तर

10.1

1. उदात्त स्वर।
2. अदादि गण के अन्तर्गत एक गण है।
3. अनिट् अजादि में लसार्वधातुके के परे अभ्यस्त का आदि उदात्त होता है।
4. अविद्यमान उदात्त इस अर्थ में।
5. उदात्त स्वर है।
6. लिति इस सूत्र से।

10.2

1. शप् प्रत्यय के निर्देश से।
2. आठ सूत्रों में।
3. ब्राह्मण आदि आकृतिगण होने से।
4. पर्यायवाची की निवृत्ति के लिए।
5. निवास अर्थ में।
6. वृषादीनां च इस सूत्र से।

10.3

1. उपमान शब्द जब संज्ञावाचक है तब।
2. कर्तावाची अशित शब्द।
3. 'युष्मदस्मदोर्ङसि' इस सूत्र से।
4. ङे विभक्ति के परे होने पर युष्मद् अस्मद् को आदि उदात्त होता है।
5. पञ्चमी विभक्ति।

॥ दसवां पाठ समाप्त॥

11

फिट् स्वर

इस पाठ में फिट् सूत्रों की आलोचना करेगें। फिट् यह संज्ञावाचक पद है। और यह संज्ञा महर्षि पाणिनि के पूर्वकाल से ही चली आ रही है। ये सूत्र फिषम् अर्थात् प्रातिपदिक के आश्रित ही रहते हैं और इन फिट् सूत्रों के द्वारा प्रधानता से शब्दों के स्वर विधान का नियम है। किस शब्द का कब किस अर्थ में कहाँ पर कौन सा स्वर हो, इन सभी की विस्तार से इन सूत्रों में आलोचना की है। अत: इस पाठ से आप सभी किस शब्द का कब कहाँ पर क्या स्वर होता है, इस विषय में विस्तार से जानेंगे।

उद्देश्य

इस पाठ को पढ़कर आप सक्षम होंगे :

- लोक और वेद में शब्दों की स्वर व्यवस्था को जान पाने में;
- फिट् सूत्रों के विषय में जानकारी प्राप्त कर पाने में;
- अपाणिनीय फिट्सूत्रों को भी कैसे प्रमाण रूप से स्वीकार किया गया है, इस विषय में जानकारी प्राप्त कर पाने में;
- विभिन्न अवस्थाओं में विभिन्न शब्दों के आद्युदात्त के विषय में अन्तोदात्त के विषय में और सभी को उदात्त होने के विषय में अधिकता से ज्ञान प्राप्त कर पाने में;
- सूत्रों का अर्थ निर्णय कर पाने में;
- सूत्रों की व्याख्या कर पाने में; और
- अनुवृत्ति आदि के विषय में जान पाने में।

फिट् स्वर

11.1 फिषोऽन्त उदात्तः

सूत्र का अर्थ- प्रातिपदिक फिट् हो। उसका अन्त उदात्त हो।

सूत्र का अवतरण- फिट्-रूप प्रातिपदिक के अन्त्य का उदात्त विधान के लिए इस सूत्र की रचना की है।

सूत्र की व्याख्या- यह विधिसूत्र है। इससे फिष का अथवा प्रातिपदिक के अन्त को उदात्त स्वर करने का विधान है। इस सूत्र में फिषः अन्तः उदात्तः ये पदच्छेद है। तीन पद वाले इस सूत्र में फिषः यह षष्ठी एकवचनान्त पद है, अन्तः यह प्रथमा एकवचनान्त पद है, उदात्तः यह भी प्रथमा एकवचनान्त पद है। और यहाँ पद का अन्वय इस प्रकार है - फिषः अन्तः उदात्तः इति। और यह सूत्र का अर्थ है - फिष का अथवा प्रातिपदिक के अन्त्य का उदात्त हो।

उदाहरण- उच्चैः।

सूत्र अर्थ का समन्वय- उच्चैः इस पद को पाणिनीय सूत्रों के द्वारा प्रातिपदिक संज्ञा नहीं की है, अपितु पूर्व आचार्यों के द्वारा प्रातिपदिक कहा गया है। अतः उस फिष का अथवा प्रातिपदिक का अन्त्य ऐकार प्रकृत सूत्र से उदात्त होता है।

विशेष- फिट्- संज्ञा पाणिनि के द्वारा नहीं की गई है। अपितु अनेक वर्षों पहले ही प्राचीन आचार्यों के द्वारा इस संज्ञा का विधान किया है। इसलिए आचार्य वासुदेव दीक्षित के द्वारा कहा गया है - 'फिडिति पूर्वाचार्यप्रसिद्ध्या प्रातिपदिकमुच्यते'। ये सूत्र भी यद्यपि अपाणिनीय है, फिर भी भाष्य प्रमाण से ये सूत्र महर्षि पाणिनि के द्वारा स्वीकार किया है ऐसा जाना जाता है। वैसे ही भाष्य आदि में 'आद्युदात्तश्च' इत्यादि सूत्रों में प्रकृति से अन्तोदात्त होने का विधान है। और ये अन्तोदात्त आदि स्वर व्यवस्था फिट् सूत्रों के विना सम्भव नहीं है। अतः इन सूत्रों के अपाणिनीय होने पर भी पाणिनीय प्रमाण के द्वारा इनको आश्रित किया जाता है।

11.2 छन्दसि च।

सूत्र का अर्थ- छन्दस् में दक्षिण का आदि और अन्त उदात्त होता है।

सूत्र का अवतरण- छन्द में दक्षिण शब्द के आदि और अन्त के स्थान में उदात्त का विधान -.

सूत्र की व्याख्या- यह विधि सूत्र है। यहाँ छन्दसि यह विषय सप्तम्यन्त पद है, च यह अव्यय है। इस सूत्र से दक्षिण शब्द के अन्त और आदि में उदात्त होने का नियम किया है। इस सूत्र में 'दक्षिणस्य साधौ' इस सूत्र से दक्षिणस्य यह षष्ठी एकवचनान्त पद है, 'स्वाङ्गाख्यायामादिर्वा' इस सूत्र से आदिः इस प्रथमा एकवचनान्त पद की, 'फिषोऽन्त उदात्तः' इस सूत्र से अन्तः इस प्रथमा एकवचनान्त पद, उदात्तः इस प्रथमा एकवचनान्त पद की यहाँ अनुवृति आती है। उससे

टिप्पणियाँ

यहाँ पद का अन्वय है - छन्दसि दक्षिणस्य आदिः अन्तः उदात्तः इति। यहाँ दक्षिण शब्द से दक्षिण शब्द का अर्थ ग्रहण नहीं किया है, अपितु दक्षिण इस शब्द स्वरूप का ही ग्रहण किया है। और उससे सूत्र का अर्थ प्राप्त होता है - छन्दसि विषय में दक्षिण शब्द का आदि और अन्त उदात्त होता है।

उदाहरण- दक्षिणः।

सूत्र अर्थ का समन्वय- दक्षिणः यह वैदिक प्रयोग है। अतः प्रकृत सूत्र से उस दक्षिण शब्द के अन्त अकार का और आदि अकार को उदात्त करने का विधान है।

11.3 घृतादीनां च

सूत्र का अर्थ- घृतादि शब्दों का अन्तिम स्वर उदात्त हो।

सूत्र का अवतरण- घृतादि शब्दों के अन्त्य स्वर के स्थान में उदात्त स्वर के विधान के लिए इस सूत्र की रचना आचार्य के द्वारा की गई है।

सूत्र की व्याख्या- यह सूत्र विधायक है। इस सूत्र से घृतादि शब्दों के अन्त्य स्वर के स्थान में उदात्त स्वर का विधान होता है। यहाँ दो पद हैं। और वहाँ घृतादीनाम् यह षष्ठी बहुवचनान्त पद है, च यह अव्यय पद है। इस सूत्र में 'अङ्गुष्ठोदकवकवशानां छन्दस्यन्तः' इस सूत्र से अन्तः इस प्रथमा एकवचनान्त पद की, फिषोऽन्त उदात्तः इस सूत्र से उदात्तः इस विधेय स्वर बोधक पद की यहाँ अनुवृति आती है। यहाँ घृतादीनाम् इस विशेषणपद सामर्थ्य से शब्दानाम् इस विशेष्य बोध क पद का आक्षेप किया है। उससे यहाँ पद का अन्वय होता है - घृतादीनां शब्दानां च उदात्तः इति। और यहाँ सूत्र का अर्थ होता है - घृतादि शब्दों का अन्त्य स्वर उदात्त होता है।

उदाहरण- घृतं मिमिक्षे।

सूत्र अर्थ का समन्वय- घृतं मिमिक्षे इस उदाहरण में घृतम् इस पद के अन्त्य अकार उदात्त है। यहाँ प्रकृत सूत्र से ही घृत शब्द के अन्त्य अकार को उदात्त होने का विधान किया है।

इसी प्रकार अन्य जगह भी प्रकृत सूत्र से घृतादि शब्दों के अन्त्य स्वर को उदात्त किया है। यहाँ यह घृतादिगण ही आकृतिगण है।

11.4 ज्येष्ठकनिष्ठयोर्वयसि

सूत्र का अर्थ- अवस्था अर्थ में ज्येष्ठ कनिष्ठ शब्दों को अन्त उदात्त होता है।

सूत्र का अवतरण- अवस्था अर्थ में ज्येष्ठ कनिष्ठ शब्दों के अन्त्य स्वर को उदात्त करने के लिए इस सूत्र की रचना आचार्य द्वारा की गई है।

सूत्र की व्याख्या- यह विधि सूत्र है। इससे उदात्त स्वर का विधान है। ज्येष्ठकनिष्ठयोः वयसि ये यहाँ पदच्छेद है। और इस प्रकार यहाँ ज्येष्ठ कनिष्ठयोः यह षष्ठी द्विवचनान्त पद है, वयसि

यह सप्तमी एकवचनान्त पद है। फिषोऽन्त उदात्तः इस सूत्र से यहाँ अन्तः इस प्रथमा एकवचनान्त पद, और उदात्तः इस प्रथमा एकवचनान्त पद की अनुवृति आती है। उससे यहाँ सूत्र के पदों का अन्वय होता है - वयसि ज्येष्ठकनिष्ठयोः अन्तः उदात्तः इति। यहाँ पर भी ज्येष्ठकनिष्ठयोः इस पद से ज्येष्ठ, कनिष्ठ इस शब्द स्वरूप का ही ग्रहण है, उन शब्दों के अर्थ का ग्रहण नहीं है। इस प्रकार यहाँ सूत्र का यह अर्थ प्राप्त होता है - अवस्था अर्थ में ज्येष्ठ कनिष्ठ शब्दों का अन्त उदात्त होता है।

उदाहरण- ज्येष्ठ आह चमसा। कनिष्ठ आह चमसा।

सूत्र अर्थ का समन्वय- ज्येष्ठ आह चमसा यह प्रयोग वेद में प्राप्त होता है। यहाँ ज्येष्ठ इस शब्द का प्रयोग अवस्था अर्थ में है। उसको यहाँ प्रकृत सूत्र से ज्येष्ठ शब्द के अन्त स्वर अकार को उदात्त होता है।

कनिष्ठ आह चमसा यह प्रयोग भी वेद में प्राप्त होता है। यहाँ भी कनिष्ठ शब्द का आयु अर्थ में प्रयोग है। और उसको प्रकृत सूत्र से यहाँ पर भी कनिष्ठ शब्द के अन्त्य स्वर अकार उदात्त होता है।

11.5 अथादिः प्राक् शकटेः

सूत्र का अर्थ- यह अधिकार सूत्र है। इसका अधिकार 'शकटिशकट्योरिति' तक जाएगा।

सूत्र का अवतरण- इस सूत्र से आरम्भ करके 'शकटिशकटयोरिति' सूत्र तक आदिः- इस पद के अधिकार के लिए इस सूत्र की रचना की है।

सूत्र की व्याख्या- यह अधिकार सूत्र है। इसके द्वारा आदिः इस पद का अधिकार किया जाता है। अथ आदिः प्राक् शकटेः ये सूत्र में आये पदच्छेद हैं। चार पद वाले इस सूत्र में अथ यह अव्यय पद है, आदिः यह प्रथमा एकवचनान्त पद है, प्राक् यह भी प्रथमा एकवचनान्त पद है, और शकटेः यह पञ्चमी एकवचनान्त पद है। अधिक्रियते इस पद का यहाँ आक्षेप किया है। और इस प्रकार यहाँ पद का अन्वय होता है - अथ प्राक् शकटेः आदिः अधिक्रियते इति। उससे यह सूत्र अर्थ प्राप्त होता है - शकटिशकटयोरिति सूत्र से पहले तक आदिः इस पद का अधिकार जाएगा।

उदाहरण- न संख्यायाः इस सूत्र में प्रकृत सूत्र से विहित आदिः इस प्रथमा एकवचनान्त पद का अधिकार होता है।

11.6 ह्रस्वान्तस्य स्त्रीविषयस्य

सूत्र का अर्थ- ह्रस्वान्त स्त्री विषय का आदि उदात्त होता है।

सूत्र का अवतरण- स्त्रीविषय के ह्रस्वान्त शब्द का आदि उदात्त विधान के लिए इस सूत्र की रचना आचार्य द्वारा की गई है।

टिप्पणियाँ

सूत्र की व्याख्या- यह विधायक सूत्र है। इस सूत्र से ह्रस्वान्त स्त्रीविषय शब्दों का आदि स्वर उदात्त होता है। इस सूत्र में दो पद हैं। और वहाँ पर ह्रस्वान्तस्य यह षष्ठी एकवचनान्त पद है, स्त्रीविषयस्य यह भी षष्ठी एकवचनान्त पद है। 'अथादिः प्राक् शकटेः इस अधिकार सूत्र से आदिः इस पद का यहाँ अधिकार है। 'फिषोऽन्त उदात्तः' इस सूत्र से यहाँ उदात्तः इस स्वर बोधक पद की अनुवृति आती है। उसका यहाँ पदों का अन्वय होता है - ह्रस्वान्तस्य स्त्रीविषयस्य आदिः उदात्तः इति। उससे यह सूत्र का अर्थ प्राप्त होता है - स्त्री विषय ह्रस्वान्त का आदि अच् उदात्त होता है।

उदाहरण- बलिः। तनुः।

सूत्र अर्थ का समन्वय- बलिः यह शब्द स्त्रीविषय है, और यह शब्द ह्रस्वान्त भी है। उसको प्रकृत सूत्र से उस बलि शब्द के आदि स्वर अकार को उदात्त करने का विधान है।

इसी प्रकार तनुः यहाँ पर भी तनु शब्द का स्त्रीविषय होने से और ह्रस्वान्त होने से प्रकृत सूत्र से उस शब्द का आदि स्वर अकार को उदात्त करने का विधान है।

11.7 तृणधान्यानां च द्वयषाम्।

सूत्र का अर्थ- दो अचों में यह अर्थ है। दो अचों वाले तृण और धान्य का आदि उदात्त होता है।

सूत्र की रचना - दो अचों वाले तृण और धान्य शब्दों का आदि उदात्त विधान के लिए आचार्य ने इस सूत्र की रचना की है।

सूत्र की व्याख्या- छः प्रकार के पाणिनीय सूत्रों में यह विधि सूत्र है। इससे दो अच् वाले विशिष्ट तृण और धान्य शब्दों का आदि स्वर उदात्त होता है। इस सूत्र में तीन पद हैं। और वहाँ पर तृण धान्यानाम् यह षष्ठी बहुवचनान्त पद है, च यह अव्यय पद है, और द्वयषाम् यह षष्ठी बहुवचनान्त पद है। 'अथादिः प्राक् शकटेः' इस सूत्र से यहाँ पर आदिः इस प्रथमा एकवचनान्त पद का अधिकार है, और उदात्तः इस प्रथमा एकवचनान्त पद 'फिषोऽन्त उदात्तः' इस सूत्र से इसकी अनुवृति आती है। द्वयचां तृणधान्यानां इन पदों के विशेष्य रूप से शब्दानाम् इस षष्ठी बहुवचनान्त पद का यहाँ आक्षेप किया है। और यहाँ पदों का अन्वय इस प्रकार से है - द्वयचां तृणधान्यानां च शब्दानाम् आदिः उदात्तः इति। यहाँ तृणधान्य पद से उनका शब्द स्वरूप का ग्रहण नहीं है, अपितु उन दोनों का अर्थ ही ग्रहण किया है। और सूत्र का अर्थ है - दो अच् विशिष्ट तृण और धान्य वाचक शब्दों का आदि स्वर उदात्त होता है।

उदाहरण- कुशाः। काशाः। माषाः। तिलाः।

सूत्र अर्थ का समन्वय- कुश-इस शब्द में दो अच् है। किन्तु यह कुश शब्द तृणवाची (घास का पर्यायवाची)। उसको इस प्रकृत सूत्र से उस कुश- शब्द का आदि स्वर उकार को उदात्त करने का नियम किया है।

इस प्रकार काश, इस शब्द में दो अच् है। लेकिन यहाँ प्रयुक्त काश शब्द-धान्य का द्योतक है। इसलिये इस प्रकृति सूत्र से उस काश शब्द के आदि वाले अच् (आकार का) उदात्त विधान होता है।

इसी प्रकार माषाः इस शब्द में दो अच् है। और यह माष- शब्द धान्यवाची (धान का पर्यायवाची)। उसको इस प्रकृत सूत्र से उस माष- शब्द का आदि स्वर आकार को उदात्त होता है।

तिलाः इस शब्द में भी दो अच् है। और यह तिल- शब्द धान्यवाची है। उसको इस प्रकृत सूत्र से तिल- शब्द के आदि में स्वर इकार को उदात्त होता है।

विशेष- यहाँ यह जानना चाहिए की तृण धान्य वाचक पद दो अच् वाले ही हो, अन्यथा यदि वे पद बहुत अचों वाले अथवा एक अच् वाला पद हो तो प्रकृत सूत्र से वहाँ उन शब्दों का आदि स्वर उदात्त नहीं होता है। वहाँ के लिए उदाहरण जैसे - गोधूमाः। यहाँ गोधूम यह शब्द तृण वाचक भी है, उस गोधूम शब्द का बहुत अच् विशिष्ट होने से प्रकृत सूत्र से गोधूम शब्द के आदि स्वर ओकार को उदात्त नहीं होता है।

और भी यहाँ पद यदि केवल दो अच् विशिष्ट ही होता, तृणवाचक अथवा धान्यवाचक नहीं है, तो वहाँ पर भी प्रकृत सूत्र से उस शब्द का आदि स्वर उदात्त नहीं होता है। वहाँ के लिए उदाहरण है, जैसे - आम्रः इति। यहाँ आम्र शब्द दो अच् विशिष्ट होने पर भी तृणवाचक और धान्यवाचक के अभाव से प्रकृत सूत्र से उस आम्र- शब्द का आदि स्वर आकार उदात्त नहीं होता है।

11.8 अक्षस्यादेवनस्य।

सूत्र का अर्थ- जुए अर्थ को छोड़कर अक्ष् शब्द आदि उदात्त होता है।

सूत्र का अवतरण- जुए अर्थ छोड़कर अक्ष् शब्द का आदि में उदात्त विधान के लिए इस सूत्र की रचना आचार्य ने की है।

सूत्र की व्याख्या- यह विधि सूत्र है। इससे अक्ष् शब्द का आदि स्वर उदात्त होता है। इस सूत्र में दो पद हैं। वहाँ अक्षस्य यह षष्ठी एकवचनान्त पद है, अदेवनस्य यहाँ पर भी षष्ठी एकवचनान्त पद है। इस सूत्र में अथादिः प्राक्ः शकटेः इस सूत्र से आदिः इस प्रथमा ए वचनान्त पद का अधिकार आ रहा है, उदात्तः इस प्रथमा एकवचनान्त पद की अनुवृति फिषोऽन्त उदात्तः इस सूत्र से आ रही है। यहाँ पदों का अन्वय है - अदेवनस्य अक्षस्य आदिः उदात्तः इति। यहाँ अदेवन-शब्द से उसका अर्थ ग्रहण किया है, अदेवन नाम द्यूत क्रिया को छोड़कर। और भी यहाँ अक्ष-शब्द से उस शब्द के स्वरूप का ही ग्रहण है। उसको प्रकृत सूत्र से विहित कार्य अदेवन अर्थ में वर्तमान अक्ष् शब्द को उदात होता है। उससे यह सूत्र का अर्थ प्राप्त होता है - अदेवन अर्थ में अक्ष् शब्द का आदि स्वर उदात्त होता है।

उदाहरण- तेन नाक्षः।

सूत्र अर्थ का समन्वय- तेन नाक्षः इस उदाहरण वाक्य में अक्ष्- शब्द का द्युत अर्थ को छोड़कर प्रयोग है, उसको प्रकृत सूत्र से उस अक्ष् शब्द का आदि स्वर आकार को उदात्त होता है।

टिप्पणियाँ

विशेष– यहाँ यह जानना चाहिए की प्रकृत सूत्र से अदेवन अर्थ में वर्तमान अक्ष् शब्द के आदि स्वर अकार को उदात्त होता है। द्युत अर्थ में वर्तमान अक्ष् शब्द को उदात नहीं होता है। इस कारण से ही 'अक्षैर्मा दीव्यः' इस उदाहरण में अक्ष् शब्द के आदि स्वर अकार को उदात्त नहीं होता है। क्योंकि यहाँ अक्ष् शब्द का द्युत अर्थ में प्रयोग किया है।

11.9 छन्दसि च।

सूत्र का अर्थ– वेद विषय में मकर–वरूढ–पारेवत–वितस्तेक्ष्वार्जि–द्राक्षा–कलोमा–काष्ठा–पेष्ठा–काशी और अन्य शब्दों का आदि और दूसरा स्वर विकल्प से उदात्त होता है।

सूत्र का अवतरणम्– छन्द में मकर–वरूढ–पारेवत–वितस्तेक्ष्वार्जि–द्राक्षा–कलोमा–काष्ठा–पेष्ठा–काशी शब्दों का और अन्य शब्दों के आदि और दूसरा स्वर विकल्प से उदात्त विधान के लिए इस सूत्र की रचना आचार्य ने की है।

सूत्र की व्याख्या– यह विधि सूत्र है। इस सूत्र से मकर आदि शब्दों का और अन्य शब्दों का आदि व दूसरा स्वर विकल्प से उदात्त होता है। इस सूत्र में दो पद हैं। इस सूत्र में छन्दसि यह विषय सप्तम्यन्त पद है, च यह अव्यय पद है। मकर–वरूढ–पारेवत–वितस्तेक्ष्वार्जि– द्राक्षा–कलोमा–काष्ठा–पेष्ठा–काशीनामादिर्वा इस सूत्र से यहाँ पर मकर–वरूढ–पारेवत–वितस्तेक्ष्वार्जि–द्राक्षा–कलोमा–काष्ठा–पेष्ठा–काशीनाम् ये षष्ठी बहुवचनान्त पद, आदिः इस प्रथमा एकवचनान्त पद, और वा इस अव्यय पद की यहाँ अनुवृति आती है। 'अथ द्वितीयां प्रागीषात्' इस सूत्र से द्वितीयाम् इस पद का यहाँ अधिकार है। वह पद यहाँ प्रथमा एकवचनान्त से विपरीत है। अतादिः प्राक् शकटेः इस सूत्र से यहाँ आदिः इस प्रथमा एकवचनान्त पद का यहाँ अधिकार है। फिषोऽन्त उदात्तः इस सूत्र से उदात्तः इस प्रथमा एकवचनान्त पद की यहाँ अनुवृति है। च इस अव्यय पद से यहाँ अन्य शब्दों का भी ग्रहण होता है। इन सब पदों का यहाँ अन्वय है – छन्दसि मकर–वरूढ–पारेवत–वितस्तेक्ष्वार्जि–द्राक्षा–कलोमा–काष्ठा–पेष्ठा–काशीनां च आदिः द्वितीयः वा उदात्तः इति। उस सूत्र का यह अर्थ यहाँ प्राप्त होता है – वेद विषय में मकर–वरूढ–पारेवत–वितस्तेक्ष्वार्जि– द्राक्षा–कलोमा–काष्ठा–पेष्ठा–काशी और अन्य शब्दों का आदि और दूसरा स्वर विकल्प से उदात्त होता है।

उदाहरण– मकरः, वरूढः।

सूत्र अर्थ का समन्वय– मकरः यह प्रयोग वेद में देखा जाता है, अतः प्रकृत सूत्र से मकर शब्द का छन्द में प्रयोग होने से और मकरादिगण के अन्तर्गत होने से प्रकृत सूत्र से उस मकर शब्द का आदि स्वर उदात्त होता है।

इसी प्रकार वरूढः यह प्रयोग भी वेद में ही मिलता है, और इस वरूढ़ शब्द का मकरादिगण के अन्तर्गत पाठ होने से प्रकृत सूत्र से उस वरूढ शब्द का आदि स्वर उदात्त होता है। इसी प्रकार अन्य जगह भी पारेवत आदि शब्दों में भी जानना चाहिए।

विशेष–मकर–वरूढ–पारेवत–वितस्तेक्ष्वार्जि–द्राक्षा–कलोमा–काष्ठा–पेष्ठा–काशीनामादिर्वा इस सूत्र से ही यहाँ छन्द में मकर आदि शब्दों के आदि में और दूसरे स्वर का उदात्त होना सम्भव है।

फिर भी प्रकृत सूत्र से मकर आदि के साथ अन्य शब्दों का भी आदि और दूसरा स्वर उदात्त हो। इस कारण से ही इस प्रकृत सूत्र को अलग से बनाया है।

11.10 सुगन्धितेजनस्य ते वा।

सूत्र का अर्थ– सुगन्धितेजन और ते इस शब्द का आदि और दूसरा विकल्प से उदात्त हो।

सूत्र की रचना – सुगन्धितेजन का पहला और दूसरा स्वर, और ते शब्द के स्वर का विकल्प से उदात्त विधान के लिए इस सूत्र का सृजन किया है।

सूत्र की व्याख्या– यह सूत्र विधिसूत्र है। इससे उदात्त स्वर का विधान है। इस सूत्र में तीन पद है। वहाँ सुगन्धितेजनस्य यह षष्ठी एकवचनान्त पद है, ते यह षष्ठ्यन्त अनुकरण प्रथमा एकवचनान्त पद है, वा यह अव्यय पद है। अथ द्वितीयां प्रागीषात् इस सूत्र से द्वितीयाम् इस पद का अधिकार है। उस पद को यहाँ प्रथमा एकवचनान्त के द्वारा बदला गया। अतादिः प्राक् शकटेः इस सूत्र से यहाँ आदिः इस प्रथमा एकवचनान्त पद का यहाँ अधिकार है। फिषोऽन्त उदात्तः इस सूत्र से उदात्तः इस प्रथमा एकवचनान्त पद की यहाँ अनुवृत्ति आ रही है। उसके पदों का यहाँ अन्वय होगा – सुगन्धितेजनस्य ते आदिः द्वितीयः वा उदात्तः इति। उस सूत्र का अर्थ है – सुगन्धितेजनस्य और ते– इस शब्द का आदि और दूसरा स्वर विकल्प से उदात्त होता है।

उदाहरण– सुगन्धितेजनाः।

सूत्र का अवतरणम्– प्रकृत सूत्र से ही सुगन्धितेजन शब्द के आदि उकार का और दूसरे अकार स्वर का विकल्प से उदात विधान किया। इसी प्रकार ते यहाँ पर भी प्रकृत सूत्र से विकल्प से उदात्त है।

पाठगत प्रश्न 11.1

1. फिट् नाम क्या है?
2. दक्षिण का आदि और अन्त किस सूत्र से उदात्त होता है?
3. 'घृतादीनां च' इस सूत्र से क्या होता है?
4. अवस्था अर्थ में ज्येष्ठ, कनिष्ठ शब्दों के अन्त्य स्वर को उदात्त किस सूत्र से होता है?
5. 'अथादिः प्राक् शकटेः' इस सूत्र से किस पद का अधिकार ग्रहण करते हैं?
6. आम्रः यहाँ पर 'तृणधान्यानां च द्व्यषाम्' इस सूत्र से आद्युदात्त कैसे नहीं हुआ?
7. द्युत अर्थ को छोड़कर अक्ष् शब्द का आदि उदात्त किस सूत्र से होता है?
8. सुगन्धितेजन शब्द का पर्याय से उदात्त स्वर किस सूत्र से होता है?

टिप्पणियाँ

11.11 शकटिशकट्योरक्षरमक्षरं पर्यायेण।

सूत्र का अर्थ– शकटि शकटी शब्दों का प्रत्येक अक्षर क्रम से उदात्त होता है।

सूत्र का अवतरण– शकटि शकटी शब्दों के स्वरों को पर्याय से उदात्त विधान के लिए इस सूत्र की रचना आचार्य जी ने की है।

सूत्र की व्याख्या– यह सूत्र विधायक सूत्र है। इससे क्रम से उदात्त स्वर का विधान है। शकटिशकट्योः अक्षरम् अक्षरं पर्यायेण ये सूत्र में आये पदच्छेद हैं। चार पद वाले इस सूत्र में शकटिशकट्योः यह षष्ठी द्विवचनान्त पद है, अक्षरम्, और अक्षरं ये दोनों पद प्रथमा एकवचनान्त है, और पर्यायेण यह तृतीया एकवचनान्त पद है। फिषोऽन्त उदात्तः इस सूत्र से यहाँ उदात्तः इस विधेय स्वर बोध क प्रथमा एकवचनान्त पद की यहाँ अनुवृति आ रही है। उससे यहाँ सूत्र के पदों का अन्वय होता है – शकटिशकट्योः अक्षरम् अक्षरं पर्यायेण उदात्तः इति। यहाँ शकटिशकट्योः इस पद के विशेष्य रूप से शब्दयोः इस पद का यहाँ आक्षेप किया है। उससे यहाँ सूत्र का अर्थ होता है – शकटि शकटी शब्दों के अक्षर – अक्षर को क्रम से उदात्त होता है।

उदाहरण – शकटी। शकटिः।

सूत्र अर्थ का समन्वय– शकटी इस पद में प्रत्येक स्वर उदात्त है। अथ प्रकृत सूत्र से ही यहाँ अपने अपने क्रम से स्वर उदात्त होते हैं। इसी प्रकार शकटिः यहाँ पर भी प्रकृत सूत्र से ही क्रम से स्वर वर्ण उदात्त होते हैं।

विशेष– 'अथादिः प्राक् शकटेः' इस अधिकार सूत्र में प्राक् शकटेः इस वचन से उस सूत्र से नियम किये गए आदिः इस पद का अधिकार प्रकृत सूत्र से पूर्व तक ही है। इस कारण से ही यहाँ क्रम से शकटि शकटी शब्दों के स्वर उदात्त होते हैं।

11.12 गोष्ठजस्य ब्राह्मणनामधेयस्य।

सूत्र का अर्थ– अक्षर अक्षर को क्रम से उदात्त होता है।

सूत्र का अवतरण– ब्राह्मण नामधेय गोष्ठज शब्द के स्वरों को क्रम से उदात्त विधान के लिए इस सूत्र की रचना आचार्य जी ने की है।

सूत्र की व्याख्या– यह विधिसूत्र है। इससे उदात्त स्वर का विधान है। यहाँ दो पद है। गोष्ठज शब्द का और ब्राह्मणनामधेयस्य ये सूत्र में आये पदच्छेद हैं। वहाँ गोष्ठजस्य शब्द षष्ठी एकवचनान्त पद है, ब्राह्मणनामधेयस्य यह भी षष्ठी एकवचनान्त पद है। शकटिशकट्योरक्षरमक्षरं पर्यायेण इस सूत्र से अक्षरम्, अक्षरं इन प्रथमा एकवचनान्त दो पदों की, पर्यायेण इस तृतीया एकवचनान्त पद की यहाँ अनुवृति आ रही है। उससे इस सूत्र के पदों का अन्वय है– गोष्ठजशब्दस्य ब्राह्मणनामधेयस्य अक्षरमक्षरं पर्यायेण उदात्तः इति। प्रकृत सूत्र से विहित कार्य गोष्ठज इस शब्द स्वरूप को होता है। किन्तु प्रकृत सूत्र से विहित कार्य तभी सम्भव है, जब गोष्ठज शब्द किसी भी ब्राह्मण

का नाम है। इसलिए सूत्र में ब्राह्मणनामधेयस्य इस पद को जोड़ा गया है। इस प्रकार यहाँ यह सूत्र का अर्थ प्राप्त होता है – ब्राह्मण नामधेय गोष्ठज शब्द का प्रत्येक स्वर क्रम से उदात्त होता है।

उदाहरण– गोष्ठजो ब्राह्मणः।

सूत्र अर्थ का समन्वय– गोष्ठजो ब्राह्मणः यहाँ पर गोष्ठज यह शब्द किसी ब्राह्मण का नाम है। अतः प्रकृत सूत्र से उस गोष्ठज शब्द के स्वर वर्णों को क्रम से उदात्त होने का विधान है।

विशेष– यहाँ यह समझना चाहिए की यह गोष्ठज शब्द ब्राह्मण का नाम है। अन्यथा वहाँ प्रकृत सूत्र से उदात्त होने का विधान नहीं है। इसलिए गोष्ठजः पशुः इत्यादि में गोष्ठज शब्द का ब्राह्मण नामधेय के अभाव होने से प्रकृत सूत्र से वहाँ स्वर उदात्त नहीं होते है। और वहाँ कृत्त उत्तर पद से प्रकृति स्वर अन्तोदात्त होता है।

11.13 निपाता आद्युदात्ताः।

सूत्र का अर्थ– निपात आद्युदात्त होते हैं।

सूत्र का अवतरण– निपात संज्ञक के आदि स्वरों को उदात्त विधान के लिए इस सूत्र की रचना की है।

सूत्र की व्याख्या– छः प्रकार के पाणिनीय सूत्रों में यह विधि सूत्र है। इससे उदात्त स्वर का विधान है। इस सूत्र में दो पद हैं, वहाँ निपाताः यह प्रथमा बहुवचनान्त पद है, आद्युदात्ताः यह भी प्रथमा बहुवचनान्त पद है। यहाँ निपात यह संज्ञाबोधक पद है। च, वा, ह, अह, एव, एवम्, नूनम्, शश्वत्, युगपत्, भूयस्, कूपत्, कुवित्, नेत्, चेत्, चणकच्चित्, यत्र, नह, हन्त, माकिः, माकिम्, नकिः नकिम्, माङ्, नञ्, यावत्, तावत्, त्वै, द्वै, न्वै, रै, श्रौषट्, वौषट्, स्वाहा, स्वधा, वषट्, तुम्, तथाहि, खलु, किल, अथो, अथ, सुष्ठु, स्म, आदह – इत्यादि निपात संज्ञक है।

वैसे ही पाणिनीय शास्त्र में निपात यह संज्ञा बोधक पद है। वहाँ निपात संज्ञा का विधान करने वाले अनेक सूत्र हैं। जैसे – चादयोऽसत्त्वे, प्रादयः इत्यादि। उनमें अद्रव्य वाचि शब्द और जो चादिगण में पढ़े हुए है, उनका 'चादयोऽसत्त्वे' इस सूत्र से निपातसंज्ञा का विधान है। अद्रव्यवाचि प्रादिगण में पढ़े हुए होने से उन शब्दों को 'प्रादयः' इस सूत्र से निपात संज्ञा होती है। इसी प्रकार यहाँ पदों का अन्वय निपाताः आद्युदात्ताः इति। उससे यह सूत्र का अर्थ प्राप्त होता है – निपात आद्युदात्त होते हैं।

उदाहरण– स्वाहा।

सूत्र अर्थ का समन्वय– स्वाहा इसका 'चादयोऽसत्त्वे' इस सूत्र से निपात संज्ञा है। अतः उसका निपात होने से प्रकृत सूत्र से 'स्वाहा' इसका आदि आकार को उदात्त होने का नियम है। इसी प्रकार स्वधा, वषट्, पम्, तथाहि इत्यादि निपातो के आदि स्वरों को उदात्त करने का विधान है।

टिप्पणियाँ

विशेष- प्रकृत सूत्र में छन्दसि इस पद की अनुवृति नहीं आ रही है, आद्युदात्तश्च यह भाष्यकार द्वारा कहे गए प्रमाण से। उनको प्रकृत सूत्र से बताये गए कार्य लोक में भी होते है, और वेद में भी होते हैं।

11.14 उपसर्गश्चाभिवर्जम्।

सूत्र का अर्थ- अभि शब्द को छोड़कर उपसर्ग आद्युदात्त होते है।

सूत्र का अवतरण- अभि को त्यागकर उपसर्गों के आदि स्वरों को उदात्त विधान के लिए इस सूत्र की रचना आचार्य जी द्वारा की गई है।

सूत्र की व्याख्या- यह सूत्र विधिसूत्र है। इससे अभि से शेष सभी उपसर्गों को आद्युदात्त का विधान है। यहाँ तीन पद है, उपसर्गः च अभिवर्जम् ये सूत्र में आये पदच्छेद हैं। वहाँ उपसर्गः यह प्रथमा एकवचनान्त पद है, च यह अव्यय, अभिवर्जम् यह प्रथमा एकवचनान्त पद है। इस सूत्र में आदिः, उदात्तः इन प्रथमा एकवचनान्त दो पदों की अनुवृति आ रही है। इस प्रकार वहाँ पदों का अन्वय होता है - अभिवर्जम् उपसर्गाः च आदिः उदात्तः इति। यहाँ आदिः और उदात्तः इन दो पदों को आद्युदात्ताः इस रूप के द्वारा उपसर्गाः इस पद के साथ अन्वय किया है। प्र, परा, अप, सम्, अनु, अव, निस्, निर् दुस्, दुर्, वि, आङ्, नि, अधि, अपि, अति, सु, उत्, अभि, प्रति, परि, उप - ये प्रादयः है। उसका यहाँ सूत्र अर्थ होता है - अभि इस उपसर्ग को छोड़कर अन्य उपसर्ग आद्युदात्त हो।

उदाहरण- उदुत्तमं वरुण।

सूत्र अर्थ का समन्वय- उद्वतः यहाँ पर उत् यह उपसर्ग संज्ञक है। अतः प्रकृत सूत्र से यहाँ उत् इसके स्वर को प्रकृत सूत्र से उदात्त करने का विधान है। यहाँ यदि अभि यह उपसर्ग हो तो प्रकृत सूत्र से वहाँ उस अभि उपसर्ग को आदि उदात्त नहीं होता है। वहाँ के लिए उदाहरण है जैसे - अभ्यभिहि, अभराममस्थानम् इत्यादि।

पूर्व सूत्र से निपात आद्युदात्त सिद्ध होते है, इसी प्रकार यहाँ उप आदि उपसर्गों का आद्युदात्त सिद्ध होता है, फिर भी यहाँ अलग से इस सूत्र का विधान क्यों किया है? इस प्रश्न के होने पर कहते है की पूर्व सूत्र से ही उप् आदि उपसर्गो को आद्युदात्त होना सम्भव है, फिर भी उपसर्गो में अभि इस उपसर्ग को आद्युदात्त नहीं हो जाए इसलिए इस सूत्र को अलग पढ़ा गया है।

11.15 एवादीनामन्तः।

सूत्र का अर्थ- एव आदि अन्तोदात्त हो।

सूत्र का अवतरण- एव आदि शब्दों के अन्त्य स्वर का उदात्त विधान के लिए इस सूत्र की रचना की है।

सूत्र की व्याख्या- यह विधिसूत्र है। इस सूत्र से एव आदि शब्दों का अन्त उदात्त होता है। एव आदीनाम् अन्तः ये सूत्र में आये पदच्छेद हैं। वहाँ एवादीनाम् यह षष्ठी बहुवचनान्त पद है, अन्तः यह प्रथमा एकवचनान्त पद है। निपाता आद्युदात्ताः इस सूत्र से उदात्तः इस प्रथमा एकवचनान्त पद की यहाँ अनुवृति आ रही है। उससे यहाँ पदों का अन्वय होता है - एवादीनाम् अन्तः उदात्तः इति। एव, एवम्, नूनम्, शश्वत्, युगपत्, भूयस्, कूपत्, कुवित्, नेत्, चेत्, चणकच्चित्, यत्र, नह, हन्त, माकिः, माकिम्, नकिः नकिम्, माङ्, नञ्, यावत्, तावत्, त्वै, द्वै, न्वै, रै, श्रौषट्, वौषट्, स्वाहा, स्वधा, वषट्, तुम्, तथाहि, खलु, किल, अथो, अथ, सुष्ठु, स्म, आदह इत्यादि एवादयः है। उससे यहाँ सूत्र का अर्थ होता है - एव आदि का अन्त उदात्त होता है।

और एवमादीनामन्तः यह इस सूत्र का पाठान्तर है। उस पक्ष में एवम् यह अव्यय पद है, आदीनाम् यह षष्ठी बहुवचनान्त पद है, अन्तः यह प्रमा एकवचनान्त पद है। यहाँ पर भी उदात्तः इस प्रथमा एकवचनान्त पद की पूर्व सूत्र से अनुवृत्ति आ रही है। उससे यहाँ पदों का अन्वय है - एवम् आदीनाम् अन्तः उदात्तः इति। और उससे यहाँ सूत्र का अर्थ होता है - एवम् इत्यादि शब्दों का अन्त उदात्त होता है।

उदाहरण- सहं ते पुत्र सूरिभिः, एव, एवम्, नूनम्।

सूत्र अर्थ का समन्वय- आलोचित सूत्र में एव इत्यादि शब्द एव आदि के अन्तर्गत होते है, अतः प्रकृत सूत्र से एव इसका अन्त स्वर उदात्त होता है।

सहं ते पुत्र सूरिभिः इत्यादि में सह यह अन्तोदात्त होने से यहाँ पढ़ा गया है। परन्तु छठें अध्याय के तीसरे पाद में ही 'सहस्य सः' इस सूत्र में सह शब्द आद्युदात्त पढ़ा गया है। अतः इस पर विचार करना चाहिए।

11.16 वाचादीनामुभावुदात्तौ।

सूत्र का अर्थ- (वाच्- इत्यादि शब्दों के दोनों वर्ण ही उदात्त हो)।

सूत्र का अवतरण- वाच् आदि शब्दों के दोनों वर्णों के उदात्त विधान के लिए इस सूत्र की रचना आचार्य जी द्वारा की गई है।

सूत्र की व्याख्या- छः प्रकार के पाणिनीय सूत्रों में यह विधि सूत्र है। इस सूत्र से वाच आदि शब्दों के दोनों वर्ण उदात्त हो।

इस सूत्र में वाचादीनाम् उभौ उदात्तौ ये सूत्र में आये पदच्छेद हैं। और यहाँ वाचादीनाम् षष्ठी बहुवचनान्त पद है, उभौ यह प्रथमा द्विवचनान्त पद है, उदात्तौ यह भी प्रथमा द्विवचनान्त पद है। यहाँ इस सूत्र के पदों का अन्वय इस प्रकार है - वाचादीनाम् उभौ उदात्तौ इति। और उससे यह सूत्र का अर्थ यहाँ प्राप्त होता है - वाच् आदि शब्दों के दोनों वर्ण उदात्त होते हैं।

उदाहरण- वाचौ।

टिप्पणियाँ

सूत्र अर्थ का समन्वय- वाचौ यह वाच्-शब्द के प्रथमा द्विवचन में रूप है। अतः प्रकृत सूत्र से वाच्-शब्द से प्रथमा द्विवचन में सिद्ध वाचौ इस शब्द के दोनों ही स्वर उदात्त होते हैं। इसी प्रकार वाचादि गण में पढ़े हुए अन्य शब्दों के अन्य भी रूपों के यहाँ उदाहरण हैं।

यहाँ 'अनुदात्तं पदमेकवर्जम्' इस सूत्र से प्राप्त अनुदात्त स्वर के निषेध के लिए इस सूत्र में उभौ इस पद का ग्रहण किया है।

11.17 चादयोऽनुदात्ताः।

सूत्र का अर्थ- चादय निपात अनुदात्त हो।

सूत्र का अवतरण- यहाँ च आदि में 'निपातानाम् आद्युदात्ताः' इस सूत्र से प्राप्त आद्युदात्त के निषेध के लिए इस सूत्र की रचना आचार्य जी ने की है।

सूत्र की व्याख्या- संज्ञा-परिभाषा-विधि-नियम, अतिदेश, अधिकार सूत्रों में यह विधिसूत्र है। इससे अनुदात्त स्वर का विधान है। इस सूत्र में दो पद हैं, चादयः अनुदात्ताः इति। निपाताः इस प्रथमा बहुवचनान्त पद की तो उस पूर्व सूत्र से ही यहाँ अनुवृति आ रही है। और उससे यहाँ सूत्र के पदों का अन्वय इस प्रकार है - चादयः निपाताः अनुदात्ताः इति। च, वा, ह, अह, एव, एवम्, नूनम्, शश्वत्, युगपत्, भूयस्, कूपत्, कुवित्, नेत्, चेत्, चणकच्चित्, यत्र, नह, हन्त, माकिः, माकिम्, नकिः नकिम्, माङ्, नञ्, यावत्, तावत्, त्वै, द्वै, न्वै, रै, श्रौषट्, वौषट्, स्वाहा, स्वधा, वषट्, तुम्, तथाहि, खलु, किल, अथो, अथ, सुष्ठु, स्म, आदह इत्यादि चादय हैं। और यह चादिगण आकृतिगण है। उससे यह सूत्र का अर्थ प्राप्त होता है - चादय निपात संज्ञक अनुदात्त हो।

उदाहरण - उत त्वः।

सूत्र अर्थ का समन्वय- उत यह निपात संज्ञक शब्द है। और उसका चादिगण में पाठ है। अतः प्रकृत सूत्र से चादिगण में पढ़े हुए उत इस निपात के आदि में उकार को अनुदात्त करने का विधान है। एवं वा, ह, अह, एव, एवम्, नूनम्, शाश्वत्, युगपत्, भूयस् - इत्यादि में भी इस सूत्र के उदाहरण जानने चाहिए।

11.18 यथेति पदान्ते।

सूत्र का अर्थ- (पाद के अन्त में यथा यह अनुदात्त होता है)।

सूत्र का अवतरण- पाद के अन्त में यथा को अनुदात्त स्वर विधान के लिए इस सूत्र की रचना की है।

सूत्र की व्याख्या- संज्ञा-परिभाषा-विधि-नियम अतिदेश अधिकार सूत्रों में यह विधिसूत्र है। इससे अनुदात्त स्वर का विधान है। इस सूत्र में यथा, इति, पादान्ते ये पदच्छेद है। तीन पद वाले इस सूत्र में यथा यह अव्यय पद है, इति यह भी अव्यय पद है, और पादान्ते यह सप्तमी एकवचनान्त पद है। पूर्वसूत्र से 'चादयोऽनुदात्ताः' इस सूत्र से अनुदात्ताः इस प्रथमा बहुवचनान्त पद की प्रकृत

सूत्र में अनुवृति आ रही है। उन पदों का अन्वय होता है – पादान्ते यथा इति अनुदात्तः इति। इस प्रकार यहाँ सूत्र का अर्थ इस प्रकार सिद्ध होता है – पाद के अन्त में यथा यह अनुदात्त होता है।

उदाहरण– तन्नेमिमृभवो यथा।

सूत्र अर्थ का समन्वय– तन्नेमिमृभवोध् यथा – इस उदाहरण में अनुष्टुप्– छन्द है। और यहाँ यथा यह शब्द पाद के अन्त में है। अतः प्रकृत सूत्र से यथा के अन्त्य आकार को अनुदात्त करने का विधान है।

11.19 प्रकारादिद्विरुक्तौ परस्यान्त उदात्तः।

सूत्र का अर्थ– दो बार कहा गया प्रकार आदि शब्दों के पर का अन्त उदात्त होता है।

सूत्र का अवतरण– प्रकार आदि शब्दों के दो बार कहने पर वहाँ दूसरे प्रकार आदि शब्द के अन्त स्वर को उदात्त होने का विधान करने के लिए इस सूत्र की रचना आचार्य जी ने की है।

सूत्र की व्याख्या– संज्ञा–परिभाषा–विधि–नियम अतिदेश अधिकार सूत्रों में यह विधिसूत्र है। इससे उदात्त स्वर का विधान है। इस सूत्र में पांच पद है। वहाँ प्रकार आदि इस प्रथमा एकवचनान्त पद है, द्विरुक्तौ यह सप्तमी एकवचनान्त पद है, परस्य यह षष्ठी एकवचनान्त पद है, अन्तः यह प्रथमा एकवचनान्त पद है, और उदात्तः यह भी प्रथमा एकवचनान्त पद है। और सूत्र के पदों का अन्वय होता है – प्रकारादिद्विरुक्तौ परस्य अन्तः उदात्तः इति। इस प्रकार यहाँ यह सूत्र का अर्थ प्राप्त होता है – प्रकार आदि शब्दों के दो बार होने पर वहाँ दूसरे प्रकार आदि में अन्त का अच् उदात्त स्वर होता है।

उदाहरण– पटुपटुः।

सूत्र अर्थ का समन्वय– यह पटु– शब्द प्रकार आदिगण में पढ़ा गया है। अतः पटुपटुः इस उदाहरण में प्रकार आदिगण में पढ़े हुए पटु शब्द के 'प्रकारे गुणवचनस्य' इस सूत्र से दो होने पर पटु पटु इस स्थित्ति में प्रकृत सूत्र से दूसरे पटु शब्द का अन्त्य उकार को उदात्त होता है। और विभक्ति कार्य करने पर पटुपटुः यह रूप सिद्ध होता है।

विशेष– और इस प्रकृत सूत्र से विहित कार्य को 'कर्मधारयवदुत्तरेषु' यहाँ कर्मधारयवद् भाव होने से सिद्ध है, उससे यह सूत्र व्यर्थ है यह शङ्का यहाँ नहीं करना चाहिए। क्योकि यह प्रकृत सूत्र पाणिनीय सूत्र से पूर्व से ही वर्तमान है। अतः इसका पाणिनीय से पूर्व प्रवृत होने से कोई दोष नहीं है। अतः आचार्य जी कहते हैं की यह सूत्र कर्मधारयवद भाव से सिद्ध अन्तोदात्त का अनुवाद किया है।

11.20 शेषं सर्वमनुदात्तम्।

सूत्र का अर्थ– शेष नित्य आदि के दो बार होने पर बाद अर्थ में है।

सूत्र का अवतरण– प्रकार आदि शब्दों के द्वित्व होने से सभी को अनुदात्त स्वर विधान के लिए इस सूत्र की रचना आचार्य जी ने की है।

सूत्र की व्याख्या– छः प्रकार के पाणिनीय सूत्रों में यह विधिसूत्र है। इससे अनुदात्त स्वर का विधान है। शेषं सर्वम् अनुदात्तम् ये सूत्र में आये पदच्छेद है। शेषम् यह प्रथमा एकवचनान्त पद है, सर्वम्, अनुदात्तं ये दो पद भी प्रथमा एकवचनान्त है। कहे हुए से अन्य शेष है। यहाँ शेष क्या है? इस जिज्ञासा में कहते है, शेष प्रकार आदि के द्वित्व होने से अन्य। अर्थात् प्रकार आदि द्वित्व होने पर पर का अन्त उदात्त है, इस सूत्र में प्रकार आदि शब्दों को द्वित्व कहा है, उससे अन्य द्वित्व होने पर यहाँ शेष पद वाच्य है। इस प्रकार यहाँ पदों का अन्वय इस प्रकार है – शेषं सर्वम् अनुदात्तम् इति। उससे यहाँ यह सूत्र अर्थ यहाँ पास होता है – प्रकार आदि– शब्दों के द्वित्व होने से अन्य द्वित्व में पर के सभी अनुदात्त हो।

उदाहरण– प्रप्राध्यम्।

सूत्र अर्थ का समन्वय– प्रप्रायम् इस उदाहरण में प्र इस शब्द के द्वित्व होता है। और भी प्र यह शब्द प्रकार आदि से भिन्न है। अतः उस शब्द के द्वित्व होने पर 'प्र प्र' इस स्थित्ति में परे का प्र इस शब्द का अकार को प्रकृत सूत्र से अनुदात्त होने का विधान है।

पाठगत प्रश्न 11.2

1. 'शकटिशकट्योरक्षरमक्षरं पर्यायेण' इस सूत्र से कौन से स्वर का विधान है?
2. ब्राह्मण नामधेय गोष्ठज शब्द का अक्षर-अक्षर क्रम से उदात्त किस सूत्र से होता है?
3. निपात आद्युदात्त किस सूत्र से है?
4. किस उपसर्ग को छोड़कर अन्य सभी उपसर्गो को आद्युदात्त होने का विधान है?
5. एव आदि अन्तोदात्त किस सूत्र से होती है?
6. चादिगणः आकृतिगण है, अथवा नहीं ?
7. द्वित्व होने पर प्रकार आदि शब्दों के पर का अन्त उदात्त किस सूत्र से होता है?

पाठ का सार

प्रातिपदिक को फिट् प्राचीन आचार्यो के द्वारा कहा गया है। फिट् यह संज्ञा वाचक पद है। और यह संज्ञा महर्षि पाणिनी से पूर्वकाल से ही वर्तमान है। ये सूत्र फिषम् अर्थात् प्रातिपदिक के आश्रित ही है। फिट्-स्वरों के विषय में यह पाठ है। छन्दसि च, घृतादीनां च, जेष्ठकनिष्ठयोर्वयसि, तृणधान्यानां च द्रव्यषाम् इत्यादि सूत्र से फिट्-स्वर का प्रतिपादन किया है। इस पाठ में फिट्-स्वर

विधायक कुछ विशेष सूत्र की आलोचना है। क्योकि पाठ के बढ़ने के भय से प्रसिद्ध ही सूत्रों को ही यहाँ हमारे द्वारा स्वीकार किया है। जैसे - फिषोन्तः उदात्तः इस सूत्र से फिषः अथवा प्रातिपदिक के अन्त्य को उदात्त करने का नियम किया है। उच्चैः इस पद की पाणिनीय सूत्रों के द्वारा प्रातिपदिक संज्ञा नहीं है, अपितु पूर्व आचार्यों के द्वारा प्रातिपदिक कहा जाता है। अतः उस फिषः अथवा प्रातिपदिक उच्चै इसके अन्त्य ऐकार को प्रकृत सूत्र से उदात्त होता है। और भी छन्दसि च इस सूत्र से दक्षिण शब्द का आदि और अन्त उदात्त होता है। दक्षिण यह वैदिक प्रयोग है। अतः प्रकृत सूत्र से उस दक्षिण शब्द के अन्त अकार का और आदि में अकार के उदात्त होने का विधान है। इसी प्रकार 'घृतादीनां च' इस सूत्र से घृतादि शब्दों के अन्त्य स्वर को उदात्त होता है। इसी प्रकार ज्येष्ठकनिष्ठयोर्वयसि इस सूत्र से अवस्था अर्थ में ज्येष्ठ कनिष्ठ शब्दों के अन्त्य स्वर को उदात्त होता है। और फिर 'तृणधान्यानां च द्वयषाम्' इस सूत्र से दो अच् वाले तृण धान्य वाचक शब्दों के आदि स्वर के उदात्त होने का विधान है। कुश इस शब्द में दो अच् है। और यह कुश शब्द तृणवाची है। उससे इस प्रकृत सूत्र से उस कुश-शब्द के आदि स्वर उकार का उदात्त होने का विधान किया है। इसी प्रकार काशाः इस शब्द में दो अच् है। और यह काश-शब्द धान्यवाची है। उससे इस प्रकृत सूत्र से उस काश-शब्द के आदि स्वर का आकार उदात्त होने का विधान है। इसी प्रकार अन्य फिट्-स्वर विधायक सूत्रों का भी वर्णन है। इस पाठ में उन सूत्रों के व्याख्यान है, उदाहरण, और उदाहरण सङ्गति का यहाँ प्रदर्शन किया है।

पाठांत प्रश्न

1. 'फिषोऽन्त उदात्तः' इस सूत्र की व्याख्या कीजिए।
2. 'छन्दसि च' इस सूत्र की व्याख्या कीजिए।
3. 'ज्येष्ठकनिष्ठयोर्वयसि' इस सूत्र की व्याख्या कीजिए।
4. 'तृणधान्यानां च द्वयषाम्' इस सूत्र की व्याख्या कीजिए।
5. 'गोष्ठजस्य ब्राह्मणनामधेयस्य' इस सूत्र की व्याख्या कीजिए।
6. 'एवादीनामन्तः' इस सूत्र की व्याख्या कीजिए।
7. 'चादयोऽनुदात्ताः' इस सूत्र की व्याख्या कीजिए।

पाठगत प्रश्नों के उत्तर

11.1

1. प्रातिपदिक।
2. छन्दसि च सूत्र से।

3. घृत आदि शब्दों का अन्त्य स्वर उदात्त होता है।
4. 'ज्येष्ठकनिष्ठयोर्वयसि' इस सूत्र से।
5. आदिः इस पद का।
6. तृणवाचक के अभाव होने से और धान्य वाचक के अभाव होने से।
7. अक्षस्यादेवनस्य इस सूत्र से।
8. सुगन्धितेजनस्य ते वा इस सूत्र से।

11.2

1. उदात्त स्वर।
2. गोष्ठजस्य ब्राह्मणनामधेयस्य इस सूत्र से।
3. निपाता आद्युदात्ताः इस सूत्र से।
4. अभि- इस उपसर्ग को छोड़कर।
5. एवादीनामन्तः इस सूत्र से।
6. हाँ, आकृतिगण है।
7. प्रकारादिद्विरुक्तौ परस्यान्त उदात्तः इस सूत्र से।

॥ ग्यारहवां पाठ समाप्त॥

12

प्रत्यय स्वर

इस प्रत्यय स्वर के प्रकरण में प्रत्ययों के स्वर विषय में संक्षेप से कुछ विवरण किया है। वेद में उदात्तस्वर, अनुदात्तस्वर, और स्वरितस्वर ये तीन सामान्य स्वर विद्यमान हैं। उदात्त-अनुदात्त-स्वरित संज्ञा: अष्टाध्यायी में विहित है। वहाँ उदात्त संज्ञा विधायक पाणिनीय सूत्र उच्चैरुदात्त: है। अनुदात्त संज्ञा विधायक सूत्र नीचैरनुदात्त: है। स्वरित संज्ञा विधायक सूत्र 'समाहार: स्वरित:' है। वहाँ अनुदात्त स्वर के बोध के लिए; इस सङ्केत को स्वीकार किया है। स्वरित स्वर के बोध के लिए इति सङ्केत:। को स्वीकार किया है। किन्तु उदात्त स्वर के बोध के लिए इस प्रकार का कोई विशेष प्रयत्न नहीं किया है। इस पाठ में उदात्त स्वर की और अनुदात्त स्वर की आलोचना की है।

उद्देश्य

इस पाठ को पढ़कर आप सक्षम होंगे :

- प्रत्ययों के स्वर विधान विषय को जान पाने में;
- अग्नि शब्द के नकार से उत्तर इकार का क्या स्वर है इस विषय में जान पाने में;
- पित् प्रत्ययों का क्या स्वर होता है यह जान पाने में;
- तद्धित प्रत्ययों का क्या स्वर होता है इस विषय में जान पाने में;
- सूत्रों का अर्थ निर्णय कर पाने में;
- सूत्रों की व्याख्या कर पाने में; और
- अनुवृत्ति आदि का ज्ञान प्राप्त कर पाने में।

टिप्पणियाँ

12.1 आद्युदात्तश्च (३.१.३)

सूत्र का अर्थ – प्रत्यय का आदि उदात्त ही हो।

सूत्र का अवतरण– प्रत्यय के आदि उदात्त विधान के लिए इस सूत्र की रचना की है।

सूत्र की व्याख्या– संज्ञा– परिभाषा– विधि– नियम अतिदेश और अधिकार छः प्रकार के पाणिनीय सूत्रों में यह अधिकार सूत्र है। यहाँ दो पद विराजमान हैं। आद्युदात्तः च ये सूत्र में आये पदच्छेद है। आद्युदात्तः यह प्रथमान्त पद है, च यह अव्यय पद है। प्रत्ययः इस प्रथमा एकवचनान्त पद का यहाँ अधिकार आ रहा है। उससे सूत्र का अर्थ होता है – प्रत्यय का आदि उदात्त ही होता है।

उदाहरण–अग्निः। कर्तव्यम् इति।

सूत्र अर्थ का समन्वय– गत्यर्थक अगि धातु के इकार की 'उपदेशेऽजनुनासिक इत्' इस सूत्र से इत् संज्ञक है, अतः यह धातु इदित् है। इसलिए ही इस धातु के इदित् होने से 'अङ्गेर्नलोपश्च' इस सूत्र से अगि धातु से परे प्रकृत सूत्र से नि प्रत्यय करने पर अग् नि इस स्थिति में सभी का संयोग करने पर 'अग्नि' इस स्थित्ति में शब्द स्वरूप के कृदन्त होने से 'कृत्तद्धितसमासाश्च' इससे उसकी प्रातिपदिक संज्ञा होने पर, और उसके बाद 'ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः परश्च' इसने अधिकार में वर्तमान से 'स्वौजसमौट्छष्टाभ्याम्भिस्ङेभ्याम्भ्यस्ङसिभ्याम्भ्यस्ङसोसांङ्योस्सुप्' इस सूत्र से खाले कपोत न्याय से इक्कीस स्वादि प्रत्ययों की प्राप्ति में प्रथमा एकवचन की विवक्षा में सु प्रत्यय करने पर अनुनासिक होने से पाणिनीय की प्रतिज्ञा से उस उकार की 'उपदेशेऽजनुनासिकः इत्' इस सूत्र से इत्संज्ञा होने पर 'तस्य लोपः' इस सूत्र से इत् संज्ञक उकार का लोप होने पर 'अग्नि स्' इस स्थित्ति में संयोग करने पर अग्निस् इस शब्द स्वरूप के सुबन्त होने से उस सकार के स्थान में 'ससजुषोः रुः' इससे आदेश होने पर रु के उकार की 'उपदेशेऽजनुनासिक इत्' इससे इत् संज्ञा में लोप करने पर 'अग्नि र्' इस स्थित्ति में रेफ उच्चारण से परे वर्ण अभाव के कारण 'विरामोऽवसानम्' इस सूत्र से अवसान संज्ञा होने पर उससे पूर्व रेफ के स्थान में 'खरवसानयोर्विसर्जनीयः' इस सूत्र से रेफ के स्थान में विसर्ग करने पर 'अग्निः' यह सुबन्त रूप सिद्ध होता है। अग्नि शब्द नि प्रत्ययान्त है। इसलिए प्रकृत सूत्र से नि प्रत्यय के इकार को ही उदात्त होता है।

विशेष– आद्युदात्त वह ही होता है, जो प्रत्यय संज्ञक है, उस नाम के प्रत्यय अधिकार में जो–जो पढ़े गए है, उस–उस शब्द का आदि स्वर उदात्त होता है।

12.2 अनुदात्तौ सुप्पितौ (३-१-४)

सूत्र का अर्थ– सुप् पित् प्रत्ययों की अनुदात्त संज्ञा होती है।

सूत्र का अवतरण– सुप् प्रत्ययों की और पित् प्रत्ययों के स्वर को अनुदात्त विधान के लिए इस सूत्र की रचना की है।

सूत्र की व्याख्या- संज्ञा- परिभाषा- विधि- नियम अतिदेश अधिकार छः प्रकार के पाणिनीय सूत्रों में यह विधिसूत्र है। इससे सुप्प्रत्ययों के और पित्प्रत्ययों के स्वरों का अनुदात्त विधान किया है। इस सूत्र में दो पद विद्यमान है। अनुदात्तौ, सुप्पितौ ये सूत्र में आये पदच्छेद हैं। जिसको उद्देश्य करके जो कुछ कार्य का विधान किया जाता है, वह कार्य उद्देश्य कहलाता है, अतः सुप्पितौ यह प्रथमा द्विवचनान्त उद्देश्य बोधक पद है। जिसका विधान किया जाता है, उसे विधेय कहते है, अतः अनुदात्तौ यह विधेय बोधक प्रथमा द्विवचनान्त पद है। यहाँ सुप्प्रत्यय को और पित्प्रत्यय को उद्देश्य करके अनुदात्त होने की विधि है। यहाँ सूत्र के पदों का अन्वय इस प्रकार है - सुप्पितौ अनुदात्तौ इति। उससे यह सूत्रार्थ प्राप्त होता है - सुप्प्रत्यय और पित्प्रत्यय अनुदात्त होते हैं।

उदाहरण- यज्ञस्यं। न यो युच्छति।

सूत्र अर्थ का समन्वय- रूढ़िपक्ष में यज्ञ शब्द की 'अर्थवदधातुरप्रत्ययः प्रातिपदिकम्' इस सूत्र से उसकी प्रातिपदिक संज्ञा होती है, उसके बाद 'ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः परश्च' इनके अधिकार में वर्तमान स्वौजसमौट्छष्टाभ्याम्भिस्ङेभ्याम्भ्यस्ङसिभ्याम्भ्यस्ङसोसांङ्योस्सुप् इस सूत्र से इक्कीस प्रत्ययों की प्राप्ति में षष्ठी एकवचन की विवक्षा में ङस् प्रत्यय करने पर यज्ञ ङस् इस स्थित्ति में ङस् के ङकार की 'लशक्वतद्धिते' इस सूत्र से इत्संज्ञा करने पर 'तस्य लोपः' इस सूत्र से इत्संज्ञक ङकार के लोप करने पर यज्ञ अस् इस स्थित्ति में अदन्त प्रातिपदिक से परे अस स्थान में 'टाङसिङसामिनात्स्याः' इस सूत्र से स्य यह आदेश होने पर यज्ञ स्य इस स्थित्ति में सभी का संयोग करने पर यज्ञस्य यह रूप सिद्ध होता है। यज्ञस्य यहाँ पर जो ङस् के स्थान में विहित स्य आदेश है, उसका स्थानिवद् भाव से सुप् होने का आरोप किया है। उस स्य प्रत्यय के होने पर भी सुप् सिद्ध है। उसको इस सूत्र से स्य प्रत्यय के यकार से उत्तर अकार को अनुदात्त होना सिद्ध है।

अब दूसरे उदाहरण के विषय में आलोचना करते है। दूसरा उदाहरण पित् प्रत्यय के विषय में है। इसका उदाहरण है युच्छति यहाँ पर युच्छ प्रमादे इस धातु से वर्तमाने लट् इससे लट करने पर, लट के अकार और टकार की इत्संज्ञा और लोप करने पर युच्छ् ल् इस स्थित्ति में लकार के स्थान में तिप्तस्झिसिप्थस्थमिब्वस्मस्तातांझथासाथान्ध्वमिड्वहिमहिङ् इस सूत्र से अठारह तिप्प्रत्ययों की प्राप्ति में प्रथम पुरुष एकवचन की विवक्षा में तिप् प्रत्यय करने पर युच्छ् तिप् इस स्थित्ति में पकार की हलन्त्यम् इस सूत्र से इत्संज्ञा होने पर इत्संज्ञक पकार का तस्य लोपः इस सूत्र से लोप करने पर कर्तरि शप् इस सूत्र से धातु को शप्प्रत्यय करने पर शप्प्रत्यय के आदि शकार की लशक्वतद्धिते इस सूत्र से इत्संज्ञा होने पर और पकार की हलन्त्यम् इस सूत्र से इत्संज्ञा होने पर उन दोनों इत्संज्ञक लकार पकार की तस्य लोपः इससे लोप करने पर युच्छ् अ ति इस स्थित्ति में सभी का संयोग होने पर युच्छति यह रूप सिद्ध होता है। तिप्प्रत्य के पित्त् होने से प्रकृत सूत्र से समुदाय के अन्त स्वर को उदात्त सिद्ध होता है। अर्थात् युच्छति यहाँ पर अन्तिम का अच् इकार को उदात्त होता है।

विशेष- यह सूत्र पूर्व के आद्युदात्तश्च इस सूत्र का अपवाद है। और उससे यह सूत्र जहाँ कार्य करता है, वहाँ आद्युदात्तश्च इस सामान्य सूत्र की प्रवृति नहीं होती है।

टिप्पणियाँ

12.3 चितः (६.१.१६३)

सूत्र का अर्थ– चित है जिस समुदित शब्द में उस शब्द को अन्त उदात्त होता है।

सूत्र का अवतरण– चित्प्रत्ययों के अन्त स्वर का उदात्त विधान करने के लिए इस सूत्र की रचना की है।

सूत्र की व्याख्या– संज्ञा– परिभाषा– विधि– नियम अतिदेश अधिकार छः प्रकार के पाणिनीय सूत्रों में यह विधिसूत्र है। इससे चित्प्रत्ययान्त का प्रकृति प्रत्यय समुदा के अन्त्य स्वर को उदात्त करने का नियम किया है। चितः यहाँ पर षष्ठी अर्थ में प्रथमा एकवचन है। कर्षात्वतो घञः अन्त उदात्तः इस सूत्र से अन्तः इसकी और उदात्तः इसकी प्रथमा एकवचनान्त दो पदों की यहाँ अनुवृति आती है। अब यहाँ 'चितः सप्रकृतेर्बह्वकजर्थम्' इस वार्तिक से चित्प्रत्यय के समान समुदाय का यह अर्थ प्राप्त होता है। वैसे चकार इत् है जिसका वह चित् यहाँ बहुव्रीहि समास है। वह चित् इसका है यहाँ पर चित्–प्रातिपदिक से मत्वर्थ में अच्प्रत्यय करने पर चितः यह रूप बनता है। अतः पदों का अन्वय इस प्रकार सम्भव होता है – चितः अन्तः उदात्तः इति। उससे यहाँ यह सूत्र का अर्थ प्राप्त होता है – चित्प्रत्यय के समान प्रकृति प्रत्यय समुदाय का अन्त स्वर उदात्त होता है।

उदाहरण– नभन्तामन्यके संमे।

सूत्र अर्थ का समन्वय– नभन्तामन्यके संमे इसमें अन्यके यहाँ पर अकच् प्रत्यय विहित है। और वह अकच्प्रत्यय चित् है। अतः अकच रूप चित्प्रत्यय होने से अन्य के यहाँ पर प्रकृति प्रत्यय के समान समुदाय के अन्त स्वर एकार को प्रकृत सूत्र से उदात्त होता है।

12.4 तद्धितस्य (६.१.१६४)

सूत्र का अर्थ– तद्धित चित प्रत्यय को अन्त उदात्त होता है।

सूत्र का अवतरणम्– तद्धित चित्प्रत्ययान्त के प्रकृति प्रत्यय समुदाय का अन्तिम स्वर के उदात्त विधान के लिए इस सूत्र की रचना की है।

सूत्र की व्याख्या– संज्ञा– परिभाषा– विधि– नियम अतिदेश अधिकार छः प्रकार के पाणिनीय सूत्रों में यह विधिसूत्र है। इससे तद्धित चित्प्रत्ययान्त का प्रकृति प्रत्यय समुदाय के अन्तिम स्वर को उदात्त होने का विधान है। इस सूत्र में एक ही तद्धितस्य यह पद है। और वह तद्धितस्य पद षष्ठी एकवचनान्त है। कर्षात्वतो घञः अन्त उदात्तः इस सूत्र से अन्तः इसकी और उदात्तः इस प्रथमा एकवचनान्त दो पदों की यहाँ अनुवृति आ रही है। चितः इस पूर्व सूत्र से चितः इस षष्ठ्यर्थ में प्रथमा एकवचनान्त पद की यहाँ अनुवृति आती है। यहाँ चितः इस पद की अनुवृति से चित्प्रत्यय के समान प्रकृति प्रत्यय समुदाय का यह अर्थ प्राप्त होता है। उससे यहाँ पदों का अन्वय होता है – चितः तद्धितस्य प्रकृतिप्रत्ययसमुदायस्य अन्तः उदात्तः इति। उनके द्वारा यहाँ यह सूत्र का अर्थ होता है – तद्धित चित्प्रत्ययान्त के प्रकृति प्रत्यय समुदाय के अन्तिम स्वर को उदात्त हो।

उदाहरण- कौञ्जायनाः।

सूत्र अर्थ का समन्वय- कौञ्जायनाः यहाँ पर च्फञ् यह तद्धित प्रत्यय किया है। वैसे ही कुञ्ज शब्द की अर्थवदधातुरप्रत्ययः प्रातिपदिकम् इस सूत्र से प्रातिपदिक संज्ञा करने पर उसके बाद च्फञ् इस तद्धित प्रत्यय करने पर कुञ्ज च्फञ् इस स्थित्ति में च्फञ्-प्रत्यय के आदि चकार की चुटू इस सूत्र से इत्संज्ञा करने पर, ञकार की हलन्त्यम् इस सूत्र से इत्संज्ञा करने पर तस्य लोपः इस सूत्र से उन दोनों की इत् संज्ञा करने पर चकार ञकार के लोप होने पर कुञ्ज फ इस स्थित्ति में फकार के स्थान में 'आयनेयीनीयियः फढखछघां प्रत्ययादीनाम्' इस सूत्र से आयन् यह आदेश होने पर कुञ्ज आयन् अ इस स्थित्ति में च्फञ्-प्रत्यय के ञित् होने से 'तद्धितेष्वचामादेः' इस सूत्र से कुञ्ज शब्द के आदि उकार को वृद्धि औकार होने पर और भसंज्ञक कौञ्जायन शब्द के अन्त्य अकार की 'यस्येति च' इस सूत्र से लोप होने पर सभी का संयोग करने पर कौञ्जायन इस शब्द स्वरूप के तद्धितान्त होने से 'कृत्तद्धितसमासाश्च' इस सूत्र से उसकी प्रातिपदिक संज्ञा करने पर, वहाँ 'ङ्याप्प्रातिपदिकात्', प्रत्ययः परश्च इनके अधिकार में वर्तमान 'स्वौजसमौट्-छष्टाभ्याम्भिस्ङेभ्याम्भ्य स्ङसिभ्याम्भ्यस्ङसोसांङ्योस्सुप्' इन सभी इक्कीस स्वादि प्रत्ययों की प्राप्ति में प्रथमा बहुवचन की विवक्षा में जस्प्रत्यय करने पर जस्प्रत्यय के आदि जकार की चुटू इस सूत्र से इत्संज्ञा करने पर तस्य लोपः इस सूत्र से उस इत्संज्ञक जकार के लोप होने पर कौञ्जायन अस् इस स्थित्ति में संयोग करने पर कौञ्जायनास् इस शब्द स्वरूप के सुबन्त होने से उस सकार के स्थान में ससजुषोः रुः इससे रु आदेश करने पर रु के उकार की उपदेशेऽजनुनासिक इससे इत्संज्ञा और लोप करने पर कौञ्जायना इस स्थित्ति में रेफ उच्चारण से परे वर्ण अभाव होने से विरामोऽवसानम् इस सूत्र से अवसान संज्ञा होने पर पूर्व रेफ के स्थान में खरवसानयोर्विसर्जनीयः इस सूत्र से रेफ के स्थान में विसर्ग करने पर कौञ्जायनाः यह सुबन्त रूप बनता है। यहाँ च्फञ् यह चित् और तद्धित प्रत्यय है। अतः तद्धितान्त कौञ्जायन इस शब्द के अन्त्य स्वर अकार को उदात्त करने का विधान है।

12.5 कितः (६.१.१६६)

सूत्र का अर्थः- कित तद्धितांत प्रत्ययों को अन्तोदात होता है।

सूत्र का अवतरणर- तद्धित कित्प्रत्ययान्त शब्द के अन्त स्वर को उदात्त विधान के लिए इस सूत्र की रचना की है।

सूत्र की व्याख्या- संज्ञा-परिभाषा-विधि-नियम अतिदेश अधिकार छः प्रकार के पाणिनीय सूत्रों में यह विधिसूत्र है। इस सूत्र से तद्धित कित्प्रत्ययान्त शब्द के अन्त्य स्वर को उदात्त करने का विधान है। कर्षात्वतो घञोऽन्त उदात्तः इस सूत्र से अन्तः और उदात्तः इन प्रथमा एकवचनान्त दो पदों की यहाँ अनुवृति आ रही है। पूर्वसूत्र से तद्धितस्य इस षष्ठी एकवचनान्त पद की यहाँ अनुवृति आती है। यहाँ पदों का अन्वय है कितः तद्धितस्य अन्तः उदात्तः इति। तद्धितस्य इस पद का विशेष्य रूप से प्रत्ययस्य इस पद की यहाँ अनुवृत्ति आती है। उससे यहाँ यह सूत्रार्थ प्राप्त होता है - तद्धित कित्प्रत्ययान्त शब्द का अन्त उदात्त होता है।

उदाहरण- यदाग्नेयः।

टिप्पणियाँ

सूत्र अर्थ का समन्वय- इस उदाहरण में आग्नेयः इस पद में ढक् यह तद्धित प्रत्यय है। वैसे ही अग्नि शब्द की अर्थवदधातुरप्रत्ययः प्रातिपदिकम् इस सूत्र से प्रातिपदिक संज्ञा और उसके बाद ढक्- इस तद्धित प्रत्यय के करने पर अग्नि ढक् इस स्थित्ति में ढक्- प्रत्ययान्त के ककार की हलन्त्यम् इस सूत्र से इत्संज्ञा और तस्य लोपः इस सूत्र से इत्संज्ञक ककार के लोप करने पर अग्नि ढ इस स्थित्ति में ढकार के स्थान में आयनेयीनीयियः फढखछघां प्रत्ययादीनाम् इस सूत्र से एय् यह आदेश होने पर अग्नि एय् अ इस स्थित्ति में ढक्प्रत्यय के कित्त् होने से किति च इस सूत्र से अग्नि शब्द के आदि अकार को वृद्धि करने पर आकार, भसंज्ञक अग्नि इस शब्द के अन्त्य इकार की यस्येति च इस सूत्र से लोप करने पर वर्ण संयोग करने पर आग्नेय इस शब्द स्वरूप के तद्धितान्त होने से कृत्तद्धितसमासाश्च इस सूत्र से उसकी प्रातिपदिक संज्ञा करने पर उसके बाद ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः परश्च इनके अधिकार में वर्तमान स्वौजसमौट्छष्टाभ्याम्भिस्ङेभ्याम्भ्यस्ङसिभ्याम्भ्यस्ङसोसांङ्योस्सुप् इस सूत्रे से खाले कपोत न्याय से इक्कीस स्वादि प्रत्ययों की प्राप्ति में प्रथमा एकवचन की विवक्षा में सु प्रत्यय करने पर अनुनासिक होने से पाणिनि की प्रतिज्ञा से उस उकार की उपदेशेऽजनुनासिकः इत् इस सूत्र से इत्संज्ञा होने पर तस्य लोपः इस सूत्र से इत्संज्ञक उकार का लोप होने पर आग्नेय स् इस स्थित्ति में संयोग करने पर निष्पन्न आग्नेयस् इस शब्द स्वरूप के सुबन्त होने से उस सकार के स्थान में ससजुषोः रुः इससे रु आदेश होता है, और उस रु के उकार की उपदेशेऽजनुनासिक इत् इससे इत्संज्ञा होने पर और लोप करने पर आग्नेयर् इस स्थित्ति में रेफ के उच्चारण से परे वर्ण के अभाव होने से विरामोऽवसानम् इस सूत्र से अवसान संज्ञा होने पर उससे पूर्व रेफ के स्थान में खरवसानयोर्विसर्जनीयः इस सूत्र से रेफ के स्थान में विसर्ग करने पर आग्नेयः इस सुबन्त रूप की प्राप्ति होती है।

12.6 तिसृभ्यो जसः (६.१.१६६)

सूत्र का अर्थ- तिसृ शब्द से परे जस् को अन्तोदात्त होता है।

सूत्र का अवतरण- तिसृ शब्द से परे जस् के अन्त्य स्वर को उदात्त विधान के लिए इस सूत्र की रचना की है।

सूत्र की व्याख्या- छः प्रकार के पाणिनीय सूत्रों में यह विधि सूत्र है। इससे उदात्त स्वर का विधान है। यहाँ दो पद हैं। तिसृभ्यः यह पञ्चमी बहुवचनान्त पद है, जसः यह षष्ठी एकवचनान्त पद है। कर्षात्वतो घञोऽन्त उदात्तः इस सूत्र से अन्तः, उदात्तः प्रथमा एकवचनान्त दो पदों की यहाँ अनुवृति आ रही है। तिसृभ्य यहाँ पर पञ्चमी विधान से तस्मादित्युत्तस्य इस परिभाषा से यहाँ परस्य यह पद उपस्थित होता है। यहाँ पदों का अन्वय है - तिसृभ्यः परस्य जसः अन्तः उदात्तः स्यात् इति। तिसृ शब्द नित्य बहुवचनान्त है। इस प्रकार यहाँ सूत्र का अर्थ है - तिसृ शब्द से परे जस का अन्त स्वर उदात्त हो।

उदाहरण- तिस्रो द्यावः सवितुः।

सूत्र अर्थ का समन्वय- तिसृ शब्द की अर्थवदधातुरप्रत्ययः प्रातिपदिकम् इस सूत्र से प्रातिपदिक संज्ञा होने पर, उसके बाद 'ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः परश्च' इनके अधिकार में वर्तमान

स्वौजसमौट्छष्टाभ्याम्भिस्ङेभ्याम्भ्यस्ङसिभ्याम्भ्यस्ङसोसांङ्योस्सुप् इस सूत्र से खल कपोत न्याय से इक्कीस स्वादि प्रत्ययों की प्राप्ति में प्रथमा बहुवचन की विवक्षा में जस् प्रत्यय करने पर जस् प्रत्यय के आदि जकार की चुटू इस सूत्र से इत् संज्ञा करने पर तस्य लोपः इस सूत्र से उस इत् संज्ञक जकार के लोप होने पर तिसृ अस् इस स्थित्ति में अचि र ऋतः इस सूत्र से अच् परक होने से तिसृ शब्द के ऋकार के स्थान में रेफ आदेश होने पर तिसृस् इस स्थित्ति में उस शब्द के सुबन्त होने से उस सकार के स्थान में ससजुषोः रुः इससे सकार के स्थान में रु आदेश होने पर और रु के उकार की उपदेशेऽजनुनासिक इत् इससे इत् संज्ञा करने पर और लोप करने पर तिस्रर् इस स्थित्ति में रेफ उच्चारण से परे वर्ण अभाव होने पर विरामोऽवसानम् इस सूत्र से अवसान संज्ञा करने पर उसके परे होने पर पूर्व रेफ के स्थान में खरवसानयोर्विसर्जनीयः इस सूत्र से रेफ के स्थान में विसर्ग करने पर तिस्रः यह सुबन्त रूप सिद्ध होता है। इसलिए ही तिसृभ्यः यहाँ पर प्रकृत सूत्र से अन्तिम अकार को उदात्त करने का नियम किया है।

पाठगत प्रश्न 12.1

1. अग्नि शब्द से नि प्रत्यय का विधान किससे होता है?
2. आद्युदात्तश्च इस सूत्र से किसका नियम किया गया है?
3. अग्नि शब्द में नकार से परे इकार उदात्त होगा अथवा अनुदात्त?
4. अग्निः यहाँ पर क्या धातु है?
5. सुप् प्रत्यय के और पित् प्रत्यय को अनुदात्त विधान किस सूत्र से होता है?
6. चितः अन्त उदात्त किस सूत्र से होता है?
7. तद्धित यह किस प्रकार का सूत्र है?
8. कित तद्धित का अन्त उदात्त किस सूत्र से होता?
9. तिसृ शब्द के जस का अन्त उदात्त किससे होता है?

12.7 सावेकाचस्तृतीयादिर्विभक्तिः (६.१.१८६)

सूत्र का अर्थ- सु के परे रहते जो एक अच् वाला शब्द, उससे परे जो तृतीय विभक्ति से लेकर आगे की विभक्तियाँ, उनको उदात्त हो।

सूत्र का अवतरण- सु के परे होने पर उससे पूर्व एक अच वाले शब्द से परे तृतीया आदि विभक्ति में उदात्त विधान के लिए इस सूत्र की रचना की है।

सूत्र की व्याख्या- छः प्रकार के पाणिनीय सूत्रों में यह विधि सूत्र है। इससे उदात्त स्वर का नियम करते हैं। यहाँ चार पद हैं। सौ एकाचः तृतीयादिः विभक्तिः ये सूत्र में आये पदच्छेद है। यद्यपि

टिप्पणियाँ

सु यह सप्तमी बहुवचन में सुषु इसका ही रूप है, फिर भी व्याख्यान से सौ यह पद यहाँ सप्तमी बहुवचनान्त का बोध कराती है। एकाच: यह पञ्चमी एकवचनान्त पद है, तृतीयादि:, और विभक्ति: ये दोनों पद यहाँ प्रथमा एकवचनान्त है। कर्षात्वतो घञोऽन्त उदात्त: इस सूत्र से उदात्त: इस प्रथमा एकवचनान्त पद की यहाँ अनुवृति आ रही है। सौ यहाँ पर सप्तमी विधान होने से तस्मिन्निति निर्दिष्टे पूर्वस्य इस परिभाषा से यहाँ सौ इस व्यवधान रहित पूर्व का यह अर्थ प्राप्त होता है। एकाच: इस पद के विशेष्य रूप से शब्दस्य इस षष्ठी एकवचनान्त पद को यहाँ जोड़ा जाता है। प्रकृत सूत्र से विहित उदात्त धर्म से तृतीया आदि विभक्ति में अच् को होता है। उससे यहाँ पदों का अन्वय होता है - सौ परे सति पूर्वस्मात् एकाच: शब्दात् परस्य तृतीयादिविभक्ते: स्वर: उदात्त: स्यात् इति।

उदाहरण- वाचा विरूप:।

सूत्र अर्थ का समन्वय- वाचा विरूप: इस उदारहरण में विरूप: यह सु प्रत्ययान्त पद है। अत: उस प्रकार के सु परक होने से पूर्व एक अच् वाले वाच्- शब्द से परे टा रूप तृतीया विभक्ति में स्वर आकार का प्रकृत सूत्र से उदात्त करने का विधान है।

12.8 अन्तोदात्तादुत्तरपदादन्यतरस्यामनित्यसमासे (६.१.१६९)

सूत्र का अर्थ- नित्य अधिकार के हुए समास से अन्यत्र जो अनित्य समास, उसमे जो अन्तोदात्त एकाच् उत्तर पद उससे उत्तर तृतीया आदि विभक्ति को विकल्प से उदात्त हो।

सूत्र का अवतरण- अनित्य समास में अन्तोदात्त से उत्तर पद के परे तृतीया आदि विभक्ति में उदात्त विधान के लिए इस सूत्र की रचना की है।

सूत्र की व्याख्या- संज्ञा- परिभाषा- विधि- नियम अतिदेश अधिकार छ: प्रकार के पाणिनीय सूत्रों में यह विधिसूत्र है। इससे उदात्त स्वर का विधान है। इस सूत्र में चार पद हैं। अन्तोदात्तात् उत्तरपदात् अन्यतरस्याम् अनित्यसमासे ये सूत्र में आये पदच्छेद है। अन्तोदात्तात्, और उत्तरपदात् ये दो पद पञ्चमी एकवचनान्त है, अन्यतरस्याम् यह सप्तमी बहुवचनान्त पद है, अनित्यसमासे यह सप्तमी एकवचनान्त पद है। सावेकाचस्तृतीयादिर्विभक्ति: इस सूत्र से यहाँ एकाच: इस पञ्चमी एकवचनान्त पद की, तृतीयादि: और विभक्ति: प्रथमा एकवचनान्त दो पदों की यहाँ अनुवृति आ रही है। कर्षात्वतो घञोऽन्त उदात्त: इस सूत्र से उदात्त: इस प्रथमा एकवचनान्त पद की यहाँ अनुवृति आ रही है। एकाच: यह अनुवृति पद यहाँ उत्तरपदात् इसका विशेषण है, अन्तोदात्तात् यह भी उत्तरपदात् इसका विशेषण है। इस प्रकार यहाँ पदों का अन्वय होता है - अनित्यसमासे अन्तोदात्तात् एकाच: उत्तरपदात् तृतीयादि: विभक्ति: उदात्त: अन्यतरस्याम् इति। यहाँ विधीयमान उदात्त धर्म का तृतीया आदि विभक्ति के परे स्वर को होता है। एकाच: इस पद की अनुवृति होने से वर्तमान पद के विशेष्य रूप से शब्दस्य इस षष्ठी एवचनान्त पद का यहाँ ग्रहण है। उससे यह सूत्र का अर्थ यहाँ प्राप्त होता है - अनित्य समास में अन्तोदात्त उत्तरपद से एकाच शब्द से परे तृतीया आदि विभक्ति में उदात्त हो। यहाँ अन्यतरस्याम् इस कथन से प्रकृत सूत्र से विहित कार्य विकल्प से होता है।

उदाहरण- परमवाचा।

सूत्र अर्थ का समन्वय– परमा च असौ वाक् चेति इति विग्रह करने पर कर्मधारय समास में निष्पन्न परमावाच् इस शब्द का समास होने से कृत्तद्धितसमासाश्च इस सूत्र से प्रातिपदिक संज्ञा होने पर, वहाँ स्वौजसमौट्छष्टाभ्याम्भिस्ङेभ्याम्भ्यस्ङसिभ्याम्भ्यस्ङसोसांङ्योस्सुप् इस सूत्र से खल कपोत न्याय से इक्कीस स्वादि प्रत्ययों की प्राप्ति में तृतीया एकवचन की विवक्षा में टा प्रत्यय करने पर टा प्रत्यय के आदि टकार की चुटू इस सूत्र से इत् संज्ञा करने पर तस्य लोपः इस सूत्र से उस इत् संज्ञक टकार के लोप होने पर सभी का संयोग करने पर परमवाचा यह रूप सिद्ध होता है। यहाँ परमा इस पूर्व पद को, और वाक् इस उत्तर पद को। पूर्वपद परमा यह अन्तोदात्त है। अतः उससे परे का वाच्– शब्द के एकाच्–होने से उसके परे तृतीया विभक्ति में आकार का प्रकृत सूत्र से उदात्त होता है।

12.9 ऊडिदम्पदाद्यपुप्पुभ्रैद्युभ्यः (६.१.१७६)

सूत्र का अर्थ– इन शब्दों से उत्तर असर्वनाम स्थान विभक्ति उदात्त होती है।

सूत्र का अवतरण– ऊठ्, इदम्, पदादी, अप्, पुम्, रै, तथा दिव शब्दों से उत्तर असर्वनाम स्थान विभक्ति उदात्त विधान के लिए इस सूत्र की रचना की है।

सूत्र की व्याख्या– संज्ञा– परिभाषा– विधि– नियम अतिदेश अधिकार छः प्रकार के पाणिनीय सूत्रों में यह विधिसूत्र है। इससे उदात्त स्वर का विधान है। इस सूत्र में एक ही समस्त पद है। वहाँ समस्त पद में समास इस प्रकार है – पद् आदिः येषां ते पदादयः यहाँ बहुव्रीहि समास है, ऊट् च इदं च पदादयश्च अप् च पुम् च रै च दिव् च इस विग्रह में इतरेतर द्वन्द्व समास है, ऊडिदम्पदाद्यपुप्पुभ्रैदिवः यह रूप बनता है, इसका ही पञ्चमीं विभक्ति में 'ऊडिदम्पदाद्यपुप्पुभ्रैद्युभ्यः' है। अञ्चेश्छन्दस्यसर्वनामस्थानम् इस सूत्र से यहाँ असर्वनामस्थानम् इस प्रथमा एकवचनान्त पद की यहाँ अनुवृति आ रही है। सावेकाचस्तृतीयादिर्विभक्तिः इस सूत्र से यहाँ विभक्तिः इस प्रथमा एकवचनान्त पद की यहाँ अनुवृति आ रही है। कर्षात्वतो घञोऽन्त उदात्तः इस सूत्र से उदात्तः इस प्रथमा एकवचनान्त पद की यहाँ अनुवृति आ रही है। और असर्वनाम स्थानम् यह संज्ञा बोधक पद है, सुडनपुंसकस्य इस सूत्र से सु, औ, जस्, अम्, औट् इनकी सर्वनामस्थान संज्ञा होती है, उनसे भिन्न प्रत्यय असर्वनामस्थान कहलाते हैं। उन अनुवृति पदों से यहाँ लिङ्ग के व्यत्ययसे असर्वनामस्थान यह रूप प्राप्त होता है। यहाँ पदों का अन्वय इस प्रकार है – ऊडिदम्पदाद्यपुप्पुभ्रैद्युभ्यः असर्वनामस्थाना विभक्तिः उदात्ता इति। इस प्रकार यहाँ यह सूत्र का अर्थ होता है – ऊडिदम्पदाद्यपुप्पुभ्रैद्युभ्य से परे असर्वनामस्थान विभक्ति को उदात्त होता है।

उदाहरण– अक्षद्युवे, पद्भ्यां भूमिः इत्यादीनि अत्र उदारहणानि।

सूत्र अर्थ का समन्वय– पद्भ्यां भूमिः इस उदाहरण में पद्–शब्द की अर्थवदधातुरप्रत्ययः प्रादिपदिकम् इस सूत्र से प्रातिपदिक संज्ञा होने पर उससे स्वौजसमौट्छष्टाभ्याम्भिस्ङेभ्याम्भ्यस्ङसि – भ्याम्भ्यस्ङसोसांङ्योस्सुप् इस सूत्र से इक्कीस स्वादि प्रत्ययों की प्राप्ति में तृतीया द्विवचन की विवक्षा में भ्याम्– प्रत्यय करने पर पद् भ्याम् इस स्थित्ति में उन सभी का संयोग करने पर पद्भ्याम्

टिप्पणियाँ

यह रूप सिद्ध होता है। यहाँ पद यह शब्द पदादिगण में पढ़े हुए होने से और उसके परे भ्याम् इसकी सर्वनामस्थान संज्ञा के अभाव से प्रकृत सूत्र से उस पद्भ्याम् इस पद के अन्त स्वर आकार को उदात्त होता है।

इसी प्रकार अक्षद्युवे इत्यादि में भी समान रूप से प्रक्रिया कार्य समझना चाहिए।

12.10 अष्टनो दीर्घात् (६.१.१७२)

सूत्र का अर्थ– शस आदि विभक्ति उदात्त होती है।

सूत्र का अवतरण– दीर्घ अन्त वाला जो अष्टन्–शब्द उससे उत्तर शस आदि असर्वनामस्थान संज्ञक के उदात्त विधान के लिए इस सूत्र की रचना की है।

सूत्र की व्याख्या– छः प्रकार के पाणिनीय सूत्रों में यह विधिसूत्र है। इससे उदात्त स्वर का विधान है। यहाँ दो पद है – अष्टनः और दीर्घात्। वहाँ अष्टनः, और दीर्घात् दोनों पद पञ्चमी एकवचनान्त है। कर्षात्वतो घञोऽन्त उदात्तः इस सूत्र से उदात्तः इस प्रथमा एकवचनान्त पद की यहाँ अनुवृति आती है। पूर्व सूत्र से सावेकाचस्तृतीयादिर्विभक्तिः इससे यहाँ विभक्तिः इस प्रथमा एकवचनान्त पद की यहाँ अनुवृति आती है। अञ्चेश्छन्दस्यसर्वनामस्थानम् इस सूत्र से असर्वनामस्थानम् इस प्रथमा एकवचनान्त संज्ञा बोधक पद की यहाँ अनुवृत्ति आ रही है। और लिङ्ग का व्यत्यय होने पर असर्वनामस्थाना यह रूप प्राप्त होता है। यहाँ पदों का अन्वय इस प्रकार होता है – दीर्घात् अष्टनः असर्वनामस्थानविशिष्टा विभक्तिः उदात्तः इति। यहाँ दीर्घात् यह पद अष्टनः इसका विशेषण है, तदन्त विधि से यहाँ दीर्घान्त अष्टन् से यह अर्थ प्राप्त होता है। उससे यह अर्थ यहाँ प्राप्त है – दीर्घान्त अष्टन्–शब्द से परे शस आदि असर्वनामस्थान विभक्ति उदात्त हो।

उदाहरण– अष्टाभिर्दशभिः।

सूत्र अर्थ का समन्वय– अष्टन्–शब्द की अर्थवदधातुरप्रत्ययः प्रातिपदिकम् इस सूत्र से प्रातिपदिक संज्ञा होने पर ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः परश्च इनके अधिकार में वर्तमान स्वौजसमौट्छष्टाभ्याम्भिस्ङेभ्याम्भ्यस्ङसिभ्याम्भ्यस्ङसोसांङ्योस्सुप् इस सूत्र से इक्कीस स्वादि प्रत्ययों की प्राप्ति में तृतीया बहुवचन की विवक्षा में भिस होने पर अष्टन् भिस् इस स्थिति में न लोपः प्रातिपदिकान्तस्य इस सूत्र से अष्टन्–शब्द के नकार का लोप होने पर अष्ट भिस् इस स्थित्ति में सभी का संयोग करने पर निष्पन्न अष्टभिस् इस शब्द स्वरूप के सुबन्त होने से तदन्त सकार के स्थान में ससजुषोः रुः इससे रु आदेश होने पर रु के उकार की उपदेशेऽजनुनासिक इत् इससे इत् संज्ञा करने पर और लोप करने पर आत्त्व होने पर अष्टाभिर् इस स्थित्ति में रेफ उच्चारण से परे वर्ण के अभाव होने पर विरामोऽवसानम् इस सूत्र से अवसान संज्ञा होने पर उसके परे होने पर पूर्व रेफ के स्थान में खरवसानयोर्विसर्जनीयः इस सूत्र से रेफ के स्थान में विसर्ग होने पर अष्टाभिः यह सुबन्त रूप सिद्ध होता है। प्रकृत सूत्र से अष्टाभिः यहाँ पर भकार से उत्तर अच् इकार को उदात होता है।

12.11 शतुरनुमो नद्यजादी (६.१.१७३)

सूत्र का अर्थ- नुम् रहित जो अन्तोदात शतृ प्रत्ययान्त शब्द तदन्त से परे नदी संज्ञक प्रत्यय, तथा अजादि शस आदि विभक्ति को उदात्त होता है।

सूत्र का अवतरण- जिस शतृ प्रत्यय को नुम आगम नहीं होता है, तदन्त अन्तोदात्त से परे जो नदी प्रत्यय और अजादि शस आदि विभक्ति उसको उदात्त विधान के लिए इस सूत्र की रचना की।

सूत्र की व्याख्या- छः प्रकार के सूत्रों में यह विधिसूत्र है। इस सूत्र में तीन पद है। शतुः अनुमः नद्यजादी ये सूत्र में आये पदच्छेद हैं। शतुः और अनुमः ये पञ्चम्यन्त पद है। नद्यजादी यह प्रथमा द्विवचनान्त पद है। नदी च अजादिश्च यहाँ कर्मधारय समास है। कर्षात्वतो घञोऽन्त उदात्तः इस सूत्र से उदात्तः प्रथमा एकवचनान्त पद की यहाँ अनुवृति आती है। पूर्व सूत्र से सावेकाचस्तृतीयादि र्विभक्तिः इससे यहाँ विभक्तिः इस प्रथमा एकवचनान्त पद की यहाँ अनुवृति है। अञ्चेश्छन्दस्यसर्व नामस्थानम् इस सूत्र से असर्वनामस्थानम् इस प्रथमा एकवचनान्त संज्ञा बोधक पद की यहाँ अनुवृति है। उसका लिङ्ग व्यत्यय होने से असर्वनामस्थान यह रूप प्राप्त होता है। यहाँ पदों का अन्वय इस प्रकार है - अनुमः शतुः अन्तोदात्तात् परा नदी अजादिः असर्वनामस्थाना विभक्तिः उदात्ता इति। और सूत्र का अर्थ है - नुम् आगम रहित शतृ प्रत्ययान्त अन्तोदात्त से परे सर्वनाम स्थान संज्ञक से भिन्न विभक्ति अवयव स्वरों का और नदी संज्ञक ङीप्-ङीष्-ङीन्-प्रत्ययों के ईकार को उदात्त होता है।

उदाहरण- अच्छा रर्वं प्रथमा जाघ्नती।

सूत्र अर्थ का समन्वय- जानती यहाँ पर जानत् यह शतृ प्रत्ययान्त का रूप है। और ऋन्नेभ्यो ङीप् इस सूत्र से ङीप्रत्यय करने पर जानत् ङीप् इस स्थित्ति में ङीप्रत्यय के आदि ङकार की लशक्वतद्धिते इस सूत्र से इत् संज्ञा करने पर और तस्य लोपः इस सूत्र से उसके लोप होने पर जानत् ई इस स्थित्ति में सभी का संयोग करने पर निष्पन्न जानती इस शब्द स्वरूप का ङीप्रत्ययान्त होने से और सु विभक्ति कार्य करने पर जानती यह रूप बनता है। यहाँ जानत् यह शतृप्रत्ययान्त का रूप है, और वहाँ शतृ प्रत्यय को नुम् आगम नहीं होता है। अतः प्रकृत सूत्र से नुम् रहित शतृ के अन्तोदात्त से परे नदी संज्ञक ङीप्रत्यय के ईकार को उदात्त होता है।

12.12 उदात्तयणो हल्पूर्वात् (६.१.१७४)

सूत्र का अर्थ- हल् पूर्व में है जिससे, ऐसा जो उदात्त के स्थान में यण् उससे परे नदी संज्ञक प्रत्यय और शस आदि विभक्ति को उदात्त होता है।

सूत्र का अवतरण- उदात्त स्वर के स्थान में विहित जो यण आदेश उससे पूर्व नदी संज्ञक और शस आदि विभक्ति को उदात्त विधान के लिए इस सूत्र की रचना की।

टिप्पणियाँ

सूत्र की व्याख्या- संज्ञा-परिभाषा-विधि-नियम-अतिदेश-अधिकार छः प्रकार के पाणिनीय सूत्रों में यह विधिसूत्र है। इससे उदात्त स्वर का विधान करते हैं। इसमें दो पद हैं। उदात्तयणः यह पञ्चम्यन्त पद है, हल्पूर्वात् यह भी पञ्चम्यन्त पद है। उदात्त स्थान में यण् उदात्तयण् यहाँ मध्य पद के लोप होने पर कर्मधारय समास है, उस उदात्तयण का। हल् पूर्व में है जिसके वह हल्पूर्व यहाँ बहुव्रीहि समास है, उस हल्पूर्व से। शतुरनुमो नद्यजादी इस सूत्र से नद्यजादी इस प्रथमान्त पद की यहाँ अनुवृति आ रही है। कर्षात्वतो घञोऽन्त उदात्तः इस सूत्र से उदात्तः इस प्रथमा एकवचनान्त पद की यहाँ अनुवृति आ रही है, और उसका लिङ्ग व्यत्यय होने से उदात्त होता है। पूर्व सावेकाचस्तृतीयादिर्विभक्तिः इस सूत्र से यहाँ विभक्तिः इस प्रथमा एकवचनान्त पद की अनुवृति है। अञ्चेश्छन्दस्य सर्वनामस्थानम् इस सूत्र से असर्वनामस्थानम् इस प्रथमा एकवचनान्त संज्ञा बोधक पद की अनुवृति है। असर्वनामस्थान विभक्तिः इस पद का विशेषण है, अत लिङ्ग के व्यत्यय होने से असर्वनामस्थाना यह रूप प्राप्त होता है। असर्वनामस्थानम् यह संज्ञा बोधक पद है, सुडनपुंसकस्य इस सूत्र से च सु, औ, जस्, अम्, औट् इनकी सर्वनामस्थान संज्ञा होती है, उनसे भिन्न प्रत्यय असर्वनामस्थान कहलाते हैं, शस आदि विभक्ति असर्वनामस्थान कहलाते है। यहाँ पदों का अन्वय इस प्रकार है - हल्पूर्वात् उदात्तयणः नदी अजादिः असर्वनामस्थाना विभक्तिः उदात्ताः इति। और उससे यहाँ सूत्र का यह अर्थ प्राप्त होता है, हल् परक उदात्त स्थान में विहित जो यण् उससे परे सर्वनामस्थान संज्ञक विभक्ति के अवयव स्वरों की और नदी संज्ञक ङीप्-ङीष्-ङीन्-प्रत्ययों के ईकार को उदात्त होता है।

उदाहरण- चोदयित्री सूनृतानाम्।

सूत्र अर्थ का समन्वय- चोदयित्री यहाँ पर चोदि- धातु से तृच्प्रत्यय करने पर चोदि तृ इस स्थित्ति में और तृच्प्रत्यय को इट् आगम होने पर चोदि इतृ इस स्थित्ति में चोदि-धातु के इकार को गुण एकार करने पर चोदे इतृ इस स्थित्ति में यथासंख्यमनुदेशः समानाम् इस परिभाषा से एचोऽयवायावः इस सूत्र से एकार के स्थान में अय्-इत्यादेश होने पर चोदयितृ इस स्थित्ति में उस तृच्प्रत्ययान्त चोदयितृ शब्द स्वरूप के कृदन्त होने से कृत्तद्धितसमासाश्च इस सूत्र से प्रातिपदिक संज्ञा करने पर ऋन्नेभ्यो ङीप् इस सूत्र से ङीप्प्रत्यय करने पर चोदयितृ ङीप् इस स्थित्ति में ङीप्प्रत्यय के आदि ङकार की लशक्वतद्धिते इस सूत्र से इत्संज्ञा करने पर तस्य लोपः इस सूत्र से उसका लोप होने पर चोदयितृ ई इस स्थित्ति में ऋकार के स्थान में रेफ आदेश होने पर निष्पन्न चोदयित्री इस शब्द स्वरूप के ङीप्प्रत्ययान्त होने से वहाँ ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च इनके अधिकार में वर्तमान स्वौजसमौट्छष्टाभ्याम्भिस्ङेभ्याम्भ्यस्ङसिभ्याम्भ्यस्ङसोसांङ्योस्सुप् इस सूत्र से इक्कीस स्वादि प्रत्ययों की प्राप्ति में प्रथमा एकवचन की विवक्षा में सु प्रत्यय करने पर अनुनासिक होने से पाणिनि की प्रतिज्ञा से उकार की उपदेशेऽजनुनासिकः इत् इस सूत्र से इत्संज्ञा करने पर तस्य लोपः इस सूत्र से इत्संज्ञक उकार के लोप होने पर चोदयित्री स् इस स्थित्ति में संयोग करने पर चोदयित्री स् इस स्थित्ति में हल्ङ्याब्भ्यो दीर्घात् सुतिस्यपृक्तं हल् इस सूत्र से ङ्यन्त से परे सु प्रत्यय के सकार का लोप होने पर चोदयित्री यह रूप सिद्ध होता है। यहाँ चोदयित्री इसमें चोदयितृ इस अवस्था में उदात्त ऋकार के स्थान में यण् रेफ का विधान है, और उस रेफ से हल्पूर्व है। अतः उससे परे नदीसंज्ञक ङीप्प्रत्यय ईकार को प्रकृत सूत्र से उदात्त होता है।

12.13 ह्रस्वनुड्भ्यां मतुप् (६.१.१७६)

सूत्र का अर्थ- अन्तोदात ह्रस्वान्त तथा नुट् से उत्तर मतुप को उदात होता है।

सूत्र का अवतरण- ह्रस्वान्त अन्तोदात्त से परे और नुट् से परे मतुप को उदात्त विधान के लिए इस सूत्र की रचना की है।

सूत्र की व्याख्या- छः प्रकार पाणिनीय सूत्रों में यह विधिसूत्र है। इससे उदात्त स्वर का विधान है। दो पद वाले इस सूत्र में ह्रस्वनुड्भ्याम् यह पञ्चमीं द्विवचनान्त पद है, और मतुप् यह प्रथमा एकवचनान्त पद है। कर्षात्वतो घञोऽन्त उदात्तः इस सूत्र से उदात्तः प्रथमा एकवचनान्त पद की यहाँ अनुवृति है। अन्तोदात्तादुत्तरपदादन्यतरस्यामनित्यसमासे इस सूत्र से यहाँ अन्तोदात्तात् इस पञ्चमी एकवचनान्त पद की यहाँ अनुवृति है। यहाँ पदों का अन्वय है - ह्रस्वनुड्भ्याम् अन्तोदात्तात् मतुप् उदात्तः इति। यहाँ अन्तोदात्तात् यह पदञ्चम्यन्त पद नुट् इसका विशेषण है। उस के द्वारा तदन्तविधि से और अन्तोदात्त नुट्-प्रत्ययान्त से यह अर्थ होता है। यह सूत्र का अर्थ है - ह्रस्वान्त अन्तोदात्त से और नुट् प्रत्ययान्त से परे मतुप् को उदात्त होता है।

उदाहरण- अक्षण्वन्तः कर्णवन्तः सखायः।

सूत्र अर्थ का समन्वय- अक्षण्वन्तः यहाँ पर अन्तोदात्त नुट् से मतुप्-प्रत्यय किया गया है। अतः अन्तोदात्त नुडन्त से परे मतुप् के अकार को प्रकृत सूत्र से उदात्त का विधान किया है।

12.14 ङ्याश्छन्दसि बहुलम् (६.१.१७८)

सूत्र का अर्थ- ङ्यन्त से उत्तर बहुल करके नाम को उदात्त होता है।

सूत्र का अवतरण- छन्द में ङ्यन्त से परे नाम को विकल्प से उदात्त विधान के लिए इस सूत्र की रचना की है।

सूत्र की व्याख्या- छः प्रकार के पाणिनीय सूत्रों में यह विधिसूत्र है। इससे उदात्त स्वर का विधान है। ङ्याः छन्दसि बहुलम् ये सूत्र में आये पदच्छेद है। तीन पद वाले इस सूत्र में ङ्याः यह पञ्चमी एकवचनान्त पद है, छन्दसि यह सप्तमी एकवचनान्त पद है, बहुलम् यह प्रथमा एकवचनान्त पद है। नामन्यतरस्याम् इस सूत्र से यहाँ नाम् इस प्रथमा एकवचनान्त पद की, कर्षात्वतो घञोऽन्त उदात्तः इस सूत्र से उदात्तः इस प्रथमा एकवचनान्त पद की, पूर्वसूत्र से सावेकाचस्तृतीयादिर्विभक्तिः इससे यहाँ विभक्तिः इस प्रथमा एकवचनान्त पद की अनुवृति है। यहाँ यह पदों का अन्वय होता है - ङ्याः छन्दसि बहुलं नाम् उदात्तः इति। यहाँ नाम् यह नुड आगम सहित आम्-विभक्ति का रूप है। उसका यहाँ षष्ठी एकवचनान्त का व्यत्यय है। यहाँ यह सूत्र का अर्थ होता है - छन्द में ङ्यन्त से परे नाम को उदात्त होता है।

उदाहरण- देवघ्सेनानामभिभञ्जतीनूम्।

सूत्र अर्थ का समन्वय- अभिभञ्जतीनाम् यहाँ पर अभिभञ्जती यह ङीप्प्रत्ययान्त पद है। अतः अभिभञ्जती यह ङ्यन्त पद है। उसको प्रकृत सूत्र से ङ्यन्त अभिभञ्जती इससे षष्ठी बहुवचन की विवक्षा में विहित नुड् आगम सहित आम् प्रत्यय का आकार को उदात्त होता है।

12.15 न गोश्वन्सावर्णराडङ्क्रुङ्कृद्भ्यः (६.१.१८२)

सूत्र का अर्थ- इनको जो कुछ भी ऊपर स्वर विधान कहा है, वह नहीं होता है।

सूत्र का अवतरण- छन्दस में गो, श्वन्- इत्यादि के परे हल आदि विभक्ति के उदात्त निषेध के लिए इस सूत्र की रचना की है।

सूत्र की व्याख्या- छः प्रकार के पाणिनीय सूत्रों में यह निषेध सूत्र है। इससे उदात्त स्वर का निषेध होता है। इस सूत्र में दो पद है - न, और गोश्वन्सावर्णराडङ्क्रुङ्कृद्भ्यः। वहाँ न यह अव्यय पद है, गोश्वन्सावर्णराडङ्क्रुङ्कृद्भ्यः यह समस्त पद पञ्चमी बहुवचनान्त है। गौश्च श्वा च सावर्णश्च राट् च अङ् च क्रुङ् च कृत् च इस विग्रह करने पर इतरेतरद्वन्द्वसमास में गोश्वन्सावर्णराडङ्क्रुङ्कृदः, उसका पञ्चमी विभक्ति में गोश्वन्सावर्णराडङ्क्रुङ्कृद्भ्यः बनता है। यहाँ सावर्णः इसका सु के परे अवर्णः यह अर्थ है। षट्त्रिचतुर्भ्यो हलादिः इस सूत्र से यहाँ हलादिः इस प्रथमा एकवचनान्त पद, कर्षात्वतो घञोऽन्त उदात्तः इस सूत्र से उदात्तः इस प्रथमा एकवचनान्त पद, सावेकाचस्तृतीयादिर्विभ - क्तिः इससे यहाँ विभक्तिः इस प्रथमा एकवचनान्त पद की अनुवृति है। यहाँ यह पदों का अन्वय है - गोश्वन्सावर्णराडङ्क्रुङ्कृद्भ्यः हलादिः विभक्तिः न उदात्तः इति। उससे यह सूत्र का अर्थ प्राप्त होता है - गो श्वन् सावर्ण = सु प्रथमा एकवचन के परे रहते जो अवर्णान्त शब्द राट, अङ् क्रुङ् कृद् से जो भी ऊपर हलादि विभक्ति को कहा गया उदात्त नहीं होता है।

उदाहरण- गोभ्यो गातुम्।

सूत्र अर्थ का समन्वय- गोभ्यः यहाँ पर गो शब्द से भ्यस् यह हलादि विभक्ति है। अत प्रकृत सूत्र से गो शब्द से परे भिस् इस हलादि विभक्ति को उदात्त का निषेध करता है।

12.16 दिवो झल् (६.१.१८३)

सूत्र का अर्थ- दिव् शब्द से परे झलादि विभक्ति को उदात्त नहीं होता है।

सूत्र का अवतरण- दिव्-शब्द से परे झलादि विभक्ति को उदात्त निषेध के लिए इस सूत्र की रचना की है।

सूत्र की व्याख्या- छः प्रकार के पाणिनीय सूत्रों में यह निषेधसूत्र है। इससे उदात्त स्वर का निषेध करते हैं। इस सूत्र में दो ही पद हैं - दिवः और झल्। वहाँ दिवः यह पञ्चमी एकवचनान्त पद है, झल् यह प्रथमा एकवचनान्त पद है। न गोश्वन्सावर्णराडङ्क्रुङ्कृद्भ्यः इस सूत्र से यहाँ न इस अव्यय की, कर्षात्वतो घञोऽन्त उदात्तः इस सूत्र से उदात्तः इस प्रथमा एकवचनान्त पद की, सावेकाचस्तृतीयादिर्विभक्तिः इससे यहाँ विभक्तिः इस प्रथमा एकवचनान्त पद की अनुवृति है। यहाँ पदों का अन्वय- दिवः झल् विभक्तिः न उदात्तः इति। यहाँ झल् यह विभक्ति का विशेषण है। अतः यस्मिन् विधिस्तदादावल्ग्रहणे इस परिभाषा से उस आदि विधि से झलादि विभक्ति यह अर्थ प्राप्त होता है। सूत्र का अर्थ है - दिव्-शब्द से परे झल् आदि विभक्ति को उदात्त नहीं होता है।

उदाहरण- द्युभिरक्तुभिः।

सूत्र अर्थ का समन्वय- दिव्-शब्द की अर्थवदधातुरप्रत्ययः प्रातिपदिकम् इस सूत्र से प्रातिपदिक संज्ञा होने पर प्रत्ययः परश्च ङ्याप्प्रातिपदिकात् इन तीन सूत्रों के अधिकार में वर्तमान स्वौजसमौट्छष्टाभ्याम्भिस्ङेभ्याम्भ्यस्ङसिभ्याम्भ्यस्ङसोसांङ्योस्सुप् इस सूत्र से इक्कीस स्वादि प्रत्ययों की प्राप्ति में तृतीया एकवचन की विवक्षा में भिस्प्रत्यय करने पर दिव् भिस् इस स्थित्ति में दिव्-शब्द के स्थान में अलोऽन्त्यस्य इस परिभाषा से दिव उत् इस सूत्र से उत् यह अन्तादेश अनुबन्ध लोप करने पर दि उ भिस् इस स्थित्ति में इकार के स्थान में इको यणचि इस सूत्र से यण आदेश होने पर यकार करने पर द् य् उ भिस् इस स्थित्ति में भिस के सकार को ससजुषो रूः इस सूत्र से रुत्व होने पर और विसर्ग करने पर द्युभिः यह रूप सिद्ध होता है। द्युभिःयहाँ पर दिव्-शब्द से भिस् यह प्रत्यय है। और वह भिस्प्रत्यय झलादि है। अत प्रकृत सूत्र से दिव्-शब्द के परे झलादि भिस प्रत्यय के उदात्त का निषेध करता है।

12.17 तित्स्वरितम् (६.१.१८५)

सूत्र का अर्थ- तकार इत् संज्ञक है जिसका, उसको स्वरित होता है।

सूत्र का अवतरण- तित् प्रत्यय के स्वर को स्वरित विधान के लिए इस सूत्र की रचना की है।

सूत्र की व्याख्या- छः प्रकार के पाणिनीय सूत्रों में यह विधिसूत्र है। इससे स्वरित स्वर का विधान करते है। इस सूत्र में दो पद है। तित् और स्वरितम्। यहाँ इन दोनों ही पद प्रथमा एकवचनान्त है। तित् इस पद के विशेष्य रूप से प्रत्ययः इस पद को यहाँ जोड़ना चाहिए। इस प्रकार यहाँ पदों का अन्वय है - तित् (प्रत्ययः) स्वरितम्। सूत्र का अर्थ है - तित्प्रत्यय स्वरित हो।

उदाहरण- क्वं नूनम्।

सूत्र अर्थ का समन्वय- किम्-शब्द से किमोऽत् इस सूत्र से अत्प्रत्यय करने पर हलन्त्यम् इस सूत्र से तकार की इत्संज्ञा करने पर तस्य लोपः इस सूत्र से उस इत्संज्ञक तकार के लोप करने पर किम् अ इस स्थित्ति में क्वाति इस सूत्र से किम् इस शब्द के स्थान में क्व आदेश होने पर क्व अत् इस स्थित्ति में अतो गुणो इस सूत्र से क्व इसके अकार का और अत् इसके अकार के स्थान में पररूप एकादेश होने पर अकार में सभी का संयोग करने पर क्व यह रूप सिद्ध होता है। क्व यह तित्प्रत्ययान्त है। अत क्व यहाँ पर प्रकृत सूत्र से अकार को स्वरित स्वर होता है।

12.18 उपोत्तमंरिति (६.१.१९७)

सूत्र का अर्थ- रेफ इत् वाले शब्द के उपोत्तम को उदात्त होता है।

सूत्र का अवतरण- रित्प्रत्ययान्त के उपोत्तम को उदात्त विधान के लिए इस सूत्र की रचना की है।

सूत्र की व्याख्या- छः प्रकार के पाणिनीय सूत्रों में यह विधिसूत्र है। इससे उदात्त स्वर का विधान है। इस सूत्र में दो पद है - उपोत्तमम् और रिति। वहाँ उपोत्तमम् यह अव्यय है, रिति यह सप्तमी

एकवचनान्त पद है। कर्षात्वतो घञोऽन्त उदात्तः इस सूत्र से उदात्तः इस प्रथमा एकवचनान्त पद की यहाँ अनुवृति है। उपोत्तमं नाम दो संख्या से अधिक स्वर विशिष्ट पद के अन्त से पूर्व स्वर को कहते है। यहाँ पदों का अन्वय है - रिति उपोत्तमं उदात्तम् इति। रिति इस पद के विशेष्य रूप से प्रत्ययः इस पद का आक्षेप किया है। यहाँ सूत्र का अर्थ है - रित्प्रत्ययान्त के उपोत्तम को उदात्त हो।

उदाहरण- यदाहवनीये।

सूत्र अर्थ का समन्वय- आहवनीये यहाँ पर आ पूर्वक हु धातु से कृत्यल्युटो बहुलम् इस सूत्र से बाहुल के अधिकरण अर्थ में अनीय- प्रत्यय करने पर अनीय-प्रत्ययान्त के रेफ की हलन्त्यम् इस सूत्र से इत्संज्ञा करने पर और तस्य लोपः इस सूत्र से इत्संज्ञक रकार के लोप होने पर आ हु अनीय इस स्थिति में धातु के उकार को गुण ओकार करने पर आ हो अनीय इस स्थिति में यथासंख्यमनुदेशः समानाम् इस परिभाषा के परिष्कृत होने से एचोऽयवायावः इस सूत्र से ओकार के स्थान में अव् यह आदेश होने पर आहव् अनीय इस स्थिति में संयोग होने पर निष्पन्न आहवनीय इस शब्द स्वरूप के कृदन्त होने से वहाँ ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च इनके अधिकार में वर्तमान स्वौजसमौट्छष्टाभ्याम्भिस्ङेभ्याम्भ्यस्ङसिभ्याम्भ्यस्ङसोसांङ्योस्सुप् इस सूत्र से इक्कीस स्वादि प्रत्ययों की प्राप्ति में सप्तमी एकवचन की विवक्षा में ङि प्रत्यय करने पर ङि प्रत्यय के आदि ङकार की लशक्वतद्धिते इस सूत्र से इत्संज्ञा और तस्य लोपः इस सूत्र से इत्संज्ञक ङकार के लोप होने पर आहवनीय इ इस स्थित्ति में एकः पूर्वपरयोः इस अधिकार में पढ़े हुए आद्गुणः इस सूत्र से उन अकार और इकार के स्थान में गुण होने पर स्थान आन्तर्य से एकार हुआ सभी का संयोग करने पर आहवनीये यह रूप सिद्ध हुआ। प्रकृत उदाहरण में आहवनीये यह अनीयर्-प्रत्ययान्त पद है, और वह अनीयर्-प्रत्यय रिद् होता है। अतः प्रकृत सूत्र से उस आहवनीये इस पद के अन्त्य से पूर्व एकार को उदात्त करने का विधान है।

पाठगत प्रश्न 12.2

1. 'सावेकाचस्तृतीयादिर्विभक्तिः' यह सूत्र क्या विधान करता है?
2. 'अन्तोदात्तादुत्तरपदादन्यतरस्यमनित्यसमासे' इस सूत्र से किसका विधान है?
3. 'ऊडिदम्पदाद्यपुप्पुम्रैद्युभ्यः' इस सूत्र से किसका विधान है?
4. शस आदि विभक्ति को उदात्त होता है किस सूत्र का अर्थ है?
5. नुम् रहित जो अन्तोदात शतृ प्रत्ययान्त शब्द तदन्त से परे नदी संज्ञक प्रत्यय, तथा अजादि शस् आदि विभक्ति को उदात्त होता है किस सूत्र का अर्थ है?
6. चोदयित्री यहाँ पर ईकार को उदात्त किससे होता है?

पाठ का सार

यहाँ आठवें अध्याय के तीसरे और छठें अध्याय के सूत्रों की आलोचना की है। यहाँ तो वैदिक व्याकरण की चर्चा की है। पाणिनि ने लौकिक व्याकरण करने पर स्वर आदि व्यवस्था की है। परन्तु काल क्रम से स्वर व्यवस्था प्राय लुप्त सी हो गई है। परन्तु आज भी वेद में स्वर की व्यवस्था अत्यधिक दिखाई देता है। पूर्व के दो पाठ में धातुस्वर प्रातिपदिकस्वर और फिट्-स्वर की आलोचना की है। प्रकृत पाठ में प्रत्यय स्वरों की चर्चा की गई है। सामान्य रूप से सभी प्रत्ययों का आदि स्वर उदात्त होता है। आद्युदात्तश्च इस सूत्र से प्रत्यय का आदि स्वर उदात्त होता है। परन्तु सामान्य रूप से सुप्प्रत्यय अनुदात्त होते है। अनुदात्तौ सुप्पितौ इस सूत्र से निर्देश किया है। कुछ विशेष प्रत्ययों के आश्रित त्रिसृभ्यो जसः इत्यादि विशेष सूत्र की रचना सूत्र कर्ता ने की है। उदात्त आदि स्वरों के निषेध के लिए भी कुछ सूत्र पाणिनि के द्वारा कहे गए है। जैसे - दिवो झल् इत्यादी सूत्र है। दिव्-शब्द से परे झलादि विभक्ति को उदात्त निषेध के लिए इस सूत्र की रचना की है। इस प्रकार इस पाठ का मुख्य विषय प्रत्यय स्वर है।

पाठांत प्रश्न

1. 'आद्युदात्तश्च' इस सूत्र की व्याख्या कीजिए।
2. 'तद्धितस्य' इस सूत्र की व्याख्या कीजिए।
3. 'परमवाघ्वा' इस रूप को सिद्ध कीजिए।
4. 'चोदयित्री' इस रूप को सूत्र सहित सिद्ध कीजिए।
5. 'यज्ञस्य' इस रूप को सिद्ध कीजिए।
6. 'आहवनीये' इस रूप को सिद्ध कीजिए।
7. 'शतुरनुमो नद्यजादी' इस सूत्र की व्याख्या कीजिए।
8. 'ङ्याश्छन्दसि बहुलम्' इस सूत्र की व्याख्या कीजिए।
9. 'न गोश्वन्सावर्वर्णराडङ्क्रुङ्कृद्भ्यः' इस सूत्र की व्याख्या कीजिए।
10. 'कौञ्जायनाः' इस रूप को सूत्र सहित सिद्ध कीजिए।

पाठगत प्रश्नों के उत्तर

12.1

1. अग्नि शब्द से नि प्रत्यय का विधान 'अङ्गेर्नलोपश्च' इस सूत्र से होता है।

टिप्पणियाँ

2. 'आद्युदात्तश्च' इस सूत्र से प्रत्यय को आद्युदात्त होने का विधान है।
3. अग्नि शब्द में नकार से परे इकार उदात्त होता है।
4. अगि धातु।
5. अनुदात्तौ सुप्पितौ इस सूत्र से।
6. चितः इस सूत्र से।
7. तद्धितस्य यह अधिकार सूत्र है।
8 कितः इस सूत्र से।
9. तिसृभ्यो जसः इस सूत्र से।

12.2

1. उदात्त स्वर।
2. उदात्त स्वर।
3. उदात्त स्वर।
4. अष्टनो दीर्घात् इस सूत्र से।
5. शतुरनुमो नद्यजादी इस सूत्र से।
6. उदात्तयणो हल्पूर्वात् इस सूत्र।।

।। बारहवाँ पाठ समाप्त।।

13

समास स्वर

स्वर सहित वेदों का अध्ययन करना चाहिए। तीन स्वर हैं। उदात्त, अनुदात्त और स्वरित। प्रत्येक स्वरों में एक-एक चिह्न है। जैसे अग्निमीळे यहाँ पर अकार अनुदात्त है। अकार के नीचे विद्यमान रेखा अकार के अनुदात्त होने का बोध कराती है। ग्नि यहाँ इकार उदात्त है। उदात्त के लिए किसी भी चिह्न का प्रयोग नहीं किया है। चिह्न विहीन उदात्त होता है। मी यहाँ ईकार स्वरित है। ईकार के ऊपर में विद्यमान रेखा स्वरित का ज्ञान कराती है। इस प्रकार अच् के तीन स्वर सम्भव है। प्रत्येक वर्णों के स्वर प्रत्यय योग से समास करने से इत्यादि हेतु से बदलते हैं। इस प्रकरण में समास स्वर के विषय में जानेगें। अर्थात् समास करने से कहाँ क्या स्वर होता है, उसकी आलोचना करेंगे।

उद्देश्य

इस पाठ को पढ़कर आप सक्षम होंगे :

- समास के अन्त में होनें वाले स्वर को जान पाने में;
- तत्पुरुष समास में पूर्वपद के स्वर विधान कर पाने में;
- कर्मधारय समास में पूर्व पद के स्वर का निर्णय कर पाने में;
- बहुव्रीहि समास में पूर्व पद के स्वर का निश्चय बोध कर पाने में;
- द्विगु समास में किस पद का क्या स्वर होता है इस विषय में जान पाने में;
- प्रकृति स्वर कहाँ कहाँ पढ़े गए इसको जान पाने में;
- सूत्रों के अर्थ निर्णय कर पाने में;
- सूत्रों की व्याख्या कर पाने में।

टिप्पणियाँ

13.1 समासस्य॥ (६.१.२२३)

सूत्र का अर्थ- समास का अन्त उदात्त होता है।

सूत्र की व्याख्या- यह विधिसूत्र है। इस सूत्र से उदात्त स्वर का विधान है। इस सूत्र में एक ही पद है। समासस्य यह षष्ठ्यन्त पद है। ''अन्त्योऽवत्या:'' इस सूत्र से अन्त: इस पद की अनुवृति आती है। उदात्त: इस पद की यहाँ अनुवृति आती है। अत: सूत्र का अर्थ है - समास का अन्त उदात्त होता है। उदात्त आदि तो अच् को ही सम्भव है। अत: अन्तिम अच् उदात्त होता है यह अर्थ है।

उदाहरण- राजपुरुष:

सूत्र अर्थ का समन्वय-राज्ञ: पुरुष: इस विग्रह में ''षष्ठी'' इस सूत्र से षष्ठीतत्पुरुष समास होने पर राजपुरुष: यह रूप होता है। समास होने से प्रकृत सूत्र से राजपुरुष इसका अन्तिम अकार उदात्त होता है।

13.2 तत्पुरुषे तुल्यार्थतृतीयासप्तम्युपमानाव्ययद्वितीयाकृत्याः॥ (६.२.२)

सूत्र का अर्थ- तत्पुरुष समास में तुल्य अर्थवाले, तृतीयान्त, सप्तम्यन्त, उपमानवाची, अव्यय, द्वितीयान्त तथा कृत्यप्रत्ययान्त जो पूर्वपद में स्थित शब्द है, उन्हें प्रकृति स्वर होता है।।

सूत्र की व्याख्या- यह विधिसूत्र है। इस सूत्र से प्रकृति स्वर का विधान है। प्रकृति शब्द का अर्थ स्वाभाविक है। प्रकृति स्वर का नाम स्वाभाविक स्वर है। जिसका वह प्रकृति स्वर। अर्थात् समास से पूर्व पद का जो स्वाभाविक स्वर है, समास से बाद में वह ही स्वर रहता है। इस सूत्र में दो पद हैं। तत्पुरुष यह सप्तम्यन्त पद है। तुल्यार्थतृतीयासप्तम्युपमानाव्यय -द्वितीयाकृत्या: यह प्रथमान्त पद है। 'बहुव्रीहौ प्रकृत्या पूर्वपदम्' इस सूत्र से प्रकृत्या और पूर्वपदम् इन दो पदों की अनुवृति आती है। सूत्र का अर्थ है तत्पुरुष समास में तुल्य अर्थवाले, तृतीयान्त, सप्तम्यन्त, उपमानवाची, अव्यय द्वितीयान्त और कृत्यप्रत्ययान्त पूर्वपद प्रकृति स्वर होता है। प्रकृत्या इसका अर्थ स्वभाव से। अर्थात् तत्पुरुष समास में पूर्वपद यदि तुल्यार्थवाचक, तृतीयान्त, सप्तम्यन्त, उपमानवाचक, अव्यय, अथवा कृत्यप्रत्ययान्त हो तो पूर्वपद को प्रकृति स्वर होता है। पूर्वपद का स्वर परिवर्तन नहीं होता है।

उदाहरण- तुल्यश्वेत:। किरिकाण:। अक्षशौण्ड:। शस्त्रीश्यामा।

सूत्र अर्थ का समन्वय- तुल्यश्वेत:- यहाँ कृत्यतुल्याख्या अजात्या इस सूत्र से कर्मधारय समास हुआ है। यहाँ पूर्वपद को तुल्यार्थवाचक है, किन्तु यतोऽनाव: इस सूत्र से आद्युदात्त है। अत: प्रकृत सूत्र से तुल्यश्वेत: यहाँ समस्त पद का तुल्य यह पद आद्युदात्त है।

किरिकाण:- किरिणा काण: इस विग्रह में तृतीयातत्पुरुष समास में किरिकाण: यह रूप बनता है। यहाँ किरि यह अन्तोदात्त पद है। अत: प्रकृत सूत्र से किरिकाण: यहाँ किरि यह अन्तोदात्त होता है।

अक्षशौण्डः- अक्षेषु शौण्डः इस विग्रह में सप्तमीतत्पुरुष समास करने पर अक्षशौण्डः यह रूप बनता है। अक्ष शब्द अन्तोदात्त है। अतः अक्षशौण्ड यहाँ पर अक्ष शब्द अन्तोदात्त ही रहता है।

शस्त्रीश्यामा- शस्त्री इव श्यामा इस विग्रह करने पर उपमानानि सामान्यवचनैः इस सूत्र से तत्पुरुष समास हुआ। शस्त्री शब्द अन्तोदात्त है। अतः प्रकृत सूत्र से शस्त्रीश्यामा यहाँ पर शस्त्री यह अन्तोदात्त ही रहता है।

अब्राह्मणः- न ब्राह्मणः इस विग्रह में नञ्तत्पुरुष समास में अब्राह्मणः यह रूप होता है। यहाँ पूर्वपद नञ् यह निपात है, निपाताः आद्युदात्ताः इस सूत्र से आद्युदात्त है। अतः प्रकृत सूत्र से अब्राह्मणः यहाँ पूर्वपद आद्युदात्त ही रहता है।

मुहूर्तसुखम्- मुहूर्त सुखम् इस विग्रह में अत्यन्त संयोगे च इस सूत्र से द्वितीयातत्पुरुष समास हुआ। यहाँ पूर्वपद द्वितीयान्त और अन्तोदात्त है। अतः प्रकृत सूत्र से मुहूर्तसुखम् यहाँ पूर्वपद को अन्तोदात्त ही रहता है।

भोज्योष्णम्- भोज्यं च तत् उष्णम् इस विग्रह में कर्मधारय संज्ञक तत्पुरुष समास हुआ। भोज्यम् यह कृत्यप्रत्ययान्त पद और स्वरित है। अतः भोज्योष्णम् इस समस्त पद का भोज्य शब्द स्वरित ही रहता है।

13.3 वा भुवनम्॥ (६.२.२०)

सूत्र का अर्थ- ऐश्वर्यवाची तत्पुरुष समास में पति शब्द उत्तरपद रहते पूर्वपद को विकल्प से प्रकृति स्वर हो जाता है।

सूत्र की व्याख्या- यह विधिसूत्र है। इस सूत्र से प्रकृतिस्वर का नियम किया गया है। इस सूत्र में दो पद है। वा यह अव्ययपद है। भुवनम् यह प्रथमान्त पद है। ''पत्यावैश्वर्ये'' इसकी यहाँ अनुवृति आती है। ''बहुव्रीहौ प्रकृत्या पूर्वपदम्'' इस सूत्र से प्रकृत्या और पूर्वपदम् इन दो पदों की अनुवृति आती है। ''तत्पुरुषे तुल्यार्थतृतीयासप्तम्युपमानाव्ययद्वितीयाकृत्याः'' इस सूत्र से तत्पुरुष इसकी अनुवृति आती है। ऐश्वर्ये इसका तत्पुरुषे इसके साथ अन्वय है। उत्तरपदे इस पद को यहाँ जोड़ा गया है। और उसका पत्ति इस शब्द के साथ अन्वय किया है। अतः सूत्र का अर्थ है - ऐश्वर्यवाची तत्पुरुष समास में पति शब्द के उत्तर पद में होने पर पूर्वपद भुवन शब्द को विकल्प से प्रकृतिस्वर होता है।

उदाहरण- भुवंनपतिः। भुवनपतिः।

सूत्र अर्थ का समन्वय- भुवनपतिः यहाँ भुवनस्य पतिः इस विग्रह में तत्पुरुष समास हुआ है। यहाँ भुवन शब्द पूर्वपद है। और पति शब्द उत्तरपद है। अतः प्रकृत सूत्र से भुवन शब्द को विकल्प से प्रकृति स्वर होता है। उसे प्रकृति स्वर पक्ष में आद्युदात्त होता है।

टिप्पणियाँ

13.4 पूर्वे भूतपूर्वे॥ (६.२.२२)

सूत्र का अर्थ- पूर्व शब्द के उत्तरपद रहते भूतपूर्ववाची तत्पुरुष समास में पूर्वपद को प्रकृति स्वर हो जाता है।

सूत्र की व्याख्या- यह विधिसूत्र है। इस सूत्र से प्रकृतिस्वर का विधान है। इस सूत्र में दो पद विराजमान है। पूर्वे यह सप्तम्यन्त पद है। भूतपूर्वे यह भी सप्तम्यन्त पद है। बहुव्रीहौ प्रकृत्या पूर्वपदम् इस सूत्र से प्रकृत्या और पूर्वपदम् इन दोनों पदों की यहाँ अनुवृति आ रही है। उत्तरपदे इसको यहाँ जोड़ा गया है। और उस उत्तरपद को पूर्वे इस पद के साथ अन्वय किया गया है। अतः सूत्र का अर्थ है - पूर्व शब्द के उत्तरपद रहते भूतपूर्ववाची तत्पुरुष समास में पूर्वपद को प्रकृति स्वर होता है।

उदाहरण- आढ्यपूर्वः।

सूत्र अर्थ का समन्वय- आढ्यः भूतपूर्वः इस विग्रह में आढ्यपूर्वः यह रूप बनता है। यहाँ पूर्व शब्द भूतपूर्व अर्थ में है। पूर्व शब्द उत्तरपद भी है। अतः यहाँ प्रकृत सूत्र से आढ्य इस पूर्वपद को प्रकृति स्वर ही होता है।

पाठगत प्रश्न 13.1

1. समास का अन्त क्या होता है?
2. तुल्य शब्द आद्युदात्त अथवा अन्तोदात्त है?
3. अक्षशौण्डः इसका विग्रह वाक्य क्या है?
4. भौज्योष्णम् यहाँ पूर्वपद को प्रकृति स्वर किस सूत्र से है?
5. वा भुवनम् इस सूत्र का क्या अर्थ है?
6. भुवनपतिः यहाँ पर भुवन शब्द का स्वर क्या है?
7. पूर्वे भूतपूर्वे इस सूत्र से किसका विधान है?

13.5 विस्पष्टादीनि गुणवचनेषु॥ (६.२.२४)

सूत्र का अर्थ- गुण को कहने वाले शब्दों के उत्तरपद रहते विस्पष्टादि पूर्वपद को तत्पुरुष समास में प्रकृतिस्वर होता है।

सूत्र की व्याख्या- यह विधिसूत्र है। इस सूत्र से पूर्वपद को प्रकृति स्वर का विधान है। इस सूत्र में दो पद विराजमान है। विस्पष्टादीनि यह प्रथमान्त पद है। गुणवचनेषु यह सप्तम्यन्त पद है। बहुव्रीहौ

प्रकृत्या पूर्वपदम् इस सूत्र से प्रकृत्या और पूर्वपदम् इन दो पदों की यहाँ अनुवृति आ रही है। उत्तरपदेषु इसका यहाँ अध्याहार किया गया है। अतः सूत्र का अर्थ होता है – गुण को कहने वाले शब्दों के उत्तरपद रहते विस्पष्टादि पूर्वपदों को प्रकृतिस्वर होता है।

उदाहरण– विस्पष्टकटुकम्।

सूत्र अर्थ का समन्वय– विस्पष्टं कटुकम् इस विग्रह में यहाँ समास है। कटुकम् यह गुणवाचक पद है। और वह उत्तरपद है। अतः प्रकृतसूत्र से विस्पष्टम् यहाँ इसका प्रकृतिस्वर होता है। विस्पष्ट शब्द गतिरनन्तरः इस सूत्र से आद्युदात्त है। उससे विस्पष्टकटुकम् यहाँ पर विस्पष्ट शब्द आद्युदात्त ही रहता है।

विशेष– विस्पष्टकटुकम् यहाँ कर्मधारय समास नहीं है। कर्मधारयसमास विशेष्य और विशेषण के मध्य में होता है। यहाँ विस्पष्टम् यह कटुक का प्रवृत्तिनिमित्त कटुकत्व है, उसका विशेषण है, कटुक का नहीं है। अतः यहाँ सामान्य समास ही स्वीकार करना चाहिए।

13.6 कुमारश्च॥ (६.२.२७)

सूत्र का अर्थ– पूर्वपद स्थित कुमार शब्द को भी कर्मधारय समास में प्रकृतिस्वर होता है।

सूत्र की व्याख्या– यह विधिसूत्र है। इस सूत्र से पूर्वपद को प्रकृतिस्वर का विधान है। इस सूत्र में दो पद है। कुमारः यह प्रथमान्त पद है। च यह अव्ययपद है। बहुव्रीहौ प्रकृत्या पूर्वपदम् इस सूत्र से प्रकृत्या और पूर्वपदम् इन दो पदों की अनुवृति है। श्रज्यावमकन्पापवत्सु भावे कर्मधारये इस सूत्र से कर्मधारये इस पद की अनुवृति आती है। अतः सूत्र का अर्थ है कर्मधारय समास में पूर्वपद कुमार शब्द को प्रकृतिस्वर होता है।

उदाहरण– कुमारश्रमणा। कुमारकुलटा। कुमारतापसी।

सूत्र अर्थ का समन्वय– कुमारी च इयं कुलटा इस विग्रह में कर्मधारय समास में कुमारी इसका पुंवद् भाव करने पर कुमार कुलटा यह रूप बनता है। अन्तोदात्त कुमार शब्द यहाँ पूर्वपद है। अतः प्रकृत सूत्र से कुमारश्रमण यहाँ पर कुमार शब्द भी अन्तोदात्त ही रहता है।

13.7 बहवन्यतरस्याम्॥ (६.२.३०)

सूत्र का अर्थ– द्विगु समास में इगन्त आदि उत्तरपद रहते पूर्वपद बहु शब्द को विकल्प करके प्रकृत्तिस्वर होता है।

सूत्र की व्याख्या– यह विधिसूत्र है। इस सूत्र से प्रकृतिस्वर का विधान है। इस सूत्र में दो पद है। बहु यह प्रथमान्त पद है। अन्यतरस्याम् यह अव्ययपद है। इगन्तकालकपालभगालशरावेषु द्विगौ इस सूत्र से इगन्तकालकपालभगालशरावेषु और द्विगौ इन दोनों पदों की यहाँ अनुवृति है। बहुव्रीहौ प्रकृत्या पूर्वपदम् इस सूत्र से प्रकृत्या और पूर्वपदम् इन दो पदों की यहाँ अनुवृति है। उत्तरपदेषु इस पद को यहाँ जोड़ा गया है। अतः सूत्र का अर्थ है द्विगुसमास में इगन्त, काल, कपाल, भगाल,

टिप्पणियाँ

शराव इनके उत्तरपद रहते पूर्वपद बहु शब्द को विकल्प करके प्रकृतिस्वर होता है। यहाँ काल शब्द से कालवाचक शब्दों का ग्रहण होता है।

उदाहरण– बह्वरत्निः। बह्वरत्निः। बहुमास्यः। बहुमास्यः। बहुकपालः। बहुकपालः। बहुभगालः। बहुभगालः। बहुशरावः। बहुशरावः।।

सूत्र अर्थ का समन्वय–

बह्वरत्निः– बहवः अरत्नयः प्रमाणम् अस्य इस विग्रह में तद्धित अर्थ में तद्धितार्थोत्तरपदसमाहारे च इस सूत्र से द्विगुसमास करने पर बह्वरत्निः यह रूप बनता है। यहाँ पूर्वपद बहु शब्द है, और उत्तरपद इगन्त है। अतः प्रकृतसूत्र से यहाँ पूर्वपद बहु शब्द को विकल्प से प्रकृतिस्वर होता है। पक्ष में अनुदात्तस्वर होता है। यहाँ बहु+अरत्निः इस अवस्था में यण आदेश करने पर बह्वरत्निः यह शब्द बनता है। बहु शब्द अन्तोदात्त है। किन्तु यण आदेश होने से प्रकृति स्वर पक्ष में उदात्तस्वरितयोर्यणः स्वरितोऽनुदात्तस्य इस सूत्र से स्वरित स्वर होता है। उससे बह्वरत्निः, बह्वरत्निः ये दो रूप प्राप्त होते हैं।

बहुमास्यः– बहून् मासान् भृतः इस विग्रह में तद्धित अर्थ में द्विगुसमास करने पर और यप् प्रत्यय करने पर बहुमास्यः यह रूप होता है। यहाँ बहु शब्द पूर्वपद है। और उत्तरपद कालवाचक है। अतः प्रकृत सूत्र से यहाँ पूर्वपद बहु शब्द को विकल्प से प्रकृतिस्वर होता है। पक्ष में अनुदात्त स्वर होता है। उसके द्वारा बहुमास्यः, बहुमास्यः ये दो रूप बनते है।

बहुकपालः– बहुषु कपालेषु संस्कृतः इस विग्रह में द्विगुसमास में बहुकपालः यह रूप होता है। यहाँ अन्तोदात्त बहु शब्द पूर्वपद है। और उत्तरपद कपाल शब्द है। अतः प्रकृत सूत्र से यहाँ पूर्वपद बहु शब्द को विकल्प से प्रकृति स्वर होता है। पक्ष में अनुदात्त स्वर होता है। उसके द्वारा बहुकपालः, बहुकपालः ये दो रूप प्राप्त होते है।

बहुभगालः– बहुषु भगालेषु संस्कृतः इस विग्रह में द्विगुसमास करने पर बहुभगालः यह रूप बनता है। यहाँ अन्तोदात्त बहु शब्द पूर्वपद है। और उत्तरपद भगाल शब्द है। अतः प्रकृत सूत्र से यहाँ पूर्वपद बहु शब्द को विकल्प से प्रकृति स्वर होता है। पक्ष में अनुदात्त स्वर होता है। उससे बहुभगालः, बहुभगालः ये दो रूप होते हैं।

बहुशरावः– बहुषु शरावेषु संस्कृतः इस विग्रह में द्विगुसमास करने पर बहुशरावः यह रूप बनता है। यहाँ अन्तोदात्त बहु शब्द पूर्वपद है। और उत्तरपद शराव शब्द है। अतः प्रकृत सूत्र से यहाँ पूर्वपद बहु शब्द को विकल्प से प्रकृति स्वर अन्तोदात्त होता है। पक्ष में अनुदात्त स्वर होता है। उससे बहुभगालः, बहुभगालः ये दो रूप बनते है।

13.8 कार्तकौजपादयश्च।। (६.२.३७)

सूत्र का अर्थ– कार्तकौजपादि जो द्वन्द्व समासवाले शब्द उनके पूर्वपद को भी प्रकृत्ति स्वर होता है।

सूत्र की व्याख्या- यह विधिसूत्र है। इस सूत्र से प्रकृतिस्वर का विधान है। इस सूत्र में दो पद है। कार्तकौजपादयः यह प्रथमान्त पद है। च यह अव्ययपद है। राजन्यबहुवचनद्वन्द्वेऽन्धकवृष्णिषु इस सूत्र से द्वन्द्वे इस पद की यहाँ अनुवृति आती है। बहुव्रीहौ प्रकृत्या पूर्वपदम् इस सूत्र से प्रकृत्या और पूर्वपदम् इन दो पद की यहाँ अनुवृति आती है। अतः सूत्र का अर्थ होता है - कार्तकौजपादि के द्वन्द्व समास में पूर्वपद को प्रकृत्ति स्वर होता है। अर्थात् कार्तकौजपादि शब्दों के मध्य में जो द्वन्द्व समास सिद्ध है, उनमें पूर्वपद को प्रकृति स्वर होता है।

उदाहरण- कार्तकौष्ज्जपौ।

सूत्र अर्थ का समन्वय- कृतस्य अपत्यम् इस अर्थ में कृत शब्द से अण् प्रत्यय करने पर कार्तः यह रूप बनता है। कुजपस्य अपत्यम् इस अर्थ में कुजप शब्द से अण् प्रत्यय करने पर कौजपः यह रूप बनता है। दोनों शब्द अण्प्रत्ययान्त है। अतः अन्तोदात्त है। कार्तश्च कौजपश्च इस विग्रह में द्वन्द्वसमास करने पर कार्तकौजपौ यह रूप है। द्वन्द्वसमास होने से प्रकृत सूत्र से कार्त इस पूर्वपद को अन्तोदात्त होता है।

पाठगत प्रश्न 13.2

1. 'विस्पष्टादीनि गुणवचनेषु' इस सूत्र से किसका विधान है?
2. विस्पष्ट शब्द आद्युदात्त अथवा अन्तोदात्त है?
3. किस समास में पूर्वपद कुमार शब्द को प्रकृति स्वर होता है?
4. 'कुमारश्च' इस सूत्र का एक उदाहरण दीजिए?
5. बहुमास्य यहाँ पर पूर्वपद को प्रकृतिस्वर किस सूत्र से होती है?
6. 'कार्तकौजपादयश्च' यह सूत्र किसका विधान करता है?
7. कार्त इसका क्या अर्थ है?

13.9 चतुर्थी तदर्थे (६.२.४३)

सूत्र का अर्थ- चतुर्थी पूर्वपद को चतुर्थ्यन्तार्थ के उत्तर पद रहते प्रकृति स्वर होता है।

सूत्र की व्याख्या- यह विधिसूत्र है। इस सूत्र से प्रकृतिस्वर का विधान है। इस सूत्र में दो पद हैं। चतुर्थी यह प्रथमान्त पद है। तदर्थे यह सप्तम्यन्त पद है। बहुव्रीहौ प्रकृत्या पूर्वपदम् इस सूत्र से प्रकृत्या और पूर्वपदम् इन दो पदों की यहाँ अनुवृति आ रही है। चतुर्थी यह प्रत्यय का ग्रहण है। प्रत्यय ग्रहण करने से 'तदन्ताः ग्राह्याः' इस न्याय से उसके ग्रहण करने में चतुर्थ्यन्त यह है। अतः सूत्र का अर्थ है, चतुर्थ्यन्त पूर्वपद को चतुर्थ्यन्त उत्तरपद रहते प्रकृत्ति स्वर होता है। तस्मै

टिप्पणियाँ

इदम् यह तदर्थ है। तत् शब्द से यहाँ चतुर्थ्यन्तार्थ कहलाता है। अतः तदर्थ इसका चतुर्थ्यन्तार्थ के लिए यह अर्थ है।

उदाहरण- यूपदारु।

सूत्र अर्थ का समन्वय- यूपाय दारु इस विग्रह में यूपदारु यह रूप बनता है। यहाँ यूपाय यह चतुर्थ्यन्त पद है। चतुर्थ्यन्त यूप इसका जो अर्थ है वह उस शब्द से कहते है। उस यूप के लिए यह लकड़ी है। अतः दारु यह तदर्थ है। इसी प्रकार यूपदारु यहाँ पूर्वपद यूपाय यह चतुर्थ्यन्त पद है। उसके बाद दारु यह उत्तरपद है। अतः प्रकृत सूत्र से यूपदारु यहाँ पर यूप इस पूर्वपद में प्रकृति स्वर होता है। यूप शब्द आद्युदात्त होता है। अतः यूपदारु यहाँ समास के होने पर भी प्रकृत सूत्र से यूप शब्द आद्युदात्त ही रहता है।

विशेष- तदर्थ शब्द से यहाँ प्रकृति विकृति भाव का ही ग्रहण है। उससे रन्धनाय स्थाली इत्यादि में स्थाली रन्धन के लिए उसके अर्थ के लिए नहीं हो सकती है, क्योंकि यहाँ रन्धन स्थाली के मध्य में प्रकृति विकृति भाव नहीं है।

13.10 अर्थे (६.२.४४)

सूत्र का अर्थ- अर्थ शब्द उत्तर पद रहते चतुर्थ्यन्त पूर्वपद को प्रकृत्ति स्वर होता है।

सूत्र की व्याख्या- यह विधिसूत्र है। इस सूत्र से प्रकृतिस्वर का विधान है। इस सूत्र में एक ही पद है। अर्थे यह सप्तम्यन्त पद है। चतुर्थी तदर्थे इस सूत्र से चतुर्थी इस पद की यहाँ अनुवृति आ रही है। बहुव्रीहौ प्रकृत्या पूर्वपदम् इस सूत्र से प्रकृत्या और पूर्वपदम् इन दो पदों की यहाँ अनुवृति आती है। चतुर्थी यह प्रत्यय का ग्रहण है। प्रत्यय ग्रहण करने पर तदन्ताः ग्राह्याः इस न्याय से तदन्त ग्रहण करने में चतुर्थ्यन्त होती है। अतः सूत्र का अर्थ होता है - चतुर्थ्यन्त पूर्वपद को अर्थ उत्तरपद रहते प्रकृत्ति स्वर होता है।

उदाहरण- मात्रार्थम्।

सूत्र अर्थ का समन्वय- मात्रे इदम् इस विग्रह में मात्रार्थम् यह रूप बनता है। मातृ शब्द अन्तोदात्त है। मात्रार्थम् यहाँ पर अर्थ शब्द उत्तरपद में है। अतः प्रकृत सूत्र से मात्रार्थम् यहाँ पर समास के होने पर भी पूर्वपद मातृ शब्द को अन्तोदात्त होता है।

13.11 क्ते च (६.२.४५)

सूत्र का अर्थ- क्तान्त शब्द उत्तरपद रहते भी चतुर्थ्यन्त पूर्वपद को प्रकृत्ति स्वर होता है।

सूत्र की व्याख्या- यह विधिसूत्र है। इस सूत्र से प्रकृतिस्वर का विधान है। इस सूत्र में दो पद है। क्ते यह सप्तम्यन्त पद है। च यह अव्ययपद है। चतुर्थी तदर्थे इस सूत्र से चतुर्थी इस पद की अनुवृति है। बहुव्रीहौ प्रकृत्या पूर्वपदम् इस सूत्र से प्रकृत्या और पूर्वपदम् इन दो पदों की यहाँ अनुवृति है। चतुर्थी इससे प्रत्यय का ग्रहण है। प्रत्यय ग्रहण करने पर तदन्ताः ग्राह्याः इस न्याय से तदन्त

ग्रहण में चतुर्थ्यन्त होती है। क्ते क्त प्रत्यय करने पर यह अर्थ है। यहाँ पर भी प्रत्यय ग्रहण करने पर तदन्ता: ग्राह्या: इस न्याय से तदन्तविधि में क्तान्त यह रूप होता है। उत्तरपदे इसका यहाँ अध्याहार किया गया है। अत: सूत्र का अर्थ होता है - क्तान्त उत्तरपद रहते चतुर्थ्यन्त पूर्वपद को प्रकृत्ति स्वर होता है।

उदाहरण- गोहितम्। अश्वंहितम्। मनुष्यंहितम्। गोरक्षितम्। अश्वंरक्षितम्।

सूत्र अर्थ का समन्वय- गोभ्य: हितम् इस विग्रह में चतुर्थी तदर्थार्थवलिहितसुखरक्षितै: इस सूत्र से चतुर्थीतत्पुरुष समास होने पर गोहितम् यह रूप बनता है। यहाँ पूर्वपद गवे यह चतुर्थ्यन्त है। और उत्तरपद हितम् यह क्त प्रत्ययान्त है। गो शब्द अन्तोदात्त है। अत: प्रकृत सूत्र से गोहितम् यहाँ समास होने पर भी गो यहाँ इसका प्रकृतिस्वर ही होता है। उससे गो शब्द अन्तोदात्त ही रहता है।

इसी प्रकार अश्वंहितम्, मनुष्यंहितम्, गोरक्षितम् अश्वंरक्षितम् इत्यादि में भी होता है। अश्व शब्द आद्युदात्त है। मनुष्य शब्द अन्त स्वरित है।

13.12 कर्मधारयोऽनिष्ठा (६.२.४६)

सूत्र का अर्थ:- कर्मधारय समास में क्तान्त उत्तरपद रहते अनिष्ठान्त पूर्वपद को प्रकृत्ति स्वर होता है।

सूत्र की व्याख्या- यह विधिसूत्र है। इस सूत्र से प्रकृतिस्वर का विधान है। इस सूत्र में दो पद है। कर्मधारय यह सप्तम्यन्त पद है। अनिष्ठा यह प्रथमान्त पद है। जो निष्ठा नहीं है वह अनिष्ठा। क्ते च इस सूत्र से क्ते इस पद की अनुवृति आती है। क्ते यह प्रत्यय है। प्रत्यय ग्रहण करने पर तदन्ता: ग्राह्या: इस न्याय से तदन्तविधि में क्तान्ते यह रूप होता है। निष्ठा इससे क्त प्रत्यय का और क्तवतु प्रत्यय का परामर्श है। क्तक्तवतू निष्ठा यह सूत्र यहाँ प्रमाण है। निष्ठा यह प्रत्यय होने से प्रत्यय ग्रहण करने पर तदन्ता: ग्राह्या: इस न्याय से तदन्तविधि में निष्ठान्त यह रूप होता है। अत: अनिष्ठा इसका अनिष्ठान्त यह अर्थ है। बहुव्रीहौ प्रकृत्या पूर्वपदम् इस सूत्र से प्रकृत्या और पूर्वपदम् इन दो पदों की यहाँ अनुवृति है। उत्तर पदे इसका यहाँ अध्याहार किया गया है। अत: सूत्र का अर्थ होता है - क्तान्त उत्तरपद रहते अनिष्ठान्त पूर्वपद को प्रकृतिस्वर होता है।

उदाहरण- श्रेणिंकृता:। ऊककृंता:। पूगकृंता:।

सूत्र अर्थ का समन्वय- श्रेणि: च असौ कृत: इस विग्रह में श्रेण्यादय: कृतादिभि: इस सूत्र से कर्मधारय समास करने पर बहुवचन में श्रेणिकृता: यह रूप बनता है। यहाँ पूर्वपद श्रेणि शब्द है। श्रेणि यह क्त प्रत्ययान्त भी नहीं है और क्तवतु प्रत्ययान्त भी नहीं है। अत: पूर्वपद यहाँ अनिष्ठान्त है। और उत्तरपद क्त प्रत्ययान्त है। अत: प्रकृत सूत्र से श्रेणिकृता: यहाँ समास होने पर भी श्रेणि शब्द को प्रकृति स्वर होता है। श्रेणि शब्द का आद्युदात्त है। उससे श्रेणिष्कृता: यह रूप होता है।

इसी प्रकार ऊककृंता:, पूगकृंता: इत्यादि में भी जानना चाहिए। ऊक् शब्द और पूग शब्द अन्तोदात्त है।

टिप्पणियाँ

विशेष- कर्मधारय समास में ही इस सूत्र से प्रकृतिस्वर का विधान है। अन्य जगह नही। जैसे श्रेणिकृता: यहाँ पर यदि श्रेण्या कृता: इस विग्रह में तृतीयातत्पुरुष समास स्वीकार करते तो कर्मधारय समास के अभाव से प्रकृत सूत्र से श्रेणि यहाँ पर प्रकृति स्वर नहीं होता है।

किन्तु पूर्वपद अनिष्ठान्त ही होता है। कृताकृतम् यहाँ पर कृतञ्च तत् अकृतम् इस विग्रह में कर्मधारय समास करने पर कृताकृतम् यह रूप बनता है। यहाँ कर्मधारय समास है। उत्तरपद क्त प्रत्ययान्त भी है। किन्तु पूर्वपद निष्ठान्त है। अत: प्रकृत सूत्र से कताकृतम् यहाँ पर कृत इस पूर्वपद को प्रकृतिस्वर नहीं होता है।

13.13 तृतीया कर्मणि॥ (६.२.४८)

सूत्र का अर्थ- कर्मवाचि क्तान्त उत्तरपद रहते तृतीयान्त पूर्वपद को प्रकृत्ति स्वर होता है।

सूत्र की व्याख्या- यह विधिसूत्र है। इस सूत्र से प्रकृतिस्वर का विधान है। इस सूत्र में दो पद है। तृतीया यह प्रथमान्त पद है। कर्मणि यह सप्तम्यन्त पद है। क्ते च इस सूत्र से क्ते इस पद की यहाँ अनुवृति है। क्त यह एक प्रत्यय है। प्रत्यय ग्रहण करने पर तदन्ता: ग्राह्या: इस न्याय से तदन्तविधि में क्तान्ते यह रूप होता है। बहुव्रीहौ प्रकृत्या पूर्वपदम् इस सूत्र से प्रकृत्या और पूर्वपदम् इन दो पदों की यहाँ अनुवृति है। पूर्वपद सामर्थ्य से उत्तरपदे इस पद का यहाँ अध्याहार किया गया है। अत: सूत्र का अर्थ है - कर्मवाचि क्तान्त उत्तरपद रहते तृतीयान्त पूर्वपद को प्रकृतिस्वर होता है।

उदाहरण- अहिहत:। नखनिर्भिन्न:। दात्रलून:।

सूत्र अर्थ का समन्वय- अहिना हत: इस विग्रह में तृतीयातत्पुरुष समास होने पर अहिहत: यह रूप बनता है। हन्-धातु से कर्म में क्त प्रत्यय करने पर हत: यह रूप बनता है। अत: उत्तरपद यहाँ कर्मवाचक क्त प्रत्ययान्त है। और पूर्वपद तृतीयान्त है। अत: प्रकृत सूत्र से अहिहत: यहाँ पर अहि शब्द को प्रकृति स्वर होता है। अहि शब्द अन्तोदात्त है। अत: अन्तोदात्त ही रहता है। उसके द्वारा अघहिहघ्त: ही प्रयोग होता है।

इसी प्रकार नखनिर्भिन्न:, दात्रलून: इत्यादि में भी जानना चाहिए। नख शब्द अन्तोदात्त है। दात्र शब्द आद्युदात्त है।

पाठगत प्रश्न 13.3

1. 'चतुर्थी तदर्थे' इस सूत्र का क्या अर्थ है?
2. 'यूपदारु' इसका विग्रह वाक्य क्या है?
3. 'मात्रार्थम्' यहाँ पर पूर्वपद मातृ शब्द किस सूत्र से अन्तोदात्त होता है?
4. 'मात्रर्थम्' इसका विग्रह वाक्य क्या है?

5. क्तान्त उत्तरपद रहते किस सूत्र से चतुर्थ्यन्त को प्रकृत्ति स्वर होता है?
6. श्रेणिकृता: यहाँ पर कौन सा समास स्वीकार करते है, तो पूर्वपद को प्रकृति स्वर होता है? किस सूत्र से?
7. निष्ठा संज्ञा किस-किस की होती है?
8. कब तृतीयान्त पूर्वपद को प्रकृत्ति स्वर होता है?
9. नखनिर्भिन्न: यहाँ पर पूर्वपद को प्रकृतिस्वर किस सूत्र से होता है?

13.14 गतिरनन्तर:॥ (६.२.४९)

सूत्र का अर्थ- कर्मवाची क्तान्त उत्तरपद रहते पूर्वपदस्थ अव्यवहित गति को प्रकृत्ति स्वर होता है।

सूत्र की व्याख्या- यह विधिसूत्र है। इस सूत्र से प्रकृति स्वर का विधान होता है। इस सूत्र में दो पद हैं। गति: यह प्रथमान्त पद है। अनन्तर: यह भी प्रथमान्त पद है। अनन्तर: इसका अव्यवहित यह अर्थ है। तृतीया कर्मणि इस सूत्र से कर्मणि इसकी अनुवृति आती है। क्ते च इस सूत्र से क्ते इस पद की अनुवृति आती है। क्त यह एक प्रत्यय है। प्रत्यय ग्रहण करने में तदन्ता: ग्राह्या: इस न्याय से तदन्तविधि में क्तान्ते यह रूप होता है। बहुव्रीहौ प्रकृत्या पूर्वपदम् इस सूत्र से प्रकृत्या और पूर्वपदम् इन दो पदों की यहाँ अनुवृति आ रही है। उत्तरपदे इसका अध्याहार किया गया है। अत: सूत्र का अर्थ होता है - कर्मवाचि क्तान्त उत्तरपद रहते अव्यवहित गति पूर्वपदस्थ को प्रकृत्ति स्वर होता है।

उदाहरण- प्रकृ॑त:। प्रहृत:।

सूत्र अर्थ का समन्वय- प्रकृत: यहाँ पर कुगतिप्रादय: इस सूत्र से गति समास हुआ है। यहाँ कृत यह क्त प्रत्ययान्त उत्तरपद है। क्त प्रत्यय यहाँ कर्म में विहित है। क्त प्रत्ययान्त का अव्यवहित पूर्वपद प्र यह है। प्र यह गति संज्ञक और आद्युदात्त है। अत: प्रकृत सूत्र से प्र यहाँ इसका प्रकृति स्वर है। उस के द्वारा आद्युदात्त होने से प्रकृत: यह रूप ही होता है। इसी प्रकार प्रहृत: यहाँ पर भी। समास के होने पर भी प्रकृत: यहाँ पर प्रकृत सूत्र से प्रकृति स्वर अर्थात् अन्तोदात्त होता है।

13.15 कतरकतमौ कर्मधारये॥ (६.२.५७)

सूत्र का अर्थ- कतर तथा कतम पूर्वपद को कर्मधारय समास में विकल्प से प्रकृत्ति स्वर होता है।

सूत्र की व्याख्या- यह विधिसूत्र है। इस सूत्र से प्रकृतिस्वर का विधान होता है। इस सूत्र में दो पद हैं। कतरकतमौ यह प्रथमान्त समस्त पद है। कतरश्च कतमश्च कतरकतमौ यहाँ द्वन्द्व है। कर्मधारये यह सप्तम्यन्त पद है। ईषदन्यतरस्याम् इस सूत्र से अन्यतरस्याम् इस पद की अनुवृति

टिप्पणियाँ

आती है। बहुव्रीहौ प्रकृत्या पूर्वपदम् इस सूत्र से प्रकृत्या और पूर्वपदम् इन दो पदों की अनुवृति है। अत: सूत्र का अर्थ है – कर्मधारय समास में पूर्वपद कतर और कतम शब्द को विकल्प से प्रकृति स्वर होता है।

उदाहरण– कतरकंठ:। कतरकठ:। कतमकंठ:। कतमकठ:।

सूत्र अर्थ का समन्वय– कतर और कतम शब्द अन्तोदात्त है। कतरश्चासौ कठ: इस विग्रह में कर्मधारय समास करने पर कतरकठ: यह रूप बनता है। इस कर्मधारय समास में पूर्वपद कतर शब्द है। अत: प्रकृत सूत्र से कतर शब्द को विकल्प से प्रकृति स्वर होता है। अत: एक पक्ष में अन्तोदात्त होता है, दूसरे पक्ष में समासस्य से अन्त उदात्त होता है। उस के द्वारा कतरकंठ: और कतरकठ: ये दोनों रूप प्राप्त होते है।

इसी प्रकार कतमकठ: यहाँ पर भी कतमश्चासौ कठ: इस विग्रह में कर्मधारय समास करने पर कतमकठ: यह रूप बनता है। यहाँ पर भी पूर्व के समान कतम शब्द को प्रकृत सूत्र से विकल्प से प्रकृति स्वर होता है। उस के द्वारा कतमकंठ: और कतमकठ: ये दोनों रूप सिद्ध होते है।

13.16 आचार्योपसर्जनश्चाऽन्तेवासिनि॥ (६.२.१०४)

सूत्र का अर्थ– आचार्य है अप्रधान जिसका, ऐसा जो अन्तेवासी, उसको कहने वाले शब्द के परे रहते भी दिशा अर्थ में प्रयुक्त होने वाले पूर्वपद शब्द को अन्तोदात्त होता है।

सूत्र की व्याख्या– यह सूत्र विधिसूत्र है। इस सूत्र से अन्तोदात्त स्वर का विधान है। इस सूत्र में तीन पद है। आचार्योपसर्जन: यह प्रथमान्त पद है। च यह अव्यय पद है। अन्तेवासिनि यह सप्तम्यन्त पद है। आचार्योपसर्जन: यह अन्तेवासिनि इसका विशेषण है। आचार्योपसर्जन: यहाँ पर सप्तम्य अर्थ में प्रथमा की गई है। उपसर्जन अप्रधान को कहते है। आचार्य उपसर्जन अप्रधान है जिसका वह आचार्योपसर्जन है। आचार्य उपसर्जन अन्तेवासी है आचार्योपसर्जनान्तेवासी। उसको कहने के लिए। उत्तरपदे इसका यहाँ अध्याहार किया गया है। दिक्शब्दा: ग्रामजनपदाख्यानचान –राटेषु इस सूत्र से दिक्शब्दा: इस पद की यहाँ अनुवृति आती है। अन्त: इसका यहाँ अधिकार यहाँ आता है। आदिरूदात्त: इस सूत्र से उदात्त: इस पद की यहाँ अनुवृति आती है। बहुव्रीहौ प्रकृत्या पूर्वपदम् इस सूत्र से पूर्वपदम् इस पद की यहाँ अनुवृति आती है। और वह पूर्वपद यह बहुवचनान्त से व्यत्यय किया गया है। अत: सूत्र का अर्थ होता है आचार्य उपसर्जन अन्तेवासी उत्तरपद रहते दिक्शब्द पूर्वपद अन्तोदात्त होता है।

उदाहरण– पूर्वपाणिनीया:। अपरपाणिनीया:। पूर्वकांशकृत्स्ना:। अपरकांशकृत्स्ना:।

सूत्र अर्थ का समन्वय– पूर्वा: च इमे पाणिनीया: इस विग्रह में पूर्वपाणिनीया: यह रूप बनता है। यहाँ पूर्वपदं पूर्व यह शब्द है। और वह दिशावाची है। अत: दिक्शब्द यहाँ पूर्वपद है। पाणिनि आचार्य के अन्तेवासि वे पाणिनीय कहलाते हैं। यहाँ अन्तेवासी प्रधानता से कहा जाता है, आचार्य तो उसका विशेषण होने से उपसर्जन भाव से कहलाते है। इस प्रकार पाणिनी यह आचार्य उपसर्जन

अन्तेवासीवाचि उत्तरपद को होता है। उसी प्रकार उत्तरपद होने पर पूर्वपद दिक्शब्द को प्रकृत सूत्र से अन्तोदात्त होता है। उससे पूर्वपाणिनीयाः यह रूप बनता है।

इसी प्रकार अपरपाणिनीयाः, पूर्वकाशकृत्स्नाः, अपरकाशकृत्स्नाः इत्यादि में भी जानना चाहिए।

13.17 बहुव्रीहौ विश्वं संज्ञायाम्॥ (६.२.१०६)

सूत्र का अर्थ- बहुव्रीहि समास में संज्ञा विषय में पूर्वपद विश्व शब्द को अन्तोदात्त होता है।

सूत्र की व्याख्या- यह सूत्र विधिसूत्र है। इस सूत्र से अन्तोदात्त का विधान होता है। इस सूत्र में तीन पद विराजमान है। बहुव्रीहौ यह सप्तम्यन्त पद है। विश्वम् यह प्रथमान्त पद है। संज्ञायाम् यह सप्तम्यन्त पद है। यहाँ विषयसप्तमी यह समझना चाहिए। अन्तः इसका अधिकार यहाँ आता है। उदात्तः इस पद की यहाँ अनुवृति आती है। बहुव्रीहौ प्रकृत्या पूर्वपदम् इस सूत्र से पूर्वपदम् इस पद की यहाँ अनुवृति आती है। अतः सूत्र का अर्थ होता है - बहुव्रीहि समास में संज्ञा विषय में विश्व शब्द पूर्वपद को अन्तोदात्त होता है।

उदाहरण- विश्वदेंवः। विश्वयंशाः। विश्वमंहान्।

सूत्र अर्थ का समन्वय- विश्वः देवः यस्य इस विग्रह में विश्वदेवः यह रूप बनता है। यहाँ बहुव्रीहि समास हुआ है। विश्व शब्द यहाँ पूर्वपद है। अतः प्रकृत सूत्र से विश्व शब्द अन्तोदात्त होता है। उससे विश्वदेंवः यह रूप होता है।

इसी प्रकार विश्वयंशाः, विश्वमंहान् इत्यादि में भी जानना चाहिए।

विशेष- विश्वदेवाः इत्यादि में यदि विश्वे च ते देवाः इस विग्रह में तत्पुरुष समास स्वीकार करते है, तो प्रकृत सूत्र से यहाँ विश्वशब्द को अन्तोदात्त नहीं होता है।

13.18 देवताद्वन्द्वे च॥ (६.२.१४१)

सूत्र का अर्थ- देवतावाची शब्दों का जो द्वन्द्वसमास उसमे भी एक साथ दोनों अर्थात् पूर्व और उत्तरपद को प्रकृत्ति स्वर होता है।

सूत्र की व्याख्या- यह विधिसूत्र है। इस सूत्र से प्रकृति स्वर का विधान होता है। इस सूत्र में दो पद हैं। देवताद्वन्द्वे यह सप्तमी एकवचनान्त पद है। देवताओं का द्वन्द्व देवता द्वन्द्व उसमें देवता द्वन्द्व में यहाँ पर षष्ठीतत्पुरुष समास है। देवता वाची शब्दों का द्वन्द्व समास में यह अर्थ है। उभे वनस्पत्यादिषु युगपत् इस सूत्र से उभे इस प्रथमा द्विवचनान्त पद की और युगपत् इस प्रथमा एकवचनान्त पद की अनुवृति है। उभे इसका पूर्व और उत्तरपद में यह अर्थ है। बहुव्रीहौ प्रकृत्या पूर्वपदम् इस सूत्र से प्रकृत्या इस तृतीयान्त पद की यहाँ अनुवृति है। उससे इस सूत्र का अर्थ होता है - देवता वाचियों का जो द्वन्द्वसमास वहा एक साथ पूर्व और उत्तरपद में प्रकृत्तिस्वर होता है। अर्थात् पूर्व का जैसा स्वर था, वैसे ही रहता है।

उदाहरण– आ य इन्द्रारुणौ। इन्द्रावृहस्पतीं वयम् इति ये दो इस सूत्र के उदाहरण।

सूत्र अर्थ का समन्वय– इन्द्रारुणौ यहाँ पर देवतावाचियों का द्वन्द्वसमास है। इन्द्रश्च वरुणश्च यह यहाँ विग्रह है। अतः उन दोनों का जैसे पूर्व का स्वर था वैसे ही रहता है। इसी प्रकार इन्द्रावृहस्पती यहाँ पर भी।

पाठगत प्रश्न 13.4

1. 'गतिरनन्तर' इस सूत्र का क्या अर्थ है?
2. कतर शब्द आद्युदात्त है अथवा अन्तोदात्त है?
3. आचार्योपसर्जनश्चाऽन्तेवासिनि यहाँ पर उपसर्जन किसको कहते है?
4. पूर्वपाणिनीयाः यहाँ पर किस सूत्र से पूर्वशब्द को अन्तोदात्त का विधान है?
5. कतमकठः यहाँ पर क्या समास है?
6. विश्वशब्दः अन्तोदात्त कब होता है?
7. 'देवताद्वन्द्वे च' इस सूत्र का क्या अर्थ है?

पाठ का सार

पूर्व के पाठों में धातुस्वर, प्रातिपदिक स्वर, फिट्-स्वर, और प्रत्यय स्वर हमारे द्वारा पढ़े गए हैं। इस प्रकृत पाठ में हमारे द्वारा समास स्वर की आलोचना की है। जैसे समासस्य इस सूत्र से अन्त उदात्त होता है। जैसे राजपुरुषः इस समास स्थान में अन्त्य अकार को उदात्त होता है। हमारे द्वारा समास आदि पाठ पढने के समय ज्ञात हुआ है की समास में पूर्वपद और उत्तरपद रहते हैं। साधारण होने से राजपुरुषः इत्यादि स्थानों में समासस्य इस सूत्र से अन्त्य यह कहने से उत्तरपद के अन्तिम अकार को उदात्त होता है। तत्पुरुषे तुल्यार्थतृतीयासप्तम्युपमानाव्ययद्वितीयाकृत्याः इत्यादि सूत्र से पूर्वपद को प्रकृति स्वर का विधान है। प्रकृतिस्वर यह कहने से समास होने से पहले जो स्वाभाविक स्वर था, समास करने के बाद भी वह ही स्वर रहता है। तत्पुरुषसमास होने पर पूर्वपद यदि तुल्यार्थवाचक, तृतीयान्त, सप्तम्यन्त, उपमानवाचक, अव्यय, अथवा कृत्यप्रत्ययान्त है तो पूर्वपद को प्रकृत्ति स्वर होता है। जैसे तुल्यश्वेतः। तुल्यशब्द का समास होने से पहले आद्युदात्त जैसे था, वैसे ही समास करने के बाद भी आद्युदात्त ही होता है। वा भुवनम्, पूर्वे भूतपूर्वे इत्यादि सूत्र से पूर्वपद को विकल्प से प्रकतिस्वर होता है। देवतावाची द्वन्द्व समास में एक साथ दोनों को प्रकृत्ति स्वर होता है। अर्थात् देवतावाची द्वन्द्व समास में पूर्वपद को और उत्तरपद दोनों को प्रकृत्ति स्वर होता है। इन्द्रारुणौ यहाँ पर देवतावाचक द्वन्द्वसमास है। इन्द्रश्च वरुणश्च यह यहाँ विग्रह है। अतः दोनों (पूर्वपद और उत्तपद को) जैसे पूर्व स्वर था वैसे ही समास होने के बाद भी रहता है।

पाठांत प्रश्न

इन सूत्रों की व्याख्या कीजिए –

1. तत्पुरुषे तुल्यार्थतृतीयासप्तम्युपमानाव्ययद्वितीयाकृत्याः
2. कुमारश्च
3. बह्वन्यतरस्याम्
4. कार्तकौजपादयश्च
5. चतुर्थी तदर्थे
6. कर्मधारयोऽनिष्ठा
7. गतिरनन्तरः
8. आचार्योपसर्जनश्चाऽन्तेवासिनि

पाठगत प्रश्नों के उत्तर

13.1

1. समास का अन्त उदात्त होता है।
2. तुल्य शब्द आद्युदात्त है।
3. अक्षशौण्डः इसका विग्रह वाक्य अक्षेषु शौण्डः है।
4. भौज्योष्णम् यहाँ पूर्वपद को प्रकृति स्वर तत्पुरुष समास में तुल्यार्थ तृतीया सप्तम्युप मानाव्ययद्वितीयाकृत्याः इस सूत्र से किया गया है।
5. वा भुवनम् इस सूत्र का अर्थ है ऐश्वर्यवाची अर्थ में तत्पुरुष समास में पति उत्तरपद रहते भुवन पूर्वपद को विकल्प से प्रकृति स्वर होता है।
6. भुवनपतिः यहाँ भुवन शब्द आद्युदात्त है।
7. पूर्वे भूतपूर्वे इस सूत्र से पूर्व शब्द उत्तरपद रहते भूतपूर्ववाची अर्थ में तत्पुरुष समास में पूर्वपद को प्रकृति स्वर होता है।

टिप्पणियाँ

13.2

1. विस्पष्टादीनि गुणवचनेषु इस सूत्र से गुणवचन उत्तरपद में विस्पष्टादि पूर्वपदों को प्रकृतिस्वर होता है।
2. विस्पष्ट शब्द आद्युदात्त है।
3. कर्मधारय समास में कुमार शब्द पूर्वपद को प्रकृत्ति स्वर होता है।
4. कुमारश्च इस सूत्र का एक उदाहरण है कुमारश्रमण।
5. बहुमास्य यहाँ पर पूर्वपद को प्रकृति स्वर होने का विधान बह्वन्यतरस्याम् इस सूत्र से है।
6. कार्तकौजपादयश्च इस सूत्र से कार्तकौजपादि जो द्वन्द्व हैं, उनमे पूर्वपद को प्रकृतिस्वर होने का विधान है।
7. कृत का अपत्य इस अर्थ में कार्तः शब्द है।

13.3

1. चतुर्थी तदर्थे इस सूत्र का चतुर्थ्यन्तार्थ के उत्तर पद रहते चतुर्थी पूर्वपद को प्रकृति स्वर होता है।
2. यूपदारु इसका विग्रह वाक्य होता है- यूपाय दारु।
3. मात्रार्थम् यहाँ पर पूर्वपद मातृ शब्द को अर्थ इस सूत्र से अन्तोदात्त होता है।
4. मात्रर्थम् इसका विग्रह वाक्य होता है - मात्रे इदम्।
5. क्तान्ते च उत्तरपदे क्ते च इस सूत्र से।
6. श्रेणिकृताः यहाँ पर कर्मधारय समास स्वीकार करते है, तो पूर्वपद को प्रकृति स्वर होता है। कर्मधारयोऽनिष्ठा इस सूत्र से।
7. क्त प्रत्यय की और क्तवतु प्रत्यय की निष्ठा संज्ञा होती है।
8. कर्मवाचि क्तान्त उत्तरपद रहते तृतीयान्त पूर्वपद को प्रकृत्ति स्वर होता है।
9. नखनिर्भिन्नः यहाँ पर पूर्वपद को प्रकृति स्वर तृतीया कर्मणि इस सूत्र से है।

13.4

1. गतिरनन्तरः इस सूत्र का अर्थ है कर्मवाची क्तान्त उत्तरपद रहते गतिरनन्तर पूर्वपद को प्रकृत्ति स्वर होता है।

2. कतर शब्द अन्तोदात्त होता है।

3. आचार्योपसर्जनश्चाऽन्तेवासिनि यहाँ पर उपसर्जन नाम अप्रधान को कहते है।

4. पूर्वपाणिनीया: यहाँ पर आचार्योपसर्जनश्चाऽन्तेवासिनि इस सूत्र से पूर्वशब्द को अन्तोदात्त होने का विधान है।

5. कतमकठ: यहाँ पर कर्मधारय समास है।

6. बहुव्रीहि समास में विश्वशब्द पूर्वपद होने से संज्ञा में अन्तोदात्त होता है।

7. देवतावाची का द्वन्द्व समास में एक साथ दोनों को प्रकृत्ति स्वर होता है।

॥ तेरहवाँ पाठ समाप्त॥

14

तिङन्त स्वर

संस्कृत व्याकरण जगत में वैदिक व्याकरण और लौकिक व्याकरण विद्यमान है। वैदिक साहित्य में वैदिक व्याकरण की अत्यधिक प्रमुखता है। और वहाँ स्वर प्रकरण ही अत्यधिक सुन्दर है। स्वर प्रकरण में प्रकृति प्रत्ययों के स्वर विषय में चर्चा की गई है। पूर्व के पाठों में हमारे प्रातिपदिक स्वर, धातुस्वर, समासस्वर, फिट्-स्वर, प्रत्यय स्वर की आलोचना है। इस पाठ में तिङन्त स्वर को आश्रित करके विस्तार से आलोचना की है। तिङ्प्रत्यय जिनके अन्त में है, वे तिङन्त पद है। जैसे - भवति, गच्छति, बभूव इत्यादि पद है। इस प्रकरण में तिङन्त पदों का क्या स्वर विशेष है इस आलोचना का विषय है। तिङन्त में स्वर विषयक सूत्रों की अच्छी प्रकार से आलोचना की है। और उदाहरण की सङ्गति दिखाई गई। उससे तिङन्त में स्वर निषेध विधायक सूत्रों की भी आलोचना है।

उद्देश्य

इस पाठ को पढ़कर आप सक्षम होंगे :

- तिङन्त स्वर विषय में विस्तार से जान पाने में;
- तिङन्त स्वर विधायक सूत्रों की व्याख्या लिख पाने में;
- तिङन्त स्वर निषेध विधायक सूत्रों को जान पाने में;
- तिङन्त में कब स्वर का परिवर्तन होता है इस विषय में जान पाने में;
- किस अव्यय के योग में क्या स्वर होता है इस विषय में जान पाने में।

14.1 तिङो गोत्रादीनि कुत्सनाभीक्ष्ण्ययोः॥ (८.१.२७)

सूत्र का अर्थ – तिङन्त पद से उत्तर कुत्सन आभीक्ष्ण्य अर्थ में वर्तमान गोत्रादिगण में पठित पदों को अनुदात होता है।

सूत्र की व्याख्या– यह विधिसूत्र है। इससे अनुदात्त स्वर का विधान होता है। इस सूत्र में तीन पद है। तिङः यह पञ्चम्यन्त पद है। गोत्रादीनि यह प्रथमान्त पद है। कुत्सनाभीक्ष्ण्ययोः यह सप्तम्यन्त पद है। कुत्सना इसका निन्दा यह अर्थ है। आभीक्ष्ण्यम् इसका पुनः पुनः यह अर्थ है। पदात् इस सूत्र का अधिकार है। अनुदात्तानि इस प्रथमा बहुवचनान्त पद की अनुवृति आती है। तिङः यह पद पदात् इस पद का विशेषण है। अतः तदन्तविधि से तिङन्त पद से यह अर्थ है। अतः इस सूत्र का यह अर्थ है – तिङन्त पद से परे गोत्रादि अनुदात्त होते है, कुत्सन आभीक्ष्ण्य गम्यमान होने पर गोत्रादिगण में गोत्र, ब्रुव, प्रवचन, प्रहसन, प्रयतन, पवन, यजन, प्रकथन, प्रत्यायन, प्रचक्षण, विचक्षण, अवचक्षण, स्वाध्याय, भूयिष्ठा इत्यादि शब्द पढ़े गए है। अतः सूत्र का अर्थ है – तिङन्त पद से परे इन गोत्रादि शब्द स्वरूप को अनुदात्त होते है कुत्सन आभीक्ष्ण्य अर्थ का गम्यमान होने पर।

उदाहरण– कुत्सन अर्थ में इस सूत्र का उदाहरण है –पचति गोत्रम्। आभीक्ष्ण्य में उदाहरण है – पचति पचति गोत्रम् इस सूत्र के दो उदाहरण है।

सूत्र अर्थ का समन्वय– पचति गोत्रम् यहाँ पर तिङन्त से परे गोत्र शब्द विद्यमान है। वाक्य से निन्दा भी जानी जाती है। अतः प्रकृत सूत्र से गोत्र शब्द को अनुदात्त होता है। अपने कुल को पीटता है यह अर्थ है। पचति पचति गोत्रम् यहाँ पर तिङन्त से परे गोत्र शब्द विद्यमान है। यहाँ वाक्य से आभीक्ष्ण्य को जाना जाता है। अतः प्रकृत सूत्र से गोत्र शब्द को अनुदात्त होता है। विवाह आदि में बार –बार सुख करता है यह अर्थ है।

14.2 तिङ्ङतिङः॥ (८.१.२९)

सूत्र का अर्थ – अतिङ पद से उत्तर जो तिङ पद उसको अनुदात्त होता है।

सूत्र की व्याख्या – यह विधिसूत्र है। इस सूत्र से अनुदात्तस्वर का धान है। यह दो पद वाला सूत्र है। तिङ् अतिङः ये सूत्र में आये पदच्छेद है। तिङ् यह प्रथमान्त पद है। अतिङः यह पञ्चम्यन्त पद है। पदात् इस सूत्र की अनुवृति है। सर्वम् इस प्रथमान्त अपदादौ इस सप्तम्यन्त पद की अनुवृति है। तिङ् यह प्रत्यय है। अतः प्रत्यय ग्रहण परिभाषा से तिङन्त इसका लाभ है। अतिङः यह पद पदात् इसका विशेषण है। अतः तदन्तविधि से अतिङन्त पद से यह अर्थ प्राप्त होता है। अनुदात्तम् इस प्रथमान्त की अनुवृति है। उससे इस सूत्र का यह अर्थ है – अतिङन्त पद से परे स्थित अपदादि में जो तिङन्त है वह सभी अनुदात्त होते है।

उदाहरण– अग्निमीळे इस सूत्र का यह एक उदाहरण है।

टिप्पणियाँ

सूत्र अर्थ का समन्वय- अग्निम् ईळे यह उदाहरण है। अग्निः यह अतिङन्त से परे तिङन्त ईळे यह पद है। अतः प्रकृत सूत्र से अपदादि में स्थित ईळे इस पद को अनुदात्त होता है।

14.3 अङ्गाऽप्रातिलोम्ये॥ (८.१.३३)

सूत्र का अर्थ - अङ्ग शब्द से युक्त तिङन्त को अनुदात्त नहीं होता है।

सूत्र की व्याख्या- यह विधिसूत्र है। इस सूत्र से अनुदात्त स्वर का निषेध होता है। दो पद वाला यह सूत्र है। अङ्ग यह अव्ययपद है। अप्रातिलोम्ये यह सप्तम्यन्त पद है। न प्रातिलोम्यम् अप्रातिलोम्यं तस्मिन् अप्रातिलोम्ये यहाँ पर नञ्तत्पुरुष समास है। अप्रातिलोम्ये इसका अनुकूलता गम्यमान हो यह अर्थ है। पदात् यह अधिकार पञ्चम्यन्त से व्यत्यय है। न इस अव्ययपद की अनुवृति है। तिङ्ङतिङः इस सूत्र से तिङ् इस प्रथमान्त पद की अनुवृति है। तिङ् यह प्रत्यय है। अतः प्रत्यय ग्रहण परिभाषा से तिङन्त पद यह अर्थ प्राप्त होता है। अतः अङ्ग इससे युक्त तिङन्त पद को अनुदात्त नहीं होता है यह अर्थ है।

उदाहरण- अङ्ग कुरु इस सूत्र का यह एक उदाहरण है।

सूत्र अर्थ का समन्वय- यहाँ अङ्ग इससे युक्त कुरु यह तिङन्त पद है। कृ धातु से परस्मैपद लोट् लकार में मध्यम पुरुष एकवचन में कुरु यह रूप है। अतः अङ्ग इस अव्यय से युक्त कुरु इस तिङन्त पद को अनुदात्त नहीं होता है।

14.4 हि च॥ (८.१.३४)

सूत्र का अर्थ - हि से युक्त तिङन्त को भी अप्रातिलोम्य अर्थ में गम्यमान होने पर अनुदात्त नहीं होता है।

सूत्र की व्याख्या- यह विधिसूत्र है। इस सूत्र से अनुदात्त स्वर का निषेध होता है। यह दो पद वाला सूत्र है। हि यह अव्यय है। च यह भी अव्यय पद है। अङ्गप्रातिलोम्ये इस सूत्र से अप्रातिलोम्ये इस सप्तम्यन्त पद की अनुवृति है। न प्रातिलोम्यम् अप्रातिलोम्यं, तस्मिन् अप्रातिलोम्ये यहाँ नञ्तत्पुरुष समास है। अप्रातिलोम्ये इस सूत्र से अनुकूलता गम्यमान हो यह अर्थ है। तिङ्तिङः इस सूत्र से तिङ् इस प्रथमान्त पद की यहाँ अनुवृति है। अनुदात्तम् यह प्रथमान्त और न यह अव्ययपद अनुवृति है। तिङ् यह प्रत्यय है। अतः प्रत्यय ग्रहण परिभाषा से तिङन्त यह प्राप्त है। इस प्रकार हि युक्त तिङन्त अनुदात्त नहीं होता अनुकूलता गम्यमान होने पर यह सूत्र का अर्थ है।

उदाहरण- आ हि ष्मा याति यह इस सूत्र का एक उदाहरण है।

सूत्र अर्थ का समन्वय- याति यह हि शब्द युक्त तिङन्त है। अतः उससे परे याति यह अनुदात्त नहीं होता है।

पाठगत प्रश्न 14.1

1. कुत्सन आभीक्ष्ण्य के गम्यमान होने पर गोत्रादि को किस सूत्र से अनुदात्त होता है?
2. तिङो गोत्रादीनि कुत्सनाभीक्ष्ण्ययोः इस सूत्र का कुत्सन अर्थ में क्या उदाहरण है?
3. अग्निमीळे यहाँ पर किससे सभी को अनुदात्त होता है?
4. तिङ्तिङः इस सूत्र का अर्थ लिखिए।
5. अङ्ग कुरु यह किस सूत्र का उदाहरण है?
6. हि च यहाँ पर हि यह क्या है?
7. हि शब्द युक्त तिङन्त को कैसे अनुदात्त नहीं होता है?

14.5 छन्दस्यनेकमपि साकाङ्क्षम्॥ (८.१.३५)

सूत्र का अर्थ – हि से युक्त साकाक्ष अनेक तिङन्त को भी अनुदात्त नहीं होता है, छन्द में।

सूत्र की व्याख्या– यह विधिसूत्र है। इस सूत्र से अनुदात्तस्वर का निषेध होता है। ये चार पदवाला सूत्र है। छन्दसि अनेकम् अपि साकाक्षम् ये सूत्र में आये पदच्छेद है। छन्दसि यह सप्तम्यन्त पद है। अनेकम् यह प्रथमान्त पद है। अपि यह अव्ययपद है। साकाक्षम यह प्रथमान्त पद है। हि च इस सूत्र से हि इस अव्ययपद की अनुवृति है। तिङ्ङतिङः इस सूत्र से तिङ् इस प्रथमान्त पद की अनुवृति है। तिङ् यह प्रत्यय है। अतः प्रत्यय ग्रहण की परिभाषा से तिङन्तम यह लाभ है। न, अनुदात्तम् इन दो पदों की अनुवृति है। इसी प्रकार हि शब्द से युक्त परस्पर साकाङ्क्ष अनेक तिङन्त पदों को अनुदात्त नहीं होता है वेद में यह इस सूत्र का अर्थ हुआ।

उदाहरण– अनृतं हि मत्तो वदति पाप्मा चौनं युनाति यह इस सूत्र का एक उदाहरण है।

सूत्र अर्थ का समन्वय– यहाँ वदति यह युनाति यह दोनों तिङन्त हि शब्द से युक्त है। और भी तिङन्त की परस्पर साकाङ्क्ष है। अतः यहाँ तिङन्त को अनुदात्त नहीं होता है।

14.6 उपसर्गव्यपेतं च॥ (८.१.३८)

सूत्र का अर्थ – यावत् और यथा से युक्त, एवं उपसर्ग से व्यवहित अन्तर तिङ् को अनुदात्त नहीं होता है, पूजा विषय में।

सूत्र की व्याख्या– यह विधिसूत्र है। इस सूत्र से अनुदात्त स्वर का निषेध होता है। उपसर्गव्यपेतम् यह प्रथमान्त पद है। और उसका उपसर्ग से व्यवहित यह अर्थ है। च यह अव्ययपद है। यावद्यथाभ्यामिति सूत्र की अनुवृति है। यावत् च यथा च यावद्यथे ताभ्यामिति यावद्यथाभ्याम् यहाँ

द्वन्द्वसमास है। पूजायां नान्तरम् इस सूत्र से पूजायाम् इस सप्तम्यन्त नान्तरम् इस प्रथमान्त दोनों पदों की अनुवृति है। तिङ्तिङः इस सूत्र से तिङ् इस प्रथमान्त पद की अनुवृति है। तिङ् यह प्रत्यय है। अतः प्रत्यय ग्रहण की परिभाषा से तिङन्तम यह लाभ है। न, अनुदात्तं इन दो पदों की अनुवृति है। अतः यावद् यथा से युक्त उपसर्ग रहित तिङन्त को अनुदात्त नहीं होता है पूजा विषय में यह सूत्र का अर्थ यहाँ आता है। अर्थात् तिङन्त शब्द का उपसर्ग व्यवधान होने पर भी यावद् यथा से योग तिङन्त को अनुदात्त नहीं होता है, पूजा विषय गम्यमान होने पर।

उदाहरण– 'यावत् प्रपचति शोभनम्' यह इस सूत्र का एक उदाहरण है।

सूत्र अर्थ का समन्वय– यहाँ यावत्-शब्द से युक्त प्रपचति इस तिङन्त को प्र-इस उपसर्ग का व्यवधान है। यहाँ पूजायां नानन्तरम् इस सूत्र से पचति इस तिङन्त के अनुदात्त का निषेध नहीं होता है। उसको प्रकृत सूत्र से उस अनुदात्त का निषेध होता है।

14.7 तुपश्यपश्यताहैः पूजायाम्॥ (८.१.३९)

सूत्र का अर्थ– तु, पश्य,पश्यत, अह इनसे युक्त तिङन्त को पूजा विषय में अनुदात्त नहीं होता है।

सूत्र की व्याख्या– यह विधिसूत्र है। इस सूत्र से अनुदात्त स्वर का निषेध होता है। तुपश्यपश्यताहैः यह तृतीयान्त पद है। तुश्च पश्यश्च पश्यताः च अहः च इति तुपश्यपश्यताहाः तैः तुपश्यपश्यताहैः यहाँ द्वन्द्वसमास है। पूजायाम् यह सप्तम्यन्त पद है। तिङ्तिङः इस सूत्र से तिङ् इस प्रथमान्त पद की अनुवृति है। तिङ् यह प्रत्यय है। अतः प्रत्यय ग्रहण की परिभाषा से तिङन्तम यह लाभ है। न अनुदात्तम् इन दो पदों की अनुवृति है। अतः इस सूत्र का अर्थ होता है – तु, पश्य, पश्यत, अह शब्द से युक्त तिङन्त पद को अनुदात्त नहीं होता है, पूजा विषय गम्यमान होने पर।

उदाहरण– आदहं स्वधाम तु पुनर्गर्भस्तु मेंरिरे ये इस सूत्र का उदाहरण है।

सूत्र अर्थ का समन्वय– यहाँ मेरिरे यह तिङन्त पद है। तु शब्द से अथवा अह शब्द से युक्त है। पूजा विषय भी यहाँ जाना जाता है अतः प्रकृतसूत्र से तिङन्त को अनुदात्त नहीं होता है।

14.8 शेषे विभाषा॥ (८.१.४१)

सूत्र का अर्थ– अहो इससे युक्त तिङन्त को विकल्प से अनुदात्त नहीं होता है, पूजा विषय से शेष में।

सूत्र की व्याख्या– यह विधिसूत्र है। शेषे यह सप्तम्यन्त पद है। विभाषा यह प्रथमान्त पद है। अहो च इस सूत्र से अहो इस ओदन्त अव्ययपद की अनुवृति है। तिङ्तिङः इस सूत्र से तिङ् इस प्रथमान्त पद की अनुवृति है। तिङ् यह प्रत्यय है। अतः प्रत्यय ग्रहण की परिभाषा से तिङन्तम यह लाभ है। न, अनुदात्तम् इस पद की अनुवृति है। पूजायाम् इस सप्तम्यन्त पद की अनुवृति है। अतः इस सूत्र का अर्थ होता है – अहो इस अव्यय से युक्त तिङन्त को विकल्प से अनुदात्त नहीं होता है, पूजा से शेष विषय गम्यमान होने पर।

उदाहरण- अहो कटं करिष्यति।

उदाहरण का समन्वय- यहाँ करिष्यति यह तिङन्त पद है। अहो इस अव्यय से युक्त भी है। किन्तु पूजा से भिन्न अर्थ जाना जाता है। अतः प्रकृत सूत्र से करिष्यति इस तिङन्त पद को अनुदात्त नहीं होता है।

पाठगत प्रश्न 14.2

1. 'छन्दस्यनेकमपि साकाङ्क्षम्' इस सूत्र का क्या अर्थ है?
2. 'उपसर्गव्यपेतं च' इस सूत्र का उदाहरण लिखिए।
3. तु, पश्य, पश्यत, अह से युक्त तिङन्त को पूजा के विषय में किस सूत्र से अनुदात्त नहीं होता है?
4. अहो इस अव्यय से युक्त तिङन्त को किससे अनुदात्त नहीं होता है?
5. 'शेषे विभाषा' इस सूत्र का क्या अर्थ है?
6. 'शेषे विभाषा' इस सूत्र का एक उदाहरण दीजिए।

14.9 लोपे विभाषा॥ (८.१.४५)

सूत्र का अर्थ - किम का लोप होने पर क्रिया के प्रश्न में अनुपसर्ग अप्रतिषिद्ध तिङन्त को विकल्प करके अनुदात्त नहीं होता है।

सूत्र की व्याख्या- यह विधिसूत्र है। दो पद वाले इस सूत्र में लोपे यह सप्तम्यन्त पद है। विभाषा यह प्रथमान्त पद है। 'किं क्रियाप्रश्ने अनुपसर्गम् अप्रतिषिद्धम्' इस सम्पूर्ण सूत्र की अनुवृति है। किम् यह प्रथमान्त पद है। क्रिया प्रश्ने यह सप्तम्यन्त पद है। अनुपसर्गम् यह प्रथमान्त पद है। अप्रतिषिद्धम् यह प्रथमान्त पद है। निषिद्धं प्रतिषिद्धम् यह प्रतिषेध रहित तिङ्न्त को। तिङ्तिङः इस सूत्र से तिङ् इस प्रथमान्त पद की अनुवृति है। तिङ् यह प्रत्यय है। अतः प्रत्यय ग्रहण परिभाषा से तिङन्त की प्राप्ति है। न, अनुदात्तम् इन दो पदों की अनुवृति है। उससे सूत्र का अर्थ होता है - क्रिया के प्रश्न में किम का लोप होने पर उपसर्ग रहित तथा प्रतिषेध रहित तिङन्त को विकल्प से अनुदात्त नहीं होता है।

उदाहरण- देवदत्तः पचत्याहोस्वित् पठति।

सूत्र अर्थ का समन्वय- यहाँ पठति पचति ये तिङन्त पद है। क्रिया के प्रश्न अर्थ में विद्यमान किम् शब्द का लोप हुआ। और पठति यह तिङन्त यहाँ उपसर्ग रहित प्रतिषेध है। अतः प्रकृत सूत्र के सामर्थ्य से पचति इस तिङन्त को विकल्प से अनुदात्त नहीं होता है।

टिप्पणियाँ

14.10 किंवृत्तं च चिदुत्तरम्॥ (८.१.४८)

सूत्र का अर्थ - जिससे उत्तर चित् है, तथा जिससे पूर्व कोई शब्द नहीं है, ऐसा किंवृत्त शब्द से युक्त तिङन्त को अनुदात्त नहीं होता है।

सूत्र की व्याख्या- यह विधिसूत्र है। अनुदात्त स्वर का निषेध इस सूत्र से होता है। किंवृत्तम् यह प्रथमा एकवचनान्त पद है। किम् शब्द का वृत्त किंवृत्त है। च यह अव्ययपद है। चिदुत्तरम् यह प्रथमा एकवचनान्त पद है। चित् शब्द उत्तर जिससे वह चिदुत्तरम् यहाँ बहुव्रीहि समास है। जात्वपूर्वम् इस पूर्व सूत्र से अपूर्वम् इस प्रथमा एकवचनान्त पद की अनुवृति है। अपूर्वम् इसका विद्यमान नहीं है पूर्व में यह अर्थ है। तिङ्तिङः इस सूत्र से तिङ् इस प्रथमान्त पद की अनुवृति है। तिङ् यह प्रत्यय। अतः प्रत्यय ग्रहण परिभाषा से तिङन्त यह अर्थ प्राप्त है। न यह अव्ययपद है, अनुत्तमम् इस प्रथमा एकवचनान्त पद की अनुवृति है। अतः अपूर्वम् चिदुत्तरं किंवृत्तं तिङन्तं न अनुदात्तम् ये सूत्र का अन्वय है। उससे इस सूत्र का यह अर्थ है - अविद्यमान पूर्व चित् से उत्तर जो किंवृत्त उससे युक्त तिङन्त को अनुदात्त नहीं होता है। अर्थात् जिस किम् शब्द से पूर्व कोई भी पद नहीं है। और बाद में चित् शब्द विद्यमान है। उस प्रकार के किंवृत्त शब्द से युक्त तिङन्त को अनुदात्त नहीं होता है।

उदाहरण- कश्चिद् भुङ्क्ते यह इस सूत्र का एक उदाहरण है।

सूत्र अर्थ का समन्वय- यहाँ जो किम् शब्द है। उससे पूर्व कोई भी पद नहीं है। और बाद में चिद शब्द विद्यमान है। और उससे युक्त तिङन्त भुङ्क्ते यह है। अतः प्रकृत सूत्र से उस तिङन्त को अनुदात्त नहीं होता है।

14.11 आहो उताहो चानन्तरम्॥ (८.१.४९)

सूत्र का अर्थ - अविद्यमान पूर्ववाले आहो उताहो से युक्त जो व्यवधान रहित तिङन्त है, उसको अनुदात्त नहीं होता है।

सूत्र की व्याख्या- यह विधिसूत्र है। इस सूत्र से अनुदात्त स्वर का निषेध होता है। यह चार पद वाला सूत्र है। आहो यह अव्ययपद है। उताहो यह अव्ययपद है। च यह भी अव्ययपद है। अनन्तरम् यह प्रथमा एकवचनान्त पद है। न अन्तरम् अनन्तरम् यहाँ नञ्तत्पुरुषसमास है। जात्वपूर्वम् इस पूर्वसूत्र से अपूर्वम् इस प्रथमा एकवचनान्त पद की अनुवृति है। अपूर्वम् इसका विद्यमान नहीं है पूर्व में यह अर्थ है। तिङ्तिङः इस सूत्र से तिङ् इस प्रथमान्त पद की अनुवृति है। तिङ् यह प्रत्यय। अतः प्रत्यय ग्रहण की परिभाषा से तिङन्त यह प्राप्त होता है। न यह अव्ययपद है, अनुत्तमम् यह प्रथमा एकवचनान्त पद की अनुवृति है। उससे इस सूत्र का अर्थ होता है - आहो उताहो इन अविद्यमान पूर्व से युक्त अनन्तर तिङन्त को अनुदात्त नहीं होता है। अर्थात् पूर्व में कोई भी पद नहीं है उन दोनों के, इस प्रकार के आहो उताहो इन अव्ययों से युक्त तिङन्त को अनुदात्त नहीं होता है।

उदाहरण- आहो उताहो वा भुङ्क्ते ये इस सूत्र का एक उदाहरण है।

सूत्र अर्थ का समन्वय- इस उदाहरण में आहो उताहो ये दो अव्यय है। उन दोनों से पहले कोई भी पद नहीं है। किन्तु भुङ्क्ते यह तिङन्त आहो उताहो इन अव्ययों से युक्त है। अतः प्रकृत सूत्र से भुङ्क्ते यहाँ तिङन्त को अनुदात्त नहीं होता है।

14.12 शेषे विभाषा॥ (८.१.५०)

सूत्र का अर्थ - इन दो से युक्त व्यवधान में तिङन्त को विकल्प से अनुदात्त होता है।

सूत्र की व्याख्या- यह विधिसूत्र है। इससे विकल्प से अनुदात्त स्वर होता है। यह दो पद वाला सूत्र है। शेषे यह सप्तम्यन्त पद है। शेषे इसका अनन्तर से भिन्न यह अर्थ है। विभाषा यह प्रथमान्त पद है। आहो उताहो चानन्तरम् इस सूत्र से आहो उताहो इन दो अव्ययपद की यहाँ अनुवृति है। जात्वपूर्वम् इस सूत्र से अपूर्वम् इस प्रथमान्त सुबन्त पद की अनुवृति है। अपूर्वम् इसका अविद्यमान पूर्व से यह अर्थ है। तिङ्तिङः इस सूत्र से तिङ् इस प्रथमान्त सुबन्त पद की अनुवृति है। तिङ् यह प्रत्यय है। अतः प्रत्यय ग्रहण की परिभाषा से तिङन्त इस पद को लाभ होता है। न अनुदात्तम् इन दो पदों की अनुवृति है। उससे आहो उताहो इन अव्यय पूर्व से युक्त तिङन्त को शेष में विकल्प से अनुदात्त होता है यह सूत्र का अर्थ प्राप्त होता है। अर्थात् आहो उताहो इनसे युक्त व्यवधान तिङन्त को विकल्प से अनुदात्त होता है।

उदाहरण- आहो देवः पचति यह इस सूत्र का एक उदाहरण है।

सूत्र अर्थ का समन्वय- इस उदाहरण में पचति यह तिङन्त पद है। आहो इस अव्यय से युक्त है। किन्तु तिङन्त पद को व्यवधान है। अतः प्रकृत सूत्र से विकल्प से अनुदात्त होता है।

14.13 गत्यर्थलोटा लृण्ण चेत्कारकं सर्वान्यत्॥ (८.१.५१)

सूत्र का अर्थ - गति अर्थ वाले धातुओं को लोट् लकार से युक्त तिङन्त को अनुदात्त नहीं होता है, यदि कारक सारा अन्य न हो तो।

सूत्र की व्याख्या- यह विधिसूत्र है। इस सूत्र से अनुदात्त स्वर का निषेध होता है। इस सूत्र में छ पद है। गत्यर्थलोटा लृट् न चेत् कारकं सर्वान्यत् ये सूत्र में आये पदच्छेद है। गत्यर्थलोटा यह तृतीय एकवचनान्त पद है। लृट् यह प्रथमा एकवचनान्त पद है। न यह अव्ययपद है। चेत् यह अव्ययपद है। कारकम् यह प्रथमा एकवचनान्त पद है। सर्वान्यत् यह प्रथमा एकवचनान्त पद है। गति अर्थ जिसका वह गत्यर्थ यहाँ बहुव्रीहि समास है। गति अर्थ है जिसका वह गत्यर्थ यहाँ शाकपार्थिव आदि के समान समास। गत्यर्थः चासौ लोट् च इति गत्यर्थलोट्, तेन गत्यर्थलोटा यहाँ कर्मधारय समास है। गत्यर्थलोटा युक्त यह अर्थ है। तिङ्तिङः इस सूत्र से तिङ् इस प्रथमान्त सुबन्त पद की अनुवृति है। तिङ् यह प्रत्यय है। अतः प्रत्यय ग्रहण की परिभाषा से तिङन्त को यह पदलाभ होता है। न यह अव्यय है, अनुदात्तम् इस प्रथमा एकवचनान्त दो पदों की यहाँ अनुवृति है। उससे सूत्र का अर्थ होता है - गति अर्थ वाले लोट लकार से युक्त लृडन्त जो तिङन्त उसको अनुदात्त नहीं होता है, जहाँ कारक में लोट् लकार है वहाँ पर भी। अर्थात् जिस स्थान में कर्तरि कर्मणि

टिप्पणियाँ

वा लोट् होता है, उसी ही स्थान में यदि लृट् लकार हो तो गति अर्थ वाले लोट् लकार युक्त तिङन्त को अनुदात्त नहीं होता है।

उदाहरण- आगच्छ देव ग्रामं द्रक्ष्यसि एनम् यह इस सूत्र का एक उदाहरण है।

सूत्र अर्थ का समन्वय- यहाँ कर्ता में लोट् लकार है। उसी ही अर्थ में लृट् लकार है। आगच्छ यह गत्यर्थ लोट् लकार युक्त तिङन्त है। अतः प्रकृत सूत्र से आगच्छ इस लोट् अन्त तिङन्त को अनुदात्त नहीं होता है।

14.14 लोट् च॥ (८.१.५१)

सूत्र का अर्थ - गति अर्थ वाले लोट् लकार युक्त लोडन्त तिङन्त को अनुदात्त नहीं होता है।

सूत्र की व्याख्या- यह विधिसूत्र है। इस सूत्र से अनुदात्त स्वर का निषेध होता है। इस में दो पद है। लोट् यह प्रथमान्त पद है। लोट् यह प्रत्यय है। अतः प्रत्यय ग्रहण की परिभाषा से लोट् अन्त यह लाभ हुआ। च यह अव्ययपद है। गति अर्थ लोटा लकार को लृण्ण चेत्कारकं सर्वान्यत् इस सूत्र से गत्यर्थ लोट् लकार है, चेत् कारकम्, सर्वान्यत् इन पदों की अनुवृति है। गत्यर्थलोटा यह तृतीयान्त पद है। गतिः अर्थः यस्य सः गत्यर्थः यहाँ बहुव्रीहि समास है, गत्यर्थः अर्थः यस्य इति गत्यर्थः यहाँ शाकपार्थिव आदि के सामान समास। गत्यर्थः चासौ लोट् इति गत्यर्थलोट् तेन गत्यर्थलोटा यहाँ कर्मधारय समास है। लृट् यह प्रथमान्त पद है। न यह अव्ययपद। चेत् यह अव्ययपद है। कारकम यह प्रथमान्त पद है। सर्वान्यत् यह अव्ययपद है। तिङ्तिङः इस सूत्र से तिङ् इस प्रथमान्त पद की अनुवृति है। तिङ् यह प्रत्यय है। अतः प्रत्यय ग्रहण की परिभाषा से तिङन्तम यह प्राप्त होता है। अनुदात्तम इस प्रथमान्त पद की अनुवृति है। इस प्रकार गत्ति अर्थ वाले लोट् से युक्त जो लोडन्त तिङन्त पद है, उसको अनुदात्त नहीं होता यह सूत्र अर्थ होता है।

उदाहरण- आगच्छ देव ग्रामं पश्य।

सूत्र अर्थ का समन्वय- यहाँ पश्य यह तिङन्त लोडन्त है। आगच्छ यह गति अर्थ वाले लोट् से युक्त तिङन्त भी है। अतः प्रकृत सूत्र से पश्य यहाँ तिङन्त को अनुदात्त नहीं होता है।

14.15 हन्त च॥ (८.१.५४)

सूत्र का अर्थ - हन्त से युक्त सोपसर्ग उत्तमपुरुष को छोड़कर लोडन्त तिङन्त को विकल्प से अनुदात्त होता है।

सूत्र की व्याख्या- यह विधिसूत्र है। अनुदात्तस्वर का इस सूत्र से विधान है। हन्त यह अव्ययपद है। च यह भी अव्यय पद है। विभाषितम् सोपसर्गमनुत्तमम् इस सम्पूर्ण सूत्र की अनुवृति है। विभाषितम् यह प्रथमान्त पद है। सोपसर्गम् यह भी प्रथमान्त पद है। अनुत्तमम् यह प्रथमान्त पद है। न उत्तमम् इति अनुत्तमम् यहाँ नञ्तत्पुरुष समास है। और वह उत्तम पुरुष से भिन्न है यह अर्थ है। लोट् च इस सूत्र से लोट् यहाँ प्रथमान्त पद की अनुवृति है। लोड् यह प्रत्यय संज्ञक है। अतः प्रत्यय ग्रहण

की परिभाषा से लोन्तम यह लाभ है। तिङ्तिङः इस सूत्र से तिङ् इस प्रथमान्त पद की अनुवृति है। तिङ् यह प्रत्यय है। अतः प्रत्यय ग्रहण की परिभाषा से तिङन्तम यह लाभ है। अनुदात्तम् इस पद की अनुवृति है। उससे इस सूत्र का अर्थ होता है - हन्त इससे युक्त लोडन्त अनुत्तम तिङन्त को विकल्प से अनुदात्त होता है। अर्थात् हन्त इस शब्द से युक्त उपसर्ग पूर्वक को लोट् विभक्त्यन्त अनुदात्त को विकल्प से होता है, किन्तु उत्तम पुरुष को नहीं होता है।

उदाहरण- हन्त प्रविश यह इस सूत्र का एक उदाहरण है।

सूत्र अर्थ का समन्वय- यहाँ हन्त इससे युक्त है, प्रविश यहाँ तिङन्त पद है। और उपसर्ग पूर्वक भी है। किन्तु उत्तम पुरुष नहीं है। अतः प्रकृतसूत्र सामर्थ्य से यहाँ अनुदात्त विकल्प से होता है।

14.16 यद्धितुपरं छन्दसि॥ (८.१.५६)

सूत्र का अर्थ - यत परक ही परक तथा तु परक तिङन्त को छन्द विषय में अनुदात्त नहीं होता है।

सूत्र की व्याख्या- यह विधिसूत्र है। इस सूत्र से अनुदात्त स्वर का निषेध होता है। इस सूत्र में दो पद है, यद्धितुपरम् यह प्रथमा एकवचनान्त पद है। यच्च हि च तुश्च इति यद्धितु यहाँ समाहारद्वन्द्व समास है, उससे परे यद्धितुपरम् यहाँ पञ्चमीतत्पुरुष समास है। यत शब्द से परे हि शब्द से परे तु शब्द से परे यह अर्थ है। छन्दसि यह सप्तमी एकवचनान्त पद है। तिङ्तिङः इस सूत्र से तिङ् इस प्रथमान्त पद की अनुवृति है। तिङ् यह प्रत्यय है। अतः प्रत्यय ग्रहण की परिभाषा से तिङन्तम यह लाभ है। न यह अव्ययपद है, अनुदात्तम् इस प्रथमा एकवचनान्त पद इन दो की अनुवृति है। अतः इस सूत्र का अर्थ होता है - यत शब्द से परे ही शब्द से परे तु शब्द से परे तिङन्त को छन्द विषय में अनुदात्त नहीं होता है।

उदाहरण- उघ्दसृजो यर्दङ्गिरः। उशन्ति हि। आख्यास्यामि तु ते इत्यादि यहाँ उदाहरण है।

सूत्र अर्थ का समन्वय- उशन्ति यहाँ यह तिङन्त हि शब्द से युक्त है। अतः उसको अनुदात्त नहीं होता है।

पाठगत प्रश्न 14.3

1. 'लोपे विभाषा' इस सूत्र का अर्थ लिखिए।
2. 'पचति आहोस्वित् पठति' ये किस सूत्र के उदाहरण है?
3. 'शेषे विभाषा' इस सूत्र का क्या अर्थ है?
4. गति अर्थवाले लोट् युक्त लोडन्त पद को कैसे अनुदात्त नहीं हुआ?

टिप्पणियाँ

5. 'आगच्छ देव ग्रामं पश्य' ये किस सूत्र का उदाहरण है?

6. 'हन्त च' इस सूत्र का एक उदाहरण दीजिए?

7. हन्त इससे युक्त अनुदात्त लोडन्त को विकल्प से अनुदात्त किस सूत्र से होता है?

14.17 चादिषु च॥ (८.१.५८)

सूत्र का अर्थ – च, वा आदि चादियों के परे रहते भी गति भिन्न पद से उत्तर तिङन्त को अनुदात्त नहीं होता है।

सूत्र का अवतरण– यह विधिसूत्र है। इस सूत्र से अनुदात्त स्वर का निषेध होता है। ये सूत्र दो पदवाला है। चादिषु यह सप्तम्यन्त पद है। चकारः आदिः येषां ते चादयः तेषु चादिषु यहाँ बहुव्रीहि समास है। च यह अव्ययपद है। चनचिदिवगोत्रादितद्धिताम्रेडितेष्वगतेः इस सूत्र से अगतेः इस पञ्चम्यन्त पद की अनुवृति है। न गतिः अगतिः तस्मात् अगतेः यहाँ द्वन्द्व समास है। अगत्ति इसका अर्थ है– गति संज्ञा भिन्न से। तिङ्ङतिङः इस सूत्र से तिङ् इस प्रथमान्त पद की अनुवृति है। तिङ् यह प्रत्यय है। अतः प्रत्यय ग्रहण की परिभाषा से तिङन्त को प्राप्त होता है। अतः चादियों के परे गति से भिन्न उत्तर तिङन्त को अनुदात्त नहीं होता है यह सूत्र का अर्थ आता है।

उदाहरण– देवः पचति च खादति च ये इस सूत्र का एक उदाहरण है।

सूत्र अर्थ का समन्वय– यहाँ पचति खादति ये दो तिङन्त पद है। पचति इससे परे अगति संज्ञक चकार है। खादति इससे परे अगति संज्ञक चकार है। अतः पचति खादति इन दोनों के तिङन्त को अनुदात्त नहीं होता है।

14.18 चादिलोपे विभाषा॥ (८.१.६३)

सूत्र का अर्थ– चादियों के लोप होने पर प्रथम तिङन्त को विकल्प करके अनुदात्त नहीं होता है।

सूत्र की व्याख्या– यह विधिसूत्र है। चादिलोपे यह सप्तम्यन्त पद है। चकारः आदिः येषां ते चादयः चादीनां लोपः, चादिलोपः तस्मिन् चादिलोपे यहाँ बहुव्रीहिगर्भतत्पुरुष समास है। विभाषा यह प्रथमान्त पद है। चवायोगे प्रथमा इस सूत्र से प्रथमा इस प्रथमान्त पद की अनुवृति है। प्रथमा इससे विभक्ति इसका अन्वय है। अतः प्रथमा तिङ् विभक्ति यह अर्थ प्राप्त हुआ। तिङ्तिङः इस सूत्र से तिङ् इस प्रथमान्त पद की अनुवृति है। तिङ् यह प्रत्यय है। अतः प्रत्यय ग्रहण की परिभाषा से तिङन्त को प्राप्त होता है। न यह अव्ययपद है, अनुदात्ततम् यह प्रथमान्त पद की अनुवृति है। अतः सूत्र का अर्थ होता है – च, वा, ह, अह आदि के लोप होने पर प्रथम तिङ् विभक्त्यन्त को विकल्प से अनुदात्त नहीं होता है।

उदाहरण– इन्द्र वाजेषु नोऽव यह इस सूत्र का एक उदाहरण है।

सूत्र अर्थ का समन्वय- इन्द्र वाजेषु नोऽव इस वाक्य में अव यह तिङन्त पद है। और यहाँ चादि का लोप हुआ। अतः यहाँ विकल्प से अनुदात्त नहीं होता है।

14.19 यद्वृत्तान्नित्यम्॥ (८.१.६६)

सूत्र का अर्थ- यदवृत्त शब्द से उत्तर तिङन्त को नित्य ही अनुदात्त नहीं होता है।

सूत्र की व्याख्या- यह विधिसूत्र है। इस सूत्र से अनुदात्त स्वर का निषेध होता है। इस सूत्र में दो पद है, यद्वृत्तात् यह पञ्चमी एकवचनान्त पद है। यद्धत से इसका जिस पद में यत् शब्द है। उससे परे यह अर्थ है। नित्यम् यह प्रथमा एकवचनान्त पद है। तिङ्तिङः इस सूत्र से तिङ् इस प्रथमान्त पद की अनुवृति है। तिङ् यह प्रत्यय है। अतः प्रत्यय ग्रहण की परिभाषा से तिङन्त को प्राप्त है। न यह अव्ययपद है, अनुदात्तम् इस प्रथमान्त पद की अनुवृति है। इस प्रकार यद्वृत्त से उत्तर तिङन्त को नित्य अनुदात्त नहीं होता है, यह सूत्र का अर्थ है। अर्थात् जिस पद में यत् शब्द विद्यमान है, उससे परे जो तिङन्त पद को नित्य ही अनुदात्त नहीं होता है, यह सूत्र का अर्थ है।

उदाहरण- यो भुङ्क्ते। यदर्द्यङ् वायुर्वाति यह इस सूत्र का एक उदाहरण है।

सूत्र अर्थ का समन्वय- यो भुङ्क्ते। यदर्द्यङ् वायुर्वाति यहाँ पर भुङ्क्ते और वाति ये दो तिङन्त पद है। दोनों ही यत शब्द से परे है। उसको प्रकृत सूत्र से यहाँ तिङन्त को अनुदात्त नहीं होता है।

14.20 पूजनात्पूजितमनुदात्तं काष्ठादिभ्यः॥ (८.१.६७)

सूत्र का अर्थ- पूजन वाची शब्दों से उत्तर काष्ठ आदि पूजित वाची को अनुदात्त होता है।

सूत्र की व्याख्या- यह विधिसूत्र है। इस सूत्र से अनुदात्तस्वर का विधान है। इस सूत्र में चार पद है। पूजनात् पूजितम् अनुदात्तं काष्ठादिभ्यः ये सूत्र में आये पदच्छेद है। पूजनात् यह पञ्चमी एकवचनान्त पद है। पूजितम् यह प्रथमा एकवचनान्त पद है। अनुदात्तम् यह प्रथमा एकवचनान्त पद है। काष्ठादिभ्यः पञ्चमी बहुवचनान्त पद है। काष्ठाशब्दः आदिः येषां ते काष्ठादयः तेभ्यः काष्ठादिभ्यः ये बहुव्रीहिसमास है। काष्ठादिगण में काष्ठा, दारुण, अमातापुत्र, वेश, अनाज्ञात, अनुज्ञात, अपुत्र, अयुत, अद्भुत, भृश, घोर, सुख, कल्याण, अनुक्त, इत्यादि शब्द पढ़े गए। सगतिरपि तिङ् इस परसूत्र में तिङ्ग्रहण से यह सूत्र सुप् विषयक है। अतः सुप् यह प्रथमान्त पद को प्राप्त होता है। सुप् यह प्रत्यय है। अतः प्रत्यय ग्रहण की परिभाषा से सुबन्त को प्राप्त है। अनुदात्तम् इस प्रथमान्त पद की अनुवृति है। पूजनात् इस पद को काष्ठादि यहाँ पर बहुवचनान्त का अन्वय है। अतः सूत्र का अर्थ होता है - पूजन के लिए काष्ठादि पूजित सुबन्त को अनुदात्त होता है। अर्थात् पूजनार्थ के लिए काष्ठादि शब्द से परे पूजित सुबन्त को अनुदात्त नहीं होता है।

उदाहरण- काष्ठाध्यापकः यह इस सूत्र का एक उदाहरण है।

सूत्र अर्थ का समन्वय- इस उदाहरण में काष्ठादिगण में पढ़ा गए है, काष्ठ शब्द पूजित अर्थ में विद्यमान है। और सुबन्त पद भी है। अतः प्रकृत सूत्र से उस सुबन्त को अनुदात्त नहीं होता है।

14.21 गतिर्गतौ॥ (८.१.७०)

सूत्र का अर्थ– गत्तिसंज्ञक के परे रहते गतिसंज्ञक को अनुदात्त होता है।

सूत्र की व्याख्या– यह विधिसूत्र है। इस सूत्र से अनुदात्तस्वर का विधान है। इस सूत्र में दो पदवाला है। गतिः गतौ ये सूत्र में आये पदच्छेद है। गतिः यह प्रथमा एकवचनान्त पद है। गतौ यह सप्तमी एकवचनान्त पद है। अनुदात्तम् यह प्रथमा एकवचनान्त पद की अनुवृति है। गतिः इसकी गतिश्च इस सूत्र से विधियमान प्र आदि की गतिसंज्ञक और उपसर्ग कहलाते है। अतः गतिसंज्ञक के परे गतिसंज्ञक को अनुदात्त होता है, यह सूत्र का अर्थ है।

उदाहरण– अभ्युद्धरति यह इस सूत्र को एक उदाहरण है।

सूत्र अर्थ का समन्वय– अभ्युद्धरति यहाँ पर हरति इस तिङन्त, अभि ये गतिसंज्ञक उद् यह भी गतिसंज्ञक पद है। उद् यह भी गतिसंज्ञक पद है, अभि इस गतिसंज्ञक पद से परे है। अतः उद् इस गतिसंज्ञक को अनुदात्त होता है प्रकृतसूत्र से।

14.22 तिङि चोदात्तवति॥ (८.१.७१)

सूत्र का अर्थ– उदात्तवान तिङन्त के परे रहते भी गतिसंज्ञक को निघात होता है।

सूत्र की व्याख्या– यह विधिसूत्र है। इस सूत्र से अनुदात्तस्वर होता है। इस सूत्र में तीन पद है, तिङि यह सप्तमी एकवचनान्त पद है। च यह अव्ययपद है। उदात्तवति यह भी सप्तमी एकवचनान्त पद है। गतिर्गतौ इस सूत्र से गतिः इस प्रथमान्त पद की अनुवृति है। तिङि यहाँ तिङ् यह प्रत्यय है। अतः प्रत्यय ग्रहण की परिभाषा से तिङन्त में यह अर्थ प्राप्त होता है। अनुदात्तम् इस प्रथमा एकवचनान्त पद की अनुवृति है। अतः सूत्र का यह अर्थ होता है – उदात्तवान तिङन्त के परे रहते गतिसंज्ञक को अनुदात्त होता है।

उदाहरण– यत्प्रपचति यह इस सूत्र का एक उदाहरण है।

सूत्र अर्थ का समन्वय– यहाँ प्र यह गतिसंज्ञक है। पचति यह तिङन्त उदात्तवान पद प्र इससे परे है। अतः प्रकृत सूत्र से प्र इस गतिसंज्ञक को अनुदात्त होता है।

पाठगत प्रश्न 14.4

1. चादिषु च इस सूत्र का अर्थ लिखिए।
2. चादिलोपे विभाषा इस सूत्र का एक उदाहरण दीजिए।
3. पूजनात्...इस सूत्र को पूर्ण कीजिए।
4. गतिसंज्ञक किसको कहते हैं?
5. 'तिङि चोदात्तवति' इस सूत्र से किस प्रकार तिङन्त के परे गतिसंज्ञक को अनुदात्त होता है?

पाठ का सार

इस पाठ में तिङन्त स्वर विषय में विशेष रूप से और विस्तार से आलोचना की है। तिङन्त स्वर विधायक कुछ सूत्रों की यहाँ आलोचना की है। धातु से तिङ्प्रत्यय से तिङन्त पद होता है। तिङन्त पदों का सामान्य रूप से अनुदात्तस्वर का ही विधान है। यहाँ पर कुछ सूत्रों के द्वारा तिङन्तस्वर का विधान है। कुछ सूत्रों के द्वारा तिङन्त में अनुदात्त स्वर का निषेध है। यहाँ सम्पूर्ण रूप से अट्ठारह सूत्रों की व्याख्या की है। कभी अव्यय से युक्त तिङन्त में स्वर का विधान है। कभी अपने आप ही स्वर का विधान है। अव्यय से युक्त तिङन्त में उदाहरण जैसे- अङ्ग कुरु इत्यादि। अपने आप जैसे -अग्निमीळे इत्यादि। तिङन्त आश्रित भी स्वर का विधान है जैसे - पचति गोत्रम् इत्यादि। तिङन्त से परे गोत्रादि अनुदात्त होता है। यहाँ व्याख्यान समय में गोत्रादि शब्दों का उल्लेख है। अतिङन्त से परे तिङन्त को अनुदात्त होता है। जैसे- अग्निमीळे इत्यादि। और तिङन्त से परे गतिसंज्ञक को अनुदात्त होता है। उदाहरण जैसे- अभ्युद्धरति इति। प्र आदि क्रियायोग में गतिसंज्ञक होते है। इसी प्रकार इस पाठ का विषय तिङन्तस्वर है।

पाठांत प्रश्न

1. 'तिङो गोत्रादीनि कुत्सनाभीक्ष्ण्ययोः' इस सूत्र की व्याख्या कीजिए।
2. 'अङ्गाऽप्रातिलोम्ये' इस सूत्र की व्याख्या कीजिए।
3. 'लोपे विभाषा' इस सूत्र की व्याख्या कीजिए।
4. 'आहो उताहो चानन्तरम्' इस सूत्र की व्याख्या कीजिए।
5. 'गत्यर्थलोटा...' इस सूत्र का अर्थ लिखकर उदाहरण की सङ्गति दिखाइए।
6. 'चादिलोपे विभाषा' इस सूत्र की व्याख्यान कीजिए।
7. 'तिङि चोदात्तवति' इस सूत्र की व्याख्या कीजिए।

पाठगत प्रश्नों के उत्तर

14.1

1. 'तिङो गोत्रादीनि कुत्सनाभीक्ष्ण्ययोः' इस सूत्र से।
2. 'पचति गोत्रम्' यह है।
3. 'तिङ्ङतिङः' इस सूत्र से।
4. अतिङन्त पद से परे तिङन्त पद को सम्पूर्ण अनुदात्त होता है, 'तिङ्ङतिङः' इस सूत्र का अर्थ है।

5. 'अङ्गाऽप्रातिलोम्ये' इस सूत्र का उदाहरण है।
6. हि यह अव्ययपद है।
7. 'हि च' इस सूत्र से निषेध होता है।

14.2

1. हि इससे युक्त साकाक्ष अनेक भी तिङन्त को अनुदात्त नहीं होता है, वेद विषय में है।
2. यावत् प्रपचति शोभनम् यह इस सूत्र का एक उदाहरण है।
3. 'तुपश्यपश्यताहैः पूजायाम्' इस सूत्र से।
4. 'शेषे विभाषा' इस सूत्र से।
5. अहो इससे युक्त तिङन्त को विकल्प से अनुदात्त होता है, पूजा विषय में।
6. अहो कटं करिष्यति यह शेषे विभाषा इस सूत्र का एक उदाहरण है।

14.3

1. किम का लोप होने पर क्रियाप्रश्न में अनुपसर्ग को प्रतिषेध रहित तिङन्त को विकल्प से अनुदात्त नहीं होता है यह इस सूत्र का अर्थ है।
2. 'लोपे विभाषा' इस सूत्र का एक उदाहरण है।
3. 'आहो उताहो' से युक्त व्यवधानतिङन्त को विकल्प से अनुदात्त होता है।
4. 'लोट् च' इस सूत्र से निषेध होता है।
5. 'लोट् च' इस सूत्र का उदाहरण है।
6. 'हन्त प्रविश' यह इस सूत्र का एक उदाहरण है।
7. 'हन्त च' इस सूत्र से होता है।

14.4

1. च, वा, अह आदि चादियों में तिङन्त को अनुदात्त नहीं होता है।
2. इन्द्र वाजेषु नोऽव यह इस सूत्र का एक उदाहरण है।
3. पूजनात्पूजितमनुदात्तं काष्ठादिभ्यः यह सूत्र है।
4. प्र आदि का क्रियायोग में गतिसंज्ञक होते है।
5. उदात्तवान तिङन्त के परे रहते गति को अनुदात होता है।

॥ चौदहवाँ पाठ समाप्त॥

इस पुस्तक में वर्णित सूत्रों की सूची
(अकार आदि क्रम से)

पाठ में स्थित-सूत्र-अष्टाध्यायीक्रम (जिन सूत्रों की संख्या नही है, वे फिट् सूत्र है)

(११.८) अक्षस्यादेवनस्य।

(१४.३) अङ्गाऽप्रातिलोम्ये।। (८.१.३३)

(११.५) अथादिः प्राक् शकटेः

(९.११) अनुदात्तं च।। (८.१.३)

(८.१) अनुदात्तं पदमेकवर्जम्।। (६.१.१५६)

(८.२) अनुदात्तस्य च व।। (६.१.१६१)

(१०.४) अनुदात्ते च।। (६.१.१९०)

(१२.२) अनुदात्तौ सुप्पितौ (३-१-४)

(१०.१) अन्तश्च तवै युगपत्।। (६.१.२००)

(१२.८) अन्तोदात्तादुत्तरव (६.१.१६९)

(१०.३) अभ्यस्तानामादिः।। (६.१.१८९)

(१३.१) अर्थे (६.२.४४)

(१०.१४) अशितः कर्ता।। (६.१.२०७)

(१२.१) अष्टनो दीर्घात् (६.१.१७२)

(१३.१६) आचार्योपसर्जनव।। (६.२.१०४)

(१२.१) आद्युदात्तश्च (३.१.३)

(८.४) आमन्त्रितस्य च।। (६.१.१९८)

(८.५) आमन्त्रितस्य च।। (८.१.१९)

(१४.११) आहो उताहो चानन्तरम।। (८.१.४९)

(९.५) उच्चैस्तरां वा वषट्कारः।। (१.२.३५)

(१०.८) उञ्छादीनाञ्च।। (६.१.१६०)

(१२.१२) उदात्तयणो हल्पूर्वात् (६.१.१७४)

टिप्पणियाँ

(९.१) उदात्तस्वरितपरस्य सन्नतरः।। (१.२.४०)

(८.८) उदात्तस्वरितयोर्यणःव।। (८.२.४)

(९.१) उदात्तादनुदात्तस्य स्वरितःञ (८.४.६६)

(१४.६) उपसर्गव्यपेतं च।। (८.१.३८)

(११.१४) उपसर्गश्चाभिवर्जम्।

(१२.१८) उपोत्तमंरिति (६.१.१९७)

(१२.९) ऊडिदम्पदाद्यव (६.१.१७६)

(९.३) एकश्रुति दूरात्संबुद्धौ।। (१.२.३३)

(८.९) एकादेश उदात्तेनोदात्तः।। (८.२.५)

(११.१५) एवादीनामन्तः।

(१३.१५) कतरकतमौ कर्मधारये।। (६.२.५७)

(१३.१२) कर्मधारयोऽनिष्ठा (६.२.४६)

(१०.७) कर्षात्वतो घञोऽन्तव।। (६.१.१५९)

(१३.८) कार्तकौजपादयश्च।। (६.२.३७)

(१२.५) कितः (६.१.१६६)

(१४.१) किंवृत्तं च चिदुत्तरम्।। (८.१.४८)

(१३.६) कुमारश्च।। (६.२.२७)

(१३.११) क्ते च (६.२.४५)

(१०.११) क्षयो निवासे।। (६.१.२०१)

(१३.१४) गतिरनन्तरः।। (६.२.४९)

(१४.२१) गतिर्गतौ।। (८.१.७०)

(१४.१३) गत्यर्थलोटा लृण्णव।। (८.१.५१)

(११.१२) गोष्ठजस्य ब्राह्मणनामधेयस्य।

(११.३) घृतादीनां च

(१०.१६) ङयि च।। (६.१.२११)

(१२.१४) ङ्याश्छन्दसि बहुलम् (६.१.१७८)

(१३.९) चतुर्थी तदर्थे (६.२.४३)

(११.१७) चादयोऽनुदात्ताः।

(१४.१८) चादिलोपे विभाषा।। (८.१.६३)

(१४.१७) चादिषु च।। (८.१.५८)

(१२.३) चितः (६.१.१६३)

(८.३) चौ।। (६.१.२२२)

(११.२) छन्दसि च।

(११.९) छन्दसि च।

(१४.५) छन्दस्यनेकमपि वा।। (८.१.३५)

(११.४) ज्येष्ठकनिष्ठयोर्वयसि

(१०.९) ञ्नित्यादिर्नित्यम्।। (६.१.१९७)

(१३.२) तत्पुरुषे तुल्यार्थतृतीयाव।। (६.२.२)

(१२.४) तद्धितस्य (६.१.१६४)

(१४.२२) तिङि चोदात्तवति।। (८.१.७१)

(१४.१) तिङो गोत्रादीनिवघ (८.१.२७)

(१४.२) तिङ्ङतिङः।। (८.१.२९)

(१२.१७) तित्स्वरितम् (६.१.१८५)

(१२.६) तिसृभ्यो जसः (६.१.१६६)

(१४.७) तुपश्यपश्यताहैः पूजायाम्।। (८.१.३९)

(११.७) तृणधान्यानां च द्व्यषाम्।

(१३.१३) तृतीया कर्मणि।। (६.२.४८)

(१२.१६) दिवो झल् (६.१.१८३)

(१३.१८) देवताद्वन्द्वे च।। (६.२.१४१)

(९.८) देवब्रह्मणोरनुदात्तः।। (१.२.३८)

(१०.१) धातोः।। (६.१.१६२)

(१२.१५) न गोश्वन्सावव (६.१.१८२)

(९.७) न सुब्रह्मण्यायां वा।। (१.२.३७)

(११.१३) निपाता आद्युदात्ताः।

(९.२) नोदात्तस्वरितोदयव।। (८.४.६६)

(१४.२) पूजनात्पूजितमनुदात्तंव।। (८.१.६७)

टिप्पणियाँ

(१३.४) पूर्वे भूतपूर्वे।। (६.२.२२)

(११.१९) प्रकारादिद्विरुक्तौव।

(११.१) फिषोऽन्त उदात्तः

(१३.१७) बहुव्रीहौ विश्वंव।। (६.२.१०६)

(१३.७) बह्वन्यतरस्याम्।। (६.२.३०)

(१०.५) भीह्रीभृहुमदजनधनव।। (६.१.१९२)

(९.४) यज्ञकर्मण्यजपन्यूङ्खव।। (२.१.३४)

(१०.१७) यतोऽनावः।। (६.१.११३)

(११.१८) यथेति पादान्ते।

(१४.१६) यद्धितुपरं छन्दसि।। (८.१.५६)

(१४.१९) यद्वृत्तान्नित्यम्।। (८.१.६६)

(१०.१५) युष्मदस्मदोर्ङसि।। (६.१.२११)

(१०.६) लिति।। (६.१.१९३)

(१४.१४) लोट् च।। (८.१.५१)

(१४.९) लोपे विभाषा।। (८.१.४५)

(१३.३) वा भुवनम्।। (६.२.२०)

(११.१६) वाचादीनामुभावुदात्तौ।

(९.६) विभाषा छन्दसि।। (१।२।३६)

(८.६) विभाषितं विशेषवचने।। (८.१.७४)

(१३.५) विस्पष्टादीनि गुणवचनेषु।। (६.२.२४)

(१०.१२) वृषादीनां च।। (६.१.२०३)

(११.११) शकटिशकट्योरक्षरमक्षरं पर्यायेण।

(१२.११) शतुरनुमो नद्यजादी (६.१.१७३)

(११.२) शेषं सर्वमनुदात्तम्।

(१४.८) शेषे विभाषा।। (८.१.४१)

(१४.१२) शेषे विभाषा।। (८.१.५०)

(१०.१३) संज्ञायामुपमानम्।। (६.१.२०४)

(१३.१) समासस्य।। (६.१.२२३)

(१२.७) सावेकाचस्तृतीयादिव (६.१.१८६)

(११.१) सुगन्धितेजनस्य ते वा।

(८.७) सुबामन्त्रिते पराङ्गवत्स्वरे।। (२.१.२)

(१०.२) स्वपादिहिंसामच्यनिटि।। (६.१.१८८)

(९.९) स्वरितात्संहितायामव।। (१.२.३९)

(८.१) स्वरितो वानुदात्ते पदादौ।। (८.२.६)

(१४.१५) हन्त च।। (८.१.५४)

(१४.४) हि च।। (८.१.३४)

(१२.१३) ह्रस्वनुड्भ्यां मतुप् (६.१.१७६)

(११.६) ह्रस्वान्तस्य स्त्रीविषयस्य